हिंदी कहानियों में उपेक्षित जीवन के विविध आयाम

(HINDI KAHANIYON MEIN UPEKSHIT JEEWAN KE VIVIDH AAYAM)

(VARIOUS DIMENSIONS OF NEGLECTED LIVES IN HINDI SHORT STORIES)

पीएच. डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध

शोध-निर्देशक

डॉ.राजेश कुमार पासवान

शोधार्थी

जैनेन्द्र कुमार

भारतीय भाषा केंद्र

भाषा, साहित्य और संस्कृति अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली-110067

2019

जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय

JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY

भारतीय भाषा केंद्र

Centre of Indian Language

भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान

School of Language, Literature & Culture Studies

नई दिल्ली -110067, New Delhi-110067 India

Date: 22/07/2019

CERTIFICATE

This is to certify that the Mr. **JAINENDRA KUMAR**, a bona-fide Research Scholar of Centre of Indian Language, SLL&CS has fulfilled all the requirements as per the University Ordinance for the submission of Ph.D. thesis entitled **"HINDI KAHANIYON MEIN UPEKSHIT JEEWAN KE VIVIDH AAYAM"** (***"VARIOUS DIMENSIONS OF NEGLECTED LIVES IN HINDI SHORT STORIES"***) "हिंदी कहानियों में उपेक्षित जीवन के विविध आयाम".

This may be placed before the examiners for evaluation for the award of the degree of Ph.D.

DR. RAJESH KUMAR PASWAN
(Supervisor)
CIL/SLL&CS/JNU

PROF. OMPRAKASH SINGH
(Chairperson)
CIL/SLL&CS/JNU

Date: 22/07/2019

DECLERATION

I hereby declare that the Ph.D. thesis entitled **"HINDI KAHANIYON MEIN UPEKSHIT JEEWAN KE VIVIDH AAYAM"** ***("VARIOUS DIMENSIONS OF NEGLECTED LIVES IN HINDI SHORT STORIES")*** "हिंदी कहानियों में उपेक्षित जीवन के विविध आयाम"

Submitted by me is the original research work. It has not been previously submitted for any other University/Institution to the best of my knowledge.

I further declare that no plagiarism has been committed in my work. If anything is found plagiarize in my thesis, I will be solely responsible for the act.

Jainendra Kumar

Sign of Research Scholar

JAINENDRA KUMAR

तेरा तुझको अर्पण

नाना- सीताराम सिंह

बाबा- श्यामसुंदर यादव

और मेरे प्रथम शिक्षक मनोज साह

को

सादर समर्पित .....

*** हमारे गाँव (परमानपुर, मधेपुरा, बिहार) में बाबा पापा के बड़े भाई को कहा जाता है |**

अनुक्रम

भूमिका : शोध के सफ़र में 1-7

अध्याय.1 उपेक्षित लोग और हमारा समाज 8-27

1.1 उपेक्षा के विविध आयाम
1.1 उपेक्षा के कारण
1.2 मुख्यधारा और उपेक्षित समाज
1.3 वैश्विक स्तर पर उपेक्षा का इतिहास
1.4 भारतीय समाज में उपेक्षा की परंपरा
1.5 उपेक्षित लोगों की मनोदशा

अध्याय. 2 हिंदी कहानियों में एलजीबीटी समुदाय 28-63

2.1 भारतीय समाज और हिजड़ा समुदाय
2.2 हिजड़ा और किन्नर नाम का विवाद
2.3 हिजड़ों के प्रकार
2.4 प्राचीन भारतीय समाज और साहित्य में हिजड़ा
2.5 हिजड़ों से जुड़े मिथक
2.6 एलजीबीटी समुदाय और भारतीय कानून
2.7 भारतीय साहित्य और हिजड़ा जीवन
2.8 हिंदी कहानियों में हिजड़ा जीवन
2.9 हिंदी कहानियों में समलैंगिकता
2.9.1 समलैंगिकता क्या है ?
2.9.2 समलैंगिकता और समाज
2.9.3 हिंदी कहानियों में स्त्री समलैंगिकता
2.9.4 हिंदी कहानियों में पुरुष समलैंगिकता

अध्याय. 3 हिंदी कहानियों में वृद्ध जीवन 64-88

3. 1 मानव जाति का विकासक्रम और वृद्ध
3. 2 आधुनिकता और सामाजिक परिवर्तन के दौर में वृद्ध
3. 3 भारतीय समाज में वृद्ध
3. 4 हिंदी कहानियों में वृद्ध जीवन

अध्याय. 4 हिंदी कहानियों में विकलांग जीवन 89-118

4.1 विकलांगता और हमारा समाज
4.2 प्राचीन समाज और साहित्य में विकलांग

4.2.1 भारतीय समाज और साहित्य में विकलांग
4.2.2 पश्चिमी समाज और साहित्य में विकलांग
4.3 आधिकारिक आंकड़ों में विकलांग
4.4 हिंदी कहानियों में विकलांग जीवन
4.4.1 शारीरिक विकलांगता
4.4.2 एसिड अटैक से पीड़ित
4.4.3 मानसिक विकलांगता

अध्याय .5 हिंदी कहानियों में भिखारी जीवन 119-139
5.1 भिक्षावृत्ति की परंपरा
5.2 भिक्षावृत्ति का स्वरुप और कारण
5.3 आधुनिक समय में भिक्षावृत्ति
5.4 हिंदी कहानियों में भिखारी जीवन

उपसंहार 140-144

सन्दर्भ ग्रन्थ 145-157

परिशिष्ट 158-187

शोध के सफ़र में...

मुझे इस बात का कतई अंदाजा नहीं है कि मैं अपने शोध कार्य में कितना सफल हो पाया हूँ, लेकिन मुझे इस बात की बेहद संतुष्टि है कि इस शोध अवधि के दौरान मैंने अपने शोध विषय में शामिल विकलांग, भिखारी, बुजुर्ग और एलजीबीटी समुदाय के जीवन को बहुत नजदीक से देखा और समझा है । शोध के इन पाँच सालों में मैं खुद को इन हाशिये के लोगों के बेहद करीब पाता हूँ। आम लोगों की तरह मेरे मन में भी इन समुदाय को लेकर कुछ भ्रांतियाँ और अफवाहें थीं उससे मुक्त होने की दिशा में मैं अग्रसर हुआ। परीक्षक की नजर में इस शोध ग्रंथ का जो भी मूल्यांकन हो वो मुझे मंजूर होगा, लेकिन इस शोध ने मुझे एक ऐसा इंसान बनने में मदद की है जो किसी के प्रति अचानक से कोई धारणा नहीं बनाता, साथ ही किसी भी चीज को पूर्वाग्रह से मुक्त होकर देखता है।

जब मैं शोध विषय तय कर रहा था तब इसमें बीमार जीवन भी शामिल था, क्योंकि मैं खुद भी एक ऐसे बीमारी से जूझ रहा था जो लाईलाज है। आज भी मैं इस बीमारी से पीड़ित हूँ। इलाज के क्रम में मैंने चिकित्सा की कई पद्धति का सहारा लिया लेकिन अंतिम समाधान कहीं नहीं मिला। अपने शरीर में हर दिन एक यातनादायक बीमारी को ढ़ोना बहुत पीड़ादायक है। इसके इलाज के लिए मैंने मूर्खतावश साधु-सन्यासी का भी सहारा ले लिया। जहाँ मेरा यौन शोषण होते-होते बचा। पीएचडी में इस विषय को चुनने का ख्याल भी उसी अनुभव की उपज है। ऐसा समुदाय जो अपने आप से भी लड़ रहा होता है और साथ ही उसे समाज से भी लड़ना पड़ता है। उसकी लड़ाई दोहरी हो जाती है। मेरी बहन और जीजा दोनों डॉक्टर हैं साथ ही साथ मेरा भांजा और भांजी दोनों मेडिकल की ही तैयारी कर रहे हैं। इसलिए इस क्षेत्र से लगाव स्वभाविक है। इसलिए अब जब किसी बीमार को देखता हूँ तो उससे गहरे जुड़ जाता हूँ। लेकिन पूर्णतः बीमारों पर केन्द्रित कहानियों की अनुपलब्धता के कारण मैंने बीमार जीवन को अंततः शामिल नहीं किया। वैसे वृद्ध जीवन और विकलांग जीवन की कहानियों में बीमार लोगों का प्रसंग बार-बार आता है। अंततः विषय 'हिंदी कहानियों में उपेक्षित जीवन के विविध आयाम' तय हुआ जिसमें भिखारी, विकलांग, वृद्ध और एलजीबीटी समुदाय से जुड़ी कहानियाँ शामिल की गयी। ये सभी समुदाय मेरे लिए बचपन से लगाव और जिज्ञासा के विषय रहे हैं। आज भी जब मैं गाँव जाता हूँ या रिश्तेदारी में जाता हूँ, तो मैं सबसे ज्यादा बुजुर्गों से लगाव महसूस करता हूँ। मैंने अपना लम्बा वक्त अपने नाना जी के साथ बिताया है जो विकलांग भी हैं और वृद्ध भी। साहित्य पढ़ने और समाज को बहुत बारीकी से देखने के बाद मुझे लगा कि कुछ क्षेत्र ऐस हैं जिनके बारे में मुझे कोई जानकरी नहीं है, लेकिन वे समाज के बहुत महत्वपूर्ण पक्ष हैं। वृद्ध, बीमार, भिखारी, विकलांग, हिजड़ा इत्यादि की समस्याओं और परिस्थितियों को लेकर मेरी समझ नाममात्र थी, इसलिए इनके प्रति मेरा आकर्षण बढ़ा। इन समुदायों का जीवन इतना जटिल बना दिया गया है कि बिना गहराई में उतरे आप इनकी समस्याओं को कायदे से नहीं समझ सकते हैं। हिंदी कहानी की मदद से उस जटिलता को समझना आसान हो गया। पहले हिजड़ा (ट्रांसजेंडर) को जब भी देखा उससे डर ही पैदा हुआ। डर ऐसा कि अकेले में दिख जाए तो भाग जाऊं। एक बार ट्रेन में

यात्रा कर रहा था और सामने से कुछ हिजड़े आ गए। मैंने तो उन्हें डर के मारे 10 रुपये दे दिए लेकिन मेरा दोस्त अड़ गया और उनसे बहस करने लगा। एक हिजड़े ने अपना लहँगा उठाया और उसको सिर सहित अपने लहंगे में खींच लिया। बोगी के सभी लोग ठहाका मार कर हँसने लगे। कुछ सैकेंड पहले तक जो मेरा दोस्त अकड़ा पड़ा था अब उसका चेहरा मुरझा गया था। उसने ऐसे अपमान की उम्मीद नहीं की थी। मुझे अपने दोस्त पर बहुत दया आई और हिजड़े पर बहुत गुस्सा आया। जब मैंने शोध के सिलसिले में हिजड़ों के बारे में पढ़ना और समझना शुरू किया तब बहुत सारी बात समझ में आने लगी। समलैंगिक रिश्तों को लेकर मेरी समझ बहुत देर से विकसित हुई लेकिन ऐसा नहीं है कि मैं इससे अनजान था। गाँव में मैंने कई बार देखा और सुना कि कुछ दबंग टाइप के लड़के किसी कमजोर को अकेला पाकर उसके साथ जबर्दस्ती करने की कोशिश करते थे। क्रिकेट टीम के साथ टूर पर भी ऐसे दृश्य देखने को मिल जाते थे। सीनियर टीम में कई बार अंडर एज के खिलाड़ी भी शामिल कर लिए जाते थे और कई बार सीनियर उनके साथ समलैंगिक सम्बन्ध बनाने की कोशिश करते थे और हर वक्त उन्हें अपने पास सोने का ऑफर देते थे। यह अलग बात है कि उस वक्त ये सारी बातें समझ नहीं आती थी और सहज लगती थी।

20वीं सदी के अंतिम और 21वीं सदी के अभी के दो दशकों में साहित्य और समाज में अनेकों परिवर्तन हुए हैं। हिंदी कहानी ने भी उन परिवर्तनों को जिम्मेदारी से दर्ज किया है। पूर्ववर्ती कहानियों के केंद्र में समाज का एक बड़ा तबका नहीं था। छिटपुट ढंग से कुछ रचनाएँ आती थीं जो वंचितों और उपेक्षितों के प्रति सहानुभूति रखती थी लेकिन वह उनके जीवन को समझने के लिए पर्याप्त नहीं थीं। राजेन्द्र यादव के संपादन में 'हंस' ने एक मंच उपलब्ध कराया जिससे वंचितों ने अपनी बात कहनी शुरू की। दलित समुदाय से आने वाले लेखकों ने अपनी व्यथा-कथा खुद साहित्य में दर्ज करनी शुरू की। उसमें अनुभूति की प्रमाणिकता थी। इसी के समानांतर स्त्रियों ने भी अपनी बात कहनी शुरू की। स्त्रियों का लिखना नया नहीं था वह पहले से लिखती आ रही थी, लेकिन इस बार की विशेषता यह थी कि लेखिकाओं ने खुल कर अपनी अलग-अलग समस्याओं पर लिखा। उनके लेखन का दायरा सीमित नहीं था। वह अब तथाकथित वर्जित विषय पर भी खुलकर लिख रही थी । इसी दौर में मंडल कमीशन भारतीय राजनीति और समाज में मील का पत्थर है। मंडल कमीशन की वजह से ओबीसी समुदाय में जो राजनीतिक और सामाजिक उभार हुआ उसका असर धीरे-धीरे साहित्य पर भी पड़ा। दलित साहित्य और स्त्री साहित्य की तरह ओबीसी साहित्य की भी शुरूआत हुई, लेकिन ओबीसी साहित्य आज भी सही आकार नहीं ले पाया है जैसा दलित साहित्य और स्त्री साहित्य ने लिया, जबकि इसी दौर में आदिवासी साहित्य ने पूरी तैयारी के साथ अपनी मजबूत उपस्थिति दर्ज की। बाबरी मस्जिद को तोड़ा जाना और फिर मंडल-कमंडल की राजनीति, ये दो ऐसे प्रस्थान बिंदु थे जिससे समाज में भारी उथल-पुथल मची। ओबीसी की तरह मुस्लिम भी राजनीति के केंद्र में आ गए। साहित्य में मुस्लिम विमर्श की भी शुरुआत हुई | राजेन्द्र यादव के संपादन में 'हंस' पत्रिका का मुस्लिम अंक भी इस कड़ी में प्रकाशित हुआ | वे एक मजबूत वोट बैंक के रूप में एकत्रित हो गए। सत्ता की राजनीति ने उनको समाज में असहज कर दिया। दंगों ने उनकी चिंता और बढ़ा दी। वे खुद को असुरक्षित महसूस करते रहे। साहित्य ने इस पूरे परिदृश्य

को दर्ज किया | साहित्य में वंचितों को लेकर विमर्श का जो दौर शुरू हुआ उसको विस्तार मिला। उदारीकरण और भूमंडलीकरण का प्रभाव भारतीय समाज पर भी पड़ा | विदेशों में चल रहे कई आन्दोलन से यहाँ का साहित्य और समाज भी जुड़ा | विकलांग विमर्श, ट्रांसजेंडर सहित पूरे एलजीबीटी विमर्श, वृद्ध विमर्श जैसे नए विषय पर बात शुरू हुई। जिन विषयों को लेकर साहित्य में नाक-भौं सिकोड़े जाते थे, वे केंद्र में आ गए। आज तो पत्रिकाओं के पूरे के पूरे अंक इन विमर्शों पर केन्द्रित हैं। बात तो यहाँ तक पहुँच गयी कि लोग स्त्री विमर्श के साथ-साथ पुरुष विमर्श की भी भूमिका तैयार करने लगे। यह शोध इन नए विमर्शों को समझने का एक हिस्सा है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध के विषय में शामिल समुदाय समाज में आज भी उपेक्षित हैं | ट्रांसजेंडर को आज भी समाज की तथाकथित मुख्यधारा से अलग रहना पड़ता है | उसको किराये पर मकान देने से भी लोग हिचकते हैं | गाँव के दलितों की तरह उनको भी आम लोगों से दूर एक कोने में रहना पड़ता है | ख़ुशी के अवसरों पर गाने-बजाने के अलावा समाज से उसका कोई सीधा संपर्क स्वीकार नहीं किया जाता | समलैंगिक भी अपनी वास्तविक पहचान के साथ समाज में स्वीकार्य नहीं हैं | विकलागों को सरकारी स्तर पर सहायता मिली और उनकी स्थिति में सुधार हो रहा है | शहर में उनकी स्थिति भले सुधर रही हो लेकिन गाँवों में आज भी बहुत कुछ नहीं बदला है | लेकिन सामाजिक स्वीकार्यता और बराबरी के लिए वे आज भी संघर्षरत हैं | उनकी विकलांगता आज भी समाज में हास्य का विषय है | तेजी से बदलते इस युग में वृद्धों की हालत बिगड़ रही है | परिवार में उनकी उपेक्षा लगातार बढ़ती जा रही है | नयी पीढ़ी के पास उनके लिए समय का अभाव है | फलस्वरूप वृद्ध समाज में अकेले पड़ते जा रहे हैं | भिखारियों के लिए सरकार के पास योजना तो बहुत है लेकिन वह प्रभावी नहीं है | भिखारी भी समाज का एक कटा हुआ हिस्सा है जो दिन भर कुछ पैसों के लिए हाथ फैलाये रहता है और लोगों की घृणा का शिकार होता है | इस प्रबंध में इन्हीं उपेक्षा के कारणों की पड़ताल की गयी है |

इस शोध प्रबंध को मैंने पाँच भागों में विभाजित किया है। पहला अध्याय **'उपेक्षित जीवन और हमारा समाज'** है। इसके अंतर्गत समाज के व्यवहार को समझने की कोशिश की गयी है। कोई समाज और व्यक्ति किसी को क्यों उपेक्षित करने लगता है ? विभिन्न समाजशास्त्रियों और चिंतकों के शोध की सहायता से इसके कारण को समझने की कोशिश की गयी है। उनके जिन सिद्धांतों से सहमती रही उसके लिए हिंदी कहानियों के खास प्रसंग का उदाहरण देकर पुष्ट करने का प्रयास किया गया है। समाज में उपेक्षित किये जाने वाले विभिन्न तबकों की अपनी अलग-अलग समस्या है। सब पर विस्तार से पृथक रूप से बात की गयी है।

दूसरा अध्याय **'हिंदी कहानियों में एलजीबीटी समुदाय'** है। इस अध्याय में पूरे एलजीबीटी समुदाय पर अलग-अलग चर्चा की गयी है। एक बड़ी समस्या इनके हिंदी नामकरण की रही है। जिस पर विस्तार से बात की गयी है। यद्यपि एलजीबीटी समुदाय को लेकर हिंदी साहित्य में विमर्श अभी नया है तथापि हिंदी कहानी की विविधता की वजह से इस अध्याय में इनके तमाम बिन्दुओं पर चर्चा संभव हो

पायी है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक की उनकी सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। ट्रांसजेंडर समुदाय कानूनी लड़ाई भी लड़ रहा है और साथ ही समाज में अपनी स्वीकार्यता के लिए भी संघर्ष कर रहा है। उसके इस दोहरे संघर्ष को हिंदी कहानी की सहायता से समझने का प्रयास किया गया है। इस विमर्श में समलैंगिकता एक प्रमुख हिस्सा है। भारत में भले ही ट्रांसजेंडरों को समाज स्वीकार करने की दिशा में आगे बढ़ रहा है, लेकिन समलैंगिकता को लेकर उसके दरवाजे पूरी तरह बंद है। हालाँकि हिंदी कहानी ने इसकी स्वभाविकता को बिना किसी असजहता के चित्रित किया है। इस अध्याय में उसी स्वाभाविकता को आधार बनाकर भारतीय समाज में इसके स्वरुप और स्वीकार्यता की सम्भावना पर विचार किया गया है।

तीसरा अध्याय **'हिंदी कहानियों में वृद्ध जीवन'** है। हरेक दौर में बुजुर्गों की समस्याओं में बदलाव आता रहता है। उसके अनुसार नयी चुनौतियाँ भी उनके सामने आती हैं। हिंदी कहानी ने अपने प्रस्थान बिंदु से ही अलग-अलग दौर में बुजुर्गों की समस्याओं को देखा है। 'बूढी काकी' से लेकर 'छप्पन तौले का करधन' जैसी कहानियों में इसको देखा जा सकता है। इस अध्याय में सिमोन द बोउआर की किताब 'द ओल्ड एज' के सहारे आदिम युग में भी वृद्धों के जीवन को समझने का प्रयास किया गया है। इस अध्याय में आदिम से लेकर आधुनिक जीवन में वृद्धों की विविध समस्याओं पर चर्चा की गयी है। हरेक युग में उन वृद्धों के साथ समाज और परिवार ने सम्मानजनक व्यवहार किया जो किसी न किसी रूप में सक्षम थे जबकि उन वृद्धों का जीवन कठिनाई में गुजरा जो किसी भी तरीके से किसी को लाभ पहुँचाने की स्थिति में नहीं थे। आधुनिक युग के वृद्धों में एक प्रवृति देखी जाने लगी है कि वे पूर्णतः अपनी अगली पीढ़ी पर निर्भर नहीं हैं। वृद्धों के जीवन संघर्ष को हिंदी कहानी ने भी बहुत बारीकी से चित्रित किया है। उनके शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक, सामाजिक तमाम समस्याओं को हिंदी कहानी में जगह मिली है। इस अध्याय में उन्हीं कहानियों के जरिये हरेक युग के वृद्धों के जीवन संसार को समझने की कोशिश की गयी है।

चौथा अध्याय **'हिंदी कहानियों में विकलांग जीवन'** है। इस शोध में जितने भी उपेक्षित समुदाय का अध्ययन किया है उसमें विकलांग जीवन सर्वप्रमुख है। विकलांगता से जुड़ी समस्याओं को लेकर समाज में बहुत वृहत पैमाने पर काम हो रहा है। जागरूकता भी पहले की अपेक्षा बढ़ी है। उनको सहयोग करने वाले उपकरण की उपलब्धता और संसाधन की गुणवत्ता में भी सुधार हुआ है। लेकिन जिस चीज में सबसे ज्यादा सुधार और बदलाव की जरुरत है वह है लोगों की मानसिकता। इस दिशा में समाज को अभी लम्बी यात्रा करनी है। बड़े शहरों और शिक्षित लोगों में भले ही इसकी शुरुआत हो चुकी है, लकिन ग्रामीण इलाकों में विकलांगों की स्थिति बद-से-बदतर है। जिन विकलांगों को शिक्षा और परिवार का सहयोग मिल जाता है उनके लिए जीना आसान हो जाता है, लेकिन जो इससे वंचित रह जाते हैं उनके लिए समाज में जीना दिन-प्रतिदिन मुश्किल हो जाता है। हिंदी कहानियों में कथा के माध्यम से इस समस्या को देखा जा सकता है। इस अध्याय में हिंदी कहानियों के माध्यम से शारीरिक विकलांग

और मानसिक विकलांग दोनों के जीवन पर अलग-अलग बात की गयी है। हिंदी कहानियों ने विकलांगों की समस्या को सूक्ष्मता से पकड़ा है। विभिन्न उदाहरण और संवाद के जरिये इस अध्याय में विकलांग लोगों के प्रति समाज की सोच को दिखाया गया है। विकलांग जीवन का संघर्ष इन कहानियों के जरिये समझा जा सकता है।

पाँचवा अध्याय **'हिंदी कहानियों में भिखारी जीवन'** है। इस अध्याय में भिक्षावृत्ति की शुरूआती परम्परा से लेकर वर्तमान में उसके स्वरुप पर चर्चा की गयी है। आज कैसे भीख माँगना एक धंधे की शक्ल में बदल गया है ? कुछ लोगों के लिए भीख माँगना धंधा भले ही है, लेकिन कुछ लोगों के लिए यह मज़बूरी है। इस अध्याय में आंकड़ों के साथ विस्तार से इस पर बात की गयी है कि भीख मांगने वालों में बहुत सारे लोग उच्च शिक्षा प्राप्त हैं। बेरोजगारी ने उनको यह सब करने पर मजबूर कर दिया है। हिंदी कहानी भिखारियों के जीवन को कई कोणों से देखती है। इस अध्याय में उन कहानियों के माध्यम से उनके जीवन को गहराई से देखने का प्रयास किया गया है। भिखारी हमारे समाज का आईना है। इस अध्याय में लगातार हो रहे शहरीकरण से उत्पन्न सामजिक गैर-बराबरी पर चर्चा करते हुए भिखारी बनने पर मजबूर आम आदमी की पड़ताल की गयी है।

मैंने अपना एम.फिल. डॉ. गंगा सहाय मीणा जी के साथ किया था। पीएचडी भी उनके ही निर्देशन में शुरू हुआ। लेकिन वे बाद में हिन्दी विभाग से अनुवाद विभाग में चले गए। नियम के अनुसार मुझे हिंदी विभाग के किसी प्रोफेसर के साथ शोध जारी रखना था। इसके लिए मैंने डॉ. राजेश पासवान से अनुरोध किया और उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। शुरू में अपने शोध-निर्देशक को लेकर एक झिझक थी, लेकिन बाद में मेरी सारी चिंता दूर हो गयी। डॉ. राजेश पासवान सर ने मेरे ऊपर कभी दवाब नहीं बनाया और शोध का सहज वातावरण रखा। हाँ, सोशल मीडिया और अन्य हल्के-फुल्के सार्वजनिक आयोजन में मेरे पीएचडी लिखने की सुस्त गति पर जरूर कई बार चुटकी ली। मैंने शोध प्रबंध को अंतिम रूप देने में उनकी उम्मीद से ज्यादा समय ले लिया इसका मुझे खेद है।

मुश्किल से कोई दिन होगा जब मम्मी-पापा फोन नहीं करते हैं। पीएचडी लिखने की वजह से मैं पिछले 400 दिन से घर नहीं गया हूँ। वीडियो कॉल की वजह से सहरसा में रह कर भी उनका साथ हर वक्त दिल्ली में बना रहा। भांजा पीयूष और भांजी सुषमा ने शोध के अंतिम दिनों में समझदारी दिखाई और कम परेशान किया। दोनों बहन कंचन और प्रीति तथा दोनों जीजा जयकुमार और सुमन सौरभ ने पारिवारिक ज़िम्मेदारी से मुक्त रखा और मम्मी-पापा की ज़िम्मेदारी अपने हिस्से में ले ली। मौसरे भाई अमित ने अपने भाई की तरह घर की जिम्मेदारी संभाली।

जेएनयू का झेलम हॉस्टल मेरे लिए दूसरा घर है। मैं शुरूआत से लेकर अंत तक सात साल इसी हॉस्टल में रहा। हॉस्टल के दोस्तों में नित्यानंद, सद्दाम, राजीव राजू, यूनुस, आलोक आजाद, अजय से प्रतिदिन मिलना जुलना रहा। मेस टेबल पर अपने-अपने शोध विषय के साथ-साथ जाति और क्रिकेट ये

दो ऐसे विषय रहे जिस पर सबसे ज्यादा बहस हुई । मनमुटाव भी हुआ। मैस के सभी कर्मचारियों का आभारी हूँ जिन्होंने मुझे कभी भी ज्यादा सब्जी देने से मना नहीं किया, क्योंकि मुझे सब्जी खाना बेहद पसंद है। जेएनयू क्रिकेट टीम के साथियों ने अंतिम समय में क्रिकेट मैच खेलने का दवाब नहीं डाला बस महत्वपूर्ण मैच में खेलने के लिए बुलाया और अंत के कुछ महीनों में तो बुलाना भी छोड़ दिया।

चन्द्रकिशोर जायसवाल ने खुद अपनी कहानी 'नकबेसर कागा ले भागा' मुझे मेल की और बाद में डाक से भी भेज दिया। कहानीकार महेश कटारे, रमेश उपाध्याय, किरण सिंह, अनिलप्रभा कुमार, चित्रा मुद्गल, सूरज प्रकाश और पंकज सुबीर से शोध सम्बन्धी कई कहानियों की जानकारी मिली। संध्या दी जेएनयू में मेरी सीनियर हैं। उन्होंने खुद विकलांगों के ऊपर शोध किया है। उन्होंने मुझे बहुत सारी कहानियाँ और लेख उपलब्ध कराया । इस शोध-प्रबंध हेतु अतुल कुमार सिंह और दीपिका का साक्षात्कार मैंने लिया। दोनों एलजीबीटी समुदाय से आते हैं और उनके अधिकारों के लिए संघर्षरत हैं। दोनों ने बहुत आत्मीय भाव से अपना अनुभव मेरे साथ साझा किया। एलजीबीटी समुदाय के बारे में मुझे कोई विशेष जानकारी नहीं थी। मेघा दीपंकर और गौरब घोष की मदद से मुझे इस दुनिया के बारे में बहुत सारी नयी जानकारी हुई और इस समुदाय से जुड़े लोगों से संपर्क हुआ। इस संपर्क की वजह से मैंने इस समुदाय को बहुत करीब से महसूस किया। इस शोध का दायरा बहुत बड़ा है और इसलिए इसके सामग्री संकलन में भी बहुत सारे लोगों का योगदान है। इस पथ में साथी रहे सभी लोगों का आभार। मेरे गुरु और पटना विश्वविद्यालय, हिंदी विभाग के अध्यक्ष शरदेन्दु कुमार ने शोध से संबंधित एक कहानी मुझे डाक से भेज दी। फेसबुक पर बहुत सारे लोगों ने कहानियों के नाम मैसेज किये। हिंदी समय डॉट कॉम और गद्य कोश पर बहुत सारी कहानी आसानी से मिल गयी। विश्व पुस्तक मेला, नयी दिल्ली जिसकी वजह से मुझे कम मेहनत में शोध संबंधित बहुत सारी किताबें बहुत आसानी से उपलब्ध हो गईं। अलीगढ़ के डॉ. एम. फ़ीरोज़ खान ने एलजीबीटी के ऊपर बहुत सारी सामाग्री उपलब्ध करायी। अंतिम साल का बहुधा समय धौलपुर रीडिंग लाइब्रेरी और झेलम हॉस्टल के रीडिंग रूम में गुजरा। जेएनयू पुस्तकालय, दिल्ली विश्वविद्यालय पुस्तकालय और जेएनयू और डीयू के मित्रों के कमरों में बसे छोटे-छोटे पुस्तकालयों का आभार जिसमें मेरे काम की बहुत सारी सामग्री छुपी थी। इस शोध विषय से संबंधित विविध लोगों से मिलना-जुलना हुआ | उनके अनुभव से भी मैं समृद्ध हुआ | इस शोध प्रबंध की भाषा ऐसी रखी गयी है ताकि वे भी मेरे शोध प्रबंध को पढ़ सकें | अगर ऐसा संभव हुआ तो इसे मैं अपने शोध की सार्थकता मानूँगा |

सहपाठियों में सोनम, रेणु, रामानुज, अशोक, कंचन, धीरेंद्र, दिव्यानंद, मंजू, जेडी, आकृति, बबीता, चंदा, लीना वैसे तो बहुत अच्छे लोग हैं लेकिन इन्होंने 'कितना चैप्टर लिखे' पूछ-पूछ कर जीना हराम कर दिया था। 'कितना चैप्टर लिखे' यह हम लोगों के बीच प्रयोग किया जाने वाला सबसे पसंदीदा 'डायलॉक' था, जो आतंकित भी करता था। शोध प्रबंध लिखने के दौरान किसी भी तरह की वैचारिक दिक्कत हुई तो शिव कुमार रविदास और सुशील से लगातार सलाह लेता रहा। सभी सहपाठियों के बीच

दोनों इसी काम के विशेषज्ञ माने जाते हैं। आशिमा के पत्रकारिता का अनुभव मेरे काम आया। उसका सहयोग पूरी पीएचडी में जगह-जगह पर बिखरा हुआ है। लेखक से मिलने, इंटरव्यू करने, सहयोगी सामग्री उपलब्ध कराने इत्यादि में वह लगातार साथ रही। आनन्द, पीयूष राज, रमेश भैया मुझे जल्दी पीएचडी जमा करने के लिए प्रेरित करते रहे। सुमंत, तेजप्रताप कुमार तेजस्वी और रमेश मेरे अनुज हैं। इन्होंने वक्त-वक्त पर मेरे हिस्से का काम अपने ऊपर लेकर मेरा बोझ हल्का किया और अंतिम समय में इन्होंने प्रूफ रीडिंग भी की। जयंत जेएनयू के मेरे सबसे अच्छे मित्रों में से एक है। उसके पास मुझे उलझाये रखने के लिए बहुत सारे काम होते हैं लेकिन अंतिम समय में उसने भी मुझे मुक्त कर दिया। प्रदीप, सुमित चौधरी, खुशबू, रामभवन, ओम साह और अजीत आर्या ने जिम्मेदारी के साथ प्रूफ रीडिंग की। खास कर प्रदीप ने बहुत बारीकी से मेरी छोटी-छोटी गलतियों की ओर ध्यान दिलाया। मुलायम सिंह ने तकनीकी गलतियों को सुधारने में मदद की | कुणाल और धर्मराज जेएनयू में मेरे सबसे पुराने दोस्त हैं। धर्मराज ने ही मेरे शोध विषय के शीर्षक का अंतिम अंग्रेजी अनुवाद किया है।

भारतीय भाषा केंद्र के कार्यालय प्रभारी रावत जी जैसा धैर्य मैंने विश्वविद्यालय के किसी कर्मचारी में नहीं देखा। शायद रमेश जी पर भी उनका प्रभाव आने लगा है। पीएचडी का छात्र होने के बावजूद हमलोग छोटी-छोटी बातों के लिए उनको परेशान करते और वे दोनों बिना गुस्सा हुए हमारी समस्या का समाधान करते। काश! हमलोगों में भी आपके जैसा धैर्य होता रावत जी।

इस सफ़र में सहयोगी रहे जो नाम छूट गए हैं। उनको दिल से धन्यवाद !

जैनेन्द्र कुमार
कमरा सं- 32 और 343
झेलम छात्रावास, जेएनयू

1. उपेक्षित जीवन और हमारा समाज

1.1 उपेक्षा के विविध आयाम

1.2 उपेक्षा के कारण

1.3 मुख्यधारा और उपेक्षित समाज

1.4 वैश्विक स्तर पर उपेक्षा का इतिहास

1.5 भारतीय समाज में उपेक्षा की परंपरा

1.6 उपेक्षित लोगों की मनोदशा

यह एक संक्रमण का दौर है। एक साथ अनेकों विचार, तकनीक, संस्कृति इत्यादि मिलकर हमें समृद्ध भी कर रहे हैं और भ्रमित भी। संचार माध्यमों के बढ़ते जाल ने पूरी दुनिया को एक मुट्ठी में कर रखा है। समाज और मनुष्य दोनों के लिए यह दिग्भ्रम की स्थिति है। बदलाव की तीव्रता ने समाज में कई परतें बना दी हैं। जब कोई विचार या व्यवहार पहली परत को पार करते हुए आखिरी परत तक पहुँचता है तब तक पहले परत में नया बदलाव दृष्टिगोचर होने लगता है। ऐसा सिर्फ विचार या व्यवहार में ही नहीं अपितु जीवन के तमाम अन्य क्षेत्रों में भी हो रहा है। इस समय की सबसे बड़ी समानता यह है कि किसी भी तरह का परिवर्तन एक साथ पूरी दुनिया में हो रहा है। चाहे वह परिवर्तन भौतिक हो, आर्थिक हो, राजनीतिक हो या फिर तकनीकी । परिवर्तन के इस दौर में सबसे ज्यादा नुकसान मानव मूल्यों का हुआ। एक झटके में सब कुछ पा लेने की अंधी दौड़ ने इंसान को संवेदनहीन बना दिया है। इसका सबसे बड़ा नुकसान मानवता का हुआ है। जीवन के अन्य क्षेत्रों में भले हमने प्रगति कर ली है लेकिन इंसान-इंसान के बीच दूरी बढ़ती चली जा रही है। जो इस भ्रम में जी रहा है कि उसने दुनिया की हर खुशी हासिल कर ली है जबकि अंततः वह भी अकेला ही बच जाता है। कमाल की बात तो यह है कि जो दूसरों के प्रति उपेक्षा का भाव रखता है, कई बार वह खुद भी उपेक्षित होता चला जाता है।

हाशिये के लोगों को लेकर हिन्दी साहित्य सजग रहा है। उपेक्षित समाज को लेकर हिन्दी की जो शुरूआती कहानियाँ हैं उसमें अधिकतर कहानियों का अंत आदर्श के साथ होता है। इस वजह से हाशिये के लोगों की समस्याएँ भी सुलझती प्रतीत होती है। जबकि यथार्थ इसके विपरीत था। कहानियों में भले उपेक्षित पात्रों को जगह मिलती रही लेकिन उनकी जटिलताओं को विस्तार से समझने की कोशिश नहीं हुई। उनको तथाकथित समाज के मुख्यधारा का ही हिस्सा मान लिया गया। जबकि वे मुख्यधारा का हिस्सा होते हुए भी उससे अलग थे। प्रेमचंद की रचनाओं में भी दलित, किसान, मजदूर, स्त्री जैसे उपेक्षित पात्रों को जगह मिली। प्रेमचंद की रचनाओं में जो आदर्श और यथार्थ का द्वंद है वह उनके पूर्ववर्ती और समकालीन रचनाकारों में भी नजर आता है। हालाँकि बाद के दिनों में प्रेमचंद में जरूर बदलाव आया है। उन्होंने यथार्थ की राह पकड़ी। 'कफन' और 'पूस की रात' जैसी कहानियाँ इसका उदाहरण हैं। आजादी के बाद की भी हिन्दी कहानियाँ उपेक्षितों का यथार्थ वर्णन करती है लेकिन समकालीन कहानी ने उपेक्षा के जटिल संदर्भों को जिया है और उसको उसकी पीड़ा को गहन संवेदना के साथ उकेरा भी है। समकालीन कहानी अपने पूर्ववर्ती कहानियों से इस मायने में भिन्न है कि उसने आदिवासी, दलित, पिछड़े, स्त्री, विकलांग, थर्डजेंडर, वृद्ध जैसे उपेक्षित तबकों के जीवन को गंभीरता से लेती है और उसको संपूर्णता में पेश करने की कोशिश करती है। पूर्ववर्ती कहानीकार इन हाशिये के लोगों की ज़िंदगी में गहराई से प्रवेश करने में असफल रहे थे जबकि समकालीन कहानी ने इन हाशिये के लोगों को केंद्र में लाकर खड़ा कर दिया। इस वजह से इस दौर में तमाम नए विमर्शों की शुरूआत हुई।

उपेक्षा और शोषण को लेकर बौद्धिकों ने अपने-अपने मत प्रकट किये हैं। जिससे उपेक्षा के कारणों को जानने- समझने में मदद मिलती है। शोषण की अवधारणा को समझने में मार्क्सवाद भी मदद करता है। इसमें वर्ग की बात की जाती है जो उत्पादन और उसकी प्रक्रिया से संबन्धित है। इसे स्पष्ट करते हुए मार्क्सवादी विचारकों ने लिखा है कि "अपनी आधारभूत वस्तुओं की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनुष्य प्रकृति से कच्चा माल लेते हैं तथा उसे अपनी मेहनत से उत्पादों में परिवर्तित कर देते हैं। इस पूरी प्रक्रिया में उत्पादन के साधन के अलावा कई व्यक्ति भी सक्रिय होते हैं, जिसमें से एक तो उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण रखने वाले लोग होते हैं तथा दूसरा अपनी श्रम-शक्ति लगाने वाला श्रमिक। इन दोनों के हित आपस में विरोधी होते हैं, जिसके कारण ये आपस में टकराते हैं। वर्ग-संघर्ष और वर्ग- द्वंद्व इन्हीं दोनों(पूंजीपति) और निम्न(श्रमिक) वर्ग की टकराहट का परिणाम है।"[1] लेकिन समाज में सिर्फ यही दो वर्ग नहीं है। इसमें मध्यवर्ग भी शामिल है। पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली में यह बुर्जुवा लोगों का ही प्रतिनिधित्व करता है। यह वर्गीय अवधारणा उत्पादन से जुड़ी है इसलिए समय के साथ विकसित हुए बहुत सारे समुदाय इससे बाहर हो जाते हैं। वृद्ध, विकलांग, ट्रांसजेंडर, समलैंगिक, भिखारी इत्यादि के जीवन को समझने के लिए दूसरे साधनों पर भी गौर करना होगा

1.1. उपेक्षा के विविध आयाम

उपेक्षा शब्द अपेक्षा का विपरीतार्थक है। यानि जब हम किसी से किसी बात की उम्मीद करते हैं और सामने वाला उस उम्मीद को पूरा नहीं करता है या नकार देता है तब सामने वाला उपेक्षित महसूस करता है। उपेक्षा के बड़े छाते के नीचे हिन्दी के नकार, दमन, शोषण, उत्पीड़न, भेदभाव, अवहेलना, तिरस्कार, असमानता, अन्याय जैसे शब्द शामिल हो सकते हैं। समाजशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक रूप से ये सभी शब्द उपेक्षा से जुड़ते हैं। समाजशास्त्र में उपेक्षित जीवन पर गंभीर शोध हुआ है। समाजशास्त्र में इसे 'मार्जिनल मैन' यानि 'हाशिये के लोग' या 'सीमांत आदमी' कहा गया है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री राबर्ट.ई.पार्क ने इसे अवधारणात्मक रूप दिया है। सामाजिक वैज्ञानिकों ने उपेक्षा के लिए सामाजिक व्यवस्था को जिम्मेदार ठहराया है। गिस्ट और राइट के अनुसार तो लोगों के हाशिये पर जाने का कारण व्यवस्था की संरचना है। असमान रूप से होता विकास भी असमानता की खाई को गहरा कर रहा है। सतीश जमाली की कहानी 'पुल' के माध्यम से इसे आसानी से समझा जा सकता है। "उसने सोचा कि जिस दिन यह पुल तैयार हुआ होगा और जिन मजदूरों ने इस पर काम किया होगा उनमें से कई बाद में अपाहिज बनकर या भिखमंगों की शक्ल में इस पुल पर आ बैठे होंगे। जैसे उसे पता है ज्यों-ज्यों यह महानगर फैलता जा रहा है और जो बड़ी-बड़ी इमारतें और नई-नई कालोनियाँ बन रही है उन्हें बनाने वाले मजदूर अपनी झोपड़ियों को एक स्थान से उखाड़ कर नगर के बाहर ले जाते हैं और फिर उन्हीं झोपड़ियों में से वे भिखारी और अपाहिज बनकर इस पुल पर या इन्हीं कालोनियों और बड़ी-बड़ी इमारतों में माँगने आते हैं।"[2] भारतीय समाज की संरचना और उसके अंदर की जटिलता की इसमें बड़ी भूमिका है। विकास की समावेशी प्रवृत्ति यहाँ देखने को नहीं मिलती है। बहुत सारे समुदाय इस दौर में पिछड़ गए।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उपेक्षित समुदाय की चेतना इतनी कुंद पड़ गयी कि कई बार उनको एहसास भी नहीं होता है कि वे सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक सभी स्तरों पर पिछड़ गए हैं। तथाकथित रूप से खुद को मुख्यधारा में मान रहा आदमी दरअसल में हाशिये की ज़िंदगी जी रहा होता है।

राबर्ट.इ.पार्क ने खास कर उन उपेक्षित लोगों पर ध्यान केन्द्रित किया जो स्थान परिवर्तन के बाद नयी सांस्कृतिक परिस्थितियों से जूझते हैं और साथ ही वो लोग जिनका विकास दो प्रजातियों के मिलन के बाद संभव हुआ। वैसे तो दो अलग-अलग प्रजातियों के लोगों के बीच की सांस्कृतिक भिन्नताओं और परिवर्तन का अध्ययन पहले से होता आया है लेकिन एक विषय के तौर पर इसका अध्ययन आधुनिक समय में शुरू हुआ। राबर्ट.इ.पार्क ने इसे 'सीमांत आदमी' (Marginal Man) नाम दिया और इस अवधारणा को व्यवस्थित रूप दिया। अपने लेख 'मानव का स्थान-परिवर्तन और सीमांत आदमी' में उन्होंने लिखा "विभिन्न प्रजातियों के बीच आपसी संबंध के बाद जो नयी प्रजाति अथवा पीढ़ी विकसित होती है, वह संक्रमण के दौर से गुजरती है तथा धीरे-धीरे अपने समाज में हाशिये पर चली जाती है।"[3] पार्क इसे मिश्रित खून का आदमी या मिश्रित आदमी मानते हैं। प्रचलित मान्यताओं के विपरीत होने के कारण उसमें एक अलग तरह की बेचैनी और अकेलापन आ जाता है। पार्क आगे लिखते हैं कि "समय के साथ दो प्रजातियों के अंतः प्रजनन के फलस्वरूप उनके मिजाज और शारीरिक आकृति में भी परिवर्तन आता है।"[4] कई बार यह भी उनके उपेक्षा का कारण बन जाता है। अमेरिका और अफ्रीका के अश्वेत इसके उदाहरण हैं। हाशिये के लोगों के व्यक्तित्व में दो संस्कृति में पलने-बढ़ने के कारण दोहरी चेतना विकसित होने लगती है। "भिन्न-भिन्न सांस्कृतिक परिवेश में पलने और बढ़ने के कारण, खासकर 'वर्णसंकर' चरित्रों की यह नैसर्गिक चाहत होती है कि वह अपने से ताकतवर समूह में स्थान पा जाए।"[5] लेकिन जब ऐसा नहीं हो पाता है तब वह निराश होने लगता है। वह खुद को संकट में पाता है। ऐसी ही दिक्कत उन लोगों के साथ भी होती है जो बेहतर ज़िंदगी की तलाश में अपने मूल स्थान को छोड़ एक नए परिवेश में खुद को ढालने की कोशिश करते हैं। जब नए स्थान का प्रभावशाली समूह उसे अपना लेता है तब तो समस्या कम आती है लेकिन कई बार अस्वीकार की परिस्थिति भी आती है। "एक तो प्रजातीय भिन्नता वाली मिश्रित संस्कृति से उसका सामना होता है तथा पूरी तरह सांस्कृतिक भिन्नता, उसे समूह में व्यवस्थित होने में कठिनाई उत्पन्न करती है। इस स्थिति में वह व्यक्ति अपने आपको एकदम अकेला पाता है।"[6] हाशिये के सभी लोगों की परिस्थितियाँ एक जैसी नहीं होती, ना ही उनका व्यक्तित्व समान होता है। सामाजिक संघर्ष और पहचान की लड़ाई की प्रक्रिया के दौरान उसमें बदलाव आता है। कई बार यह संघर्ष लंबा चलता है जिसके कारण प्रभावित व्यक्ति का गुण और चरित्र सिमटकर रह जाता है। वह पूर्वाग्रह से भर जाता है और उसकी मान्यता में भी स्थिरता नहीं रह जाती है। "समाजशास्त्रियों ने हाशिये के लोग से संबंधित अपनी अवधारणा में स्पष्टतः इस बात को स्वीकार किया है कि हर परिस्थिति में सभी हाशिये के लोगों के गुण अलग-अलग होते हैं। उनके अनुभव करने की प्रक्रिया भी भिन्न-भिन्न होती है तथा उनकी कोशिश होती है कि अपने तथा अपने से ताकतवर समूह अथवा समुदाय में एक

अलग पहचान बनायें। यह कोशिश तब और गहरी हो जाती है, जब वे इस बात को महसूस करने लगते हैं कि संस्कृति और प्रजातीय दृष्टि से उस ताकतवर समुदाय की पहचान एकदम अलग है।"[7]

पाओलो फ्रेरे ने उपेक्षा को अवधारणात्मक रूप में देखा। उन्होंने 'उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र' जैसी किताब लिखकर इसके जटिल संदर्भों को सुलझाने की कोशिश की। उन्होंने उत्पीड़ितों के संबंध में लिखा कि "उसकी समस्त ऊर्जा स्वयं 'उत्पीड़क' बनने में नष्ट हो जाती है और लोग 'नये मनुष्य' को इस रूप में नहीं देख पाते कि यह उत्पीड़न से मुक्त होने की प्रक्रिया में इस अंतर्विरोध का समाधान करने से पैदा होगा। उनके लिए 'नये मनुष्य' का मतलब होता है स्वयं उत्पीड़क बन जाना।"[8] एक उत्पीड़ित भी उपेक्षा के कारणों को समाप्त करने के बजाय एक उत्पीड़क बन जाना चाहता है। यह बहुत आसान रास्ता होता है। वह इस पूरी व्यवस्था से उलझने के बजाय एक सरल मार्ग खोजने की कोशिश करता है और उत्पीड़क का स्थान ले लेना चाहता है। यह किसी भी तरह से समस्या का समाधान नहीं है। "उपेक्षा करनेवाला और उपेक्षा सहनेवाला दोनों ही जिस प्रक्रिया से गुजरते हैं वह मानवीय मूल्यों का अंत करने वाली प्रक्रिया है क्योंकि 'उपेक्षा' करनेवाला जहाँ एक ओर उपेक्षा करके अमानुषिकरण की प्रक्रिया में कदम रखता है। वहीं दूसरी ओर जिसका दमन हो रहा है उसके हृदय में भी उपेक्षा करने वाले व्यक्ति के प्रति एक प्रकार की कटुता व विकार उत्पन्न होता है। इस प्रकार वह भी आमानुषिकरण की प्रक्रिया से बच नहीं पाता।"[9] पाओलो फ्रेरे इस पूरी प्रक्रिया पर चिंता व्यक्त करते हुए कहते हैं कि इस व्यवस्था का अंत सिर्फ वही व्यक्ति कर सकता है जो खुद पीड़ित है। उसे भी एक शोषक बनने के बजाय शोषण को खत्म करने की दिशा में काम करना चाहिए। उसकी ज़िम्मेदारी बहुत बड़ी है। उसे शोषण और शोषक दोनों को अहिंसक रूप से मुक्त करना है। अगर उपेक्षित के मन में उपेक्षा का डर है तो वहीं उपेक्षा कर रहे व्यक्ति के मन में भी यह डर बना रहता है कि उसकी यह सत्ता खत्म न हो जाये। इसका एक ही समाधान है कि उपेक्षा को ही समाप्त करने की कोशिश की जाय। इस काम को करने की ज़िम्मेदारी सबसे ज्यादा उपेक्षित लोगों की है। उसे बिना डरे संघर्ष का रास्ता चुन लेना चाहिए। "उपेक्षा को दूर करने के लिए पहले तो यह आवश्यक है कि मनुष्य उसके कारणों व प्रभावों को आलोचनात्मक ढंग से समझे ताकि एक ऐसी नयी स्थिति का सृजन कर सके जिसमें पूर्णतर मनुष्य के लिए प्रयास करना संभव हो, क्योंकि उपेक्षित लोग सीमांतीय अथवा हाशिए के लोग नहीं हैं। वे ऐसे मनुष्य नहीं हैं जो समाज के बाहर रहते हों। वे हमेशा भीतर रहे हैं। उस संरचना के भीतर जो उन्हें नकार भाव देखती रही है। उनकी समस्या का समाधान उत्पीड़न अथवा उपेक्षा की संरचना में उन्हें संघटित करना नहीं अपितु उस संरचना को बदलना है ताकि वे मुक्त हो सकें।"[10]

जब किसी भी समाज को सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक इत्यादि स्तरों से अलग रखा जाता है तो वह उपेक्षित समुदाय की श्रेणी में आता है। इस प्रक्रिया में असमानता बढ़ती है। "विभिन्न व्यक्तियों, समुदायों, वर्गों का सामाजिक और आर्थिक संसाधनों पर नियंत्रण का अंतर (एक वर्ग अथवा समुदाय विशेष का उस पर वर्चस्व तथा दूसरे को इन आधारों पर वंचित रखना) 'असमानता'

कहलाता है और इसी असमानता के आधार पर बहुत सारे वर्ग, समुदाय तथा व्यक्ति उपेक्षा का शिकार होते हैं |"[11] जब हम किसी के प्रति दयालुता दिखाते हैं या किसी भी प्रकार से उसके प्रति सहानुभूति दिखाते हैं तो यह उसके आत्मसम्मान से जुड़ जाता है । यह भी एक प्रकार की उपेक्षा है । उपेक्षा अवमानना का समानार्थी हो सकती है । अविशाई मार्गलिट ने अपनी किताब 'डीसेंट सोसायटी' में अवमानना के कई स्तरों पर बात की है । इसी कड़ी में अविशाई मार्गलिट कहते हैं "अधिकारों की माँग करने की अक्षमता एक तरह की अवमानना है । अधिकार की माँग करने का साहस एक उपेक्षित व्यक्ति नहीं जुटा पाता इसलिए वह उपेक्षा के इस चक्र से स्वयं को बाहर नहीं निकाल पाता । उदारवादी दृष्टि में व्यक्ति की संप्रभुता का प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है, इसलिए इस दृष्टिकोण के लिए निजी स्वायत्तता की कमी ही अवमाननाकारी हो जाती है |"[12]

उपेक्षा और मान्यता एक दूसरे से जुड़े हुए शब्द हैं । मान्यता सकारात्मक रूप से परस्पर बराबरी का भाव पैदा करती है जबकि नकार और खारिज के जरिये किसी की उपेक्षा की जाती है । तब हम तुलनात्मक रूप से किसी दो व्यक्ति को सामने खड़ा करके एक के सामने दूसरे को कमतर साबित करते हैं तब उपेक्षा या अवहेलना होती है । "अवमानना अथवा उपेक्षा नकारात्मक चेतना के रूप में परिभाषित होती है और यह नकारात्मक चेतना मान्यता न मिलने अथवा मानव समाज की सदयस्ता से वंचित रहने का परिणाम होती है |"[13] भारत की तरह पश्चिम के देशों की भी स्थिति बहुत बेहतर नहीं है । दोनों समाज ने बहुत प्रगति कर ली लेकिन असमानता दोनों समाज में मौजूद रही । विकास की अंधी दौड़ में दोनों जगह बहुत सारे लोग पीछे छूट गए । अपनी गतिशीलता की प्रक्रिया में विकासशील देश अपनी बुराइयों को छुपा नहीं पाते | वहीं विकसित देश ऐसा करने में सफल हो जाते हैं । जबकि उसका भी भीतरी ढाँचा गैरबराबरी के तमाम तिकड़मों में उलझा हुआ है |

हम जब किसी जन्मांध या विकलांग व्यक्ति की मदद के लिए अतिरिक्त प्रयास करते हैं तो दरअसल हम उसके अभाव को और गहरा कर रहे होते हैं । हमारा व्यवहार अन्य लोगों के प्रति अलग और विकलांगों के प्रति अलग होता है । उनके प्रति दया और करुणा के साथ सहानुभूति का भाव एक तरह से उपेक्षा ही है, क्योंकि इसमें समानता के व्यवहार का अभाव है | समान्यतः ऐसा लगता है कि दो असमान लोगों में ही उपेक्षा का भाव होता है । लेकिन यह पूर्णरूपेण सच नहीं है । कई बार एक छोटे से परिवर्तन मात्र से एक जैसे लोग आपस में एक-दूसरे को उपेक्षित करने लगते हैं । जैसे भारतीय समाज में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) तीनों की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्थिति ठीक नहीं है, इसके बावजूद ये लोग थोड़ी उन्नति पाकर आपस में भी एक दूसरे की उपेक्षा करने लगते हैं । यहाँ तक कि कुछ स्त्रियाँ अपने आस पास के अन्य स्त्रियों के साथ उसी तरह उपेक्षा का व्यवहार करने लगती हैं जैसा पुरुष उनके साथ करते हैं । परिवार में भी माँ-बाप अपने सभी बच्चों से समान व्यवहार नहीं रख पाते । कभी उपलब्धियों, कभी सुंदरता कभी किसी अन्य कारण के आधार पर वे भी अपने बच्चों का मूल्यांकन कर बैठते हैं । इस वजह से उनका व्यवहार प्रत्येक संतान के

साथ एक जैसा नहीं होता है। इसी प्रकार जब माता-पिता वृद्ध हो जाते हैं और उनकी क्षमता कम हो जाती है तब बच्चों का व्यवहार भी उनके प्रति बदलने लगता है। ऐसी उपेक्षा के सामाजिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक कारण होते हैं। वैसे उपेक्षा के कारण बदलते रहते हैं।

हमारे समाज में सौंदर्य का प्रतिमान सदैव एक जैसा रहा। काले को असुंदर और गोरे को सुंदर मानने की परंपरा यहाँ चलती आई है। यह अंग्रेजों के प्रभाव से हुआ या इसका कोई अन्य कारण है इस पर अलग से शोध किया जा सकता है लेकिन यह पूर्वाग्रह हमारे समाज में आज भी मौजूद है। आज भी किसी लड़की का शारीरिक रंग काला होने की स्थिति में उसकी शादी में बहुत दिक्कत आती है। इसी तरह किसी एसिड अटैक की शिकार महिला के आगे का जीवन भी बहुत कठिनाई से गुजरता है। इसकी वजह है कि आदमी सौन्दर्यप्रिय होता है और उसके सौन्दर्य का प्रतिमान बहुत संकुचित है, इसलिए वह इस फ्रेम के बाहर की चीजों के प्रति बहुत सकारात्मक नहीं होता है। वक़्त के साथ उपेक्षित किए जाने के कारण सूक्ष्म होते चले गए हैं। इसकी बहुत सारी परतें हो सकती हैं इसलिए यह कहना मुश्किल है कि कौन, कहाँ, किस परिस्थिति में उपेक्षा का शिकार हो सकता है ?

1.2. उपेक्षा के कारण

जब किसी आदमी को इस बात का एहसास होता है कि उसके पास जो है उसकी प्राप्ति सामने वाले को नहीं है तो उसका व्यवहार बदल जाता है। वह अपने को विशेष समझ कर उसको नीचा दिखाता है। पीड़ित व्यक्ति बाद में खुद भी उत्पीड़क होना चाहता है। "वस्तुतः मानव के स्वभाव में ही यह निहित है कि वह अक्सर स्वयं को अवमानना से बचाने के लिए पहले से ही वर्चस्व की राजनीति अपनाना चाहता है और इससे पहले कि कोई दूसरा उसकी उपेक्षा करे वह पहल कर देता है ताकि उसकी पकड़ सामने वाले पर बनी रहे। प्रत्येक मनुष्य स्वयं को दूसरे से श्रेष्ठ व मजबूत देखना चाहता है इसलिए भी सामने वाले व्यक्ति को दबाने का प्रयत्न करता है।"[14] इससे यह अमानवीय प्रक्रिया अनवरत जारी रहती है। हर व्यक्ति स्वयं को सामने वाले की तुलना में बेहतर और श्रेष्ठ देखना चाहता है। इसके अलावा इंसान एक खास ढाँचे के अंदर सौन्दर्यप्रेमी होता है इसलिए जो चीज उसके बाहर होती वह उसे स्वीकार नहीं कर पाता। वह उस असुंदर चीज से भागता है। कोई भी इंसान अपनी कमजोरियों को लेकर सचेत होता है। अगर किसी के बाजू पर सफ़ेद दाग है तो वह पूरे बाजू के कपड़े पहन कर उसे ढकना चाहता है। यदि किसी के सिर का अधिकतर बाल गिर गया हो तो वह टोपी पहन कर उसकी भरपाई करना चाहता है। कोई छोटा है तो वह लंबे हील वाले जूते पहन कर खुद को लंबा दिखाना चाहता है। "मनुष्य स्वभाव से सौंदर्यप्रिय प्राणी है इसलिए वह विपरीत परिस्थितियों तथा विकृत चेहरों की उपेक्षा करता है क्योंकि वह कुरूपता को सहन नहीं कर पाता इसलिए जीवन के सुंदर पक्ष को तो अपना लेता है परंतु जो पक्ष सुंदर नहीं है उससे दूर भागना चाहता है। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति किसी प्रकार के अभाव से ग्रस्त है तो वह अभाव की क्षतिपूर्ति किसी दूसरे गुण को उभार कर करना चाहता है।"[15]

पहले तो आदमी अपनी कमजोरियों से लड़ने की कोशिश करता है लेकिन जब हार जाता है तब अपनी कमजोरियों को बाह्य विकल्प से ढकना चाहता है। आदमी अपनी कमजोरियों से लड़ते हुए खुद की भी उपेक्षा करने लगता है। इसे आत्म-उपेक्षा कह सकते हैं। वह खुद के अस्तित्व के प्रति भी शंकित हो जाता है। कई बार तो माँ-बाप खुद अपने बच्चों की उपेक्षा कर बैठते हैं जिसकी कमजोरी वो दुनिया के सामने जाहिर नहीं होने देते। यह छिपी हुई उपेक्षा या प्रच्छन्न उपेक्षा की श्रेणी में आता है। जिन बच्चों को बचपन में अनुकूल परिस्थितियाँ नहीं मिलती हैं | वह जीवन भर उपेक्षित सिंड्रोम में चले जाते हैं। कुछ बच्चों के माता-पिता नहीं होते, या जिनका जीवन अनाथालय में गुजरा होता है, उनमें से अधिकतर जीवन भर असुरक्षा बोध से ग्रसित हो जाते हैं। विनोद कुमार दवे की कहानी 'पद्मश्री थर्डजेंडर' में रेवती एक हिजड़े बच्चे को जन्म देती है। वैसे जैव वैज्ञानिक दृष्टि से किसी भी बच्चे के जन्म के लिए सिर्फ औरत उत्तरदायी नहीं है। उसमें पिता के शुक्राणु की भी उतनी ही भूमिका है, लेकिन रेवती की सास इसके लिए सिर्फ रेवती को दोष देने लगती है। उसका अवचेतन मन नहीं चाहता है कि उसके बेटे के मर्दानगी पर कोई आँच आए। परिवार के अमानवीय व्यवहार से तंग आकर रेवती घर से बच्चे को लेकर भाग जाती है। इसके लिए बाद में गाँव के लोग रेवती के पति सुजीत के नामर्द होने की अफवाह भी फैलाते हैं। इसलिए सुजीत की माँ का रुख रेवती के प्रति शुरू से आक्रामक है। "कलमुँही मर क्यों नहीं गयी? क्या मुंह दिखाना अब समाज में। गला घोंट कर मार दो दोनों को। ये ही पैदा करना था तो 9 महीने तक कोख में लेकर क्यों बैठी रही ? जहर खा लेती। फांसी पर लटक जाती। कुएं में कूद जाती। मुझे पता होता तो लात मार देती तेरे पेट को डाकण ! पता नहीं क्या जन दिया कुलटा तूने। छिनाल कहाँ मेरे बेटे के गले पड़ गयी..."[16]

उदाहरण के तौर पर बिहार के लोग काम की तलाश में शेष भारत ही नहीं बल्कि दुनिया के अनेक देशों में फैले हुए हैं। इस तरह का पलायन बिहार ही नहीं बाकी पिछड़े समाज के लिए आम बात है। "आर्थिक विवशता इसका एक महत्वपूर्ण कारण है, क्योंकि एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने का सबसे बड़ा कारण जनसंख्या-वृद्धि तथा उसके कारण वहाँ काम का अभाव होना है। काम की तलाश में लोग स्थान-परिवर्तन करते हैं तथा नयी जगह पर अपने आपको व्यवस्थित करने की कोशिश |"[17] उनके साथ उनकी संस्कृति, खान-पान, भाषा-बोली भी जाती है लेकिन भिन्न जगहों पर उनको व्यवस्थित होने में समय लगता है। हर जगह की अपनी भाषा और रहन-सहन है। जैसे बिहार के पुरुष घर के अंदर लुंगी पहनना पसंद करते हैं। खास कर मजदूर वर्ग जो काम की तलाश में बाहर निकलता है। दिल्ली-पंजाब जैसे जगह पर जहाँ उनका सर्वाधिक पलायन है वहाँ घर के अंदर भी हाफ पैंट या ट्राउजर पहनने का प्रचलन है। मज़ाक का पात्र बन जाने के भय से वे भी धीरे-धीरे उसको अपना लेते हैं जबकि उनको लुंगी से ज्यादा आरामदेह कुछ भी नहीं लगता। भाषा की दिक्कत मजदूर वर्ग को भी उतनी ही है जितनी पढ़े-लिखे लोगों को। बिहार की हिन्दी और दिल्ली की हिन्दी में फर्क है। दिल्ली में आकर जब कोई बिहारी मजदूर बिहार की भोजपुरी, मगही और मैथिली मिश्रित हिन्दी बोलता है तो उपहास का पात्र बन जाता है। लोग कई बार इस भाषा की हँसी उड़ाते हैं। फलस्वरूप वह दिल्ली की हिन्दी सीखने का प्रयास करता

है। अंत में हालत यह रह जाती है कि न तो वह पूरी तरह से दिल्ली की हिन्दी सीख पाता है और न ही उसके पास बिहार की हिन्दी पहले जैसी रह जाती है। जब वह वापस घर जाता है तो बिहार में लोग उसकी भाषा को 'दिल्ली सेट' कहकर उसका मज़ाक बनाते हैं। बिहार के जो बच्चे पढ़ाई के लिए दिल्ली आते हैं वो कुछ दिनों की मेहनत के बाद दिल्ली की भाषा तो सीख जाते हैं लेकिन कुछ वर्णों के शुद्ध उच्चारण में बहुत संघर्ष करते हैं। श और स, ड़ और र के गलत उच्चारण को लेकर उनका बहुत मज़ाक बनता है। यह भी उपेक्षा का एक प्रकार है जिसमें कोई भी आदमी एहसासे कमतरी का शिकार हो सकता है। रेडियो या किसी मीडिया हाउस में वह उपेक्षा का शिकार हो सकता है। राबर्ट.इ.पार्क ने भी लिखा है "संक्रमण काल में उनके चरित्र में नैतिक द्वंद्व और संघर्ष की भावना विकसित होने लगती है, जिसके परिणामस्वरूप वे पुरानी आदतें छोड़ने के लिए बाध्य हो जाते हैं। लेकिन नयी आदतें इतनी जल्दी बन नहीं पाती हैं, जिसके कारण अपने आपको वे हाशिये पर खड़ा महसूस करते हैं।"[18]

1.3 मुख्यधारा और उपेक्षित समाज

प्रत्येक राष्ट्र की अपनी एक मुख्यधारा होती है। "भारतीय संदर्भ में मुख्यधारा की अवधारणा का सीधा संबंध राष्ट्रीय जीवन की उस धारा से है, जो देश की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास की प्रक्रिया की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, क्योंकि यही दो महत्वपूर्ण कारक हैं, जो व्यक्ति समाज, समुदाय अथवा समूह का 'हाशियापन' निर्धारित करते हैं। दूसरी बात, भारतीय समाज की जो संरचना है, उसमें कई भाषा, संप्रदाय और जाति के सामाजिक समूह रहते हैं, जिनकी मान्यताएं और निष्ठाएं बिल्कुल अलग-अलग हैं। इसी कारण, जब भी सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया शुरू होती है, तब उसके समर्थन और विरोध में अनेक ताकतें उठ खड़ी होती है। ये ताकतें सामूहिक तो होती ही हैं, कभी-कभी जातिगत और सांप्रदायिक भी होती हैं।"[19] वक्त के साथ हो रहे सामाजिक परिवर्तनों में कुछ समुदाय ऐसे रहे जिन्होंने अपनी पहचान और हक के लिए संगठित होकर लगातार लड़ाई लड़ी। लेकिन कुछ समुदाय ऐसे भी रहे जो संगठित नहीं रहे। उनमें अपने शोषण और दमन से लड़ने का भी साहस नहीं था। फलस्वरूप वो धीरे-धीरे समाज की तथाकथित मुख्यधारा से बाहर चले गए। यह प्रक्रिया इतनी सूक्ष्म रही कि उन्हें पता भी नहीं चला कि वे सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सभी स्तरों पर हाशिये पर जा चुके हैं। "विकसित और शक्तिशाली समाजों की यह कोशिश रहती है कि हाशिये के समाजों को विकास का भार ढोने के लिए जोता जाए और इनके परिश्रम के बल पर ही मुख्यधारा का निर्माण किया जाए।"[20] जो भी समूह इस 'विकास प्रक्रिया' के साथ सार्थक ढंग से नहीं जुड़ पाता है वह धीरे-धीरे हाशिये पर चला जाता है और उपेक्षित महसूस करने लगता है।

भारतीय समाज एक 'बहुसामुदायिक' समाज है। यहाँ अलग-अलग जाति, धर्म, संप्रदाय, संस्कृति, भाषा, प्रजाति से जुड़े लोग रहते हैं। सबकी अपनी अलग-अलग प्रतिबद्धता है और यही उनकी पहचान भी है। सबका अपना अलग अस्तित्व भी है। इस वजह से देश की 'तथाकथित' मुख्यधारा से उनका टकराव भी होता रहता है। "कई बार रूढ़िगत सामाजिक-व्यवस्था और अज्ञानता, मुख्यधारा के

विकास की प्रक्रिया में अव्यवस्था और अधिकांशतः प्रभु-वर्ग द्वारा जान बूझकर उन्हें विकास की प्रक्रिया से वंचित कर दिये जाने के कारण वह समुदाय अथवा समाज राष्ट्रीय जीवन की मुख्यधारा में सम्मिलित नहीं हो पाता है। परिणामतः विकास की प्रक्रिया से वंचित हो जाने के कारण वह समूह अथवा समुदाय धीरे-धीरे समाज की मुख्यधारा से कट जाता है और अंततः हाशिये पर चला जाता है।"[21] समाजशास्त्रियों ने उपेक्षित लोगों का विश्लेषण करते हुए यह मत दिया कि लंबे समय तक हाशिये पर रहने के कारण उसके व्यवहार और चरित्र में अंतर आ जाता है। मुख्यधारा से कट जाने के कारण उसके अंदर बहुत सारे असामान्य परिवर्तन आ जाते हैं। उसके सोचने और अनुभव करने का तरीका बदल जाता है। "वह एक ही साथ दो विश्व में रहता है, जिसमें कम या अधिक वह अजनबी बना रहता है।"[22] इस वजह से रोबर्ट ई. पार्क ने इनको 'दोहरी चेतना का व्यक्ति' कहा है। उपेक्षित लोग इस तरह की ज़िंदगी जीने में अभ्यस्त हो जाते हैं। वह अपने अस्तित्व को लेकर सशंकित रहता है। वह आत्मसंघर्षरत रहता है। उसे हर वक़्त आसन्न संकट का एहसास बना रहता है। लेकिन इस उलझन को वह सुलझा नहीं पाता। फलतः उसके अंदर निराशा छाती चली जाती है। वह रुग्ण और उदास होता चला जाता है। उपेक्षित जीवन जी रहे लोगों में अजनबीपन, दोहरी चेतना, संकट का अनुभव जैसी प्रवृतियाँ आम है।

1.4 वैश्विक स्तर पर उपेक्षा का इतिहास

प्रारम्भ से लेकर वर्तमान तक उपेक्षा लगभग हर समाज में रही है। पश्चिम के देशों में एथेंस मानव सभ्यता का एक बड़ा केंद्र था। वहाँ भी दासों की एक बड़ी आबादी थी। उनको कोई भी अधिकार नहीं दिया गया था। यहाँ सुकरात और प्लेटो जैसे महान दार्शनिक हुए। सुकरात को तो राज्य व्यवस्था ने समतामूलक समाज की कल्पना करने और जनता को भड़काने के तथाकथित जुर्म में मृत्युदंड दिया था। उनके शिष्य प्लेटो पर उसका गहरा प्रभाव पड़ा और उन्होने उस परंपरा को आगे बढ़ाया। प्लेटो को सिसली के राजा डायोनीसियस ने 387 ई.पू. गुलाम के रूप में बेच दिया था। भले ही उसके मित्र ने उसको उसके स्वामी से मुक्त करवा दिया लेकिन तब तक प्लेटो के मन में उपेक्षित और दास लोगों के प्रति एक गहरी संवेदना उत्पन्न हो चुकी थी। उन्होंने अपने इस अनुभव को अपनी कृति 'द लाज' में लिपिबद्ध भी किया। वैसे प्लेटो को मुख्य रूप से अपनी कृति 'द रिपब्लिक' के लिए जाना जाता है। उन्होंने अपनी रचनाओं में सामाजिक न्याय की लगातार बात की और पीड़ित-उत्पीड़ित के पक्ष में खड़े हुए। उन्होंने अपनी कृति में उपेक्षित वर्गों के अधिकार की लगातार वकालत की। स्त्रियों के पक्ष में खड़े होने वाले वे शुरूआती दार्शनिक थे। उन्होंने कहा कि "स्त्री और पुरुष असमान नहीं है अतः उनसे समान व्यवहार किया जाना चाहिए।"[23] उन्होंने समाज में स्त्री अधिकार पर बल दिया और उनके लिए समाज में सम्मानजनक अधिकार की माँग की। उन्होंने समाज के हरेक उपेक्षित वर्ग की समस्याओं पर बात की। वे विकलांग लोगों के हितों को लेकर भी सजग थे। "मानव समाज में विकलांगों का शोषण करना अथवा उन्हें जीवन जीने का समान अधिकार न देना, उनके प्रति घोर अन्याय है और यह असंवेदनशीलता का द्योतक है।[24] उन्होंने समाज के हरेक उस कोढ़ की पड़ताल की जो समाज को खोखला कर रहा है।

उन्होंने उस समस्या से लड़ने का विकल्प भी पेश किया। प्लेटो ने लड़के-लड़कियों दोनों को समान शिक्षा देने की बात की। उन्होंने राज्य से सभी व्यक्ति की क्षमता के अनुसार काम लेने का विकल्प सुझाया।

प्लेटो के शिष्य अरस्तू का विचार अपने गुरु से बिलकुल अलग था। वह गुरु का भले सम्मान करता था लेकिन उनके विचारों से बुरी तरह असहमत था। वह समानता का विरोधी था। उसने स्त्रियों को पुरुष से कमतर माना। "पुरुष स्त्रियों से श्रेष्ठ है, स्वतंत्रजन दासों से श्रेष्ठ हैं; और यूनानी लोग बर्बर जातियों से श्रेष्ठ हैं।"[25] उन्होंने स्वामी और दास बनने की प्रक्रिया को व्यक्ति की क्षमता से जोड़ा। उसने एक पुरुष को पिता और पति के तौर पर बच्चों और पत्नी को नियंत्रित करने की बात की। अरस्तू औरतों की जगह घर के अंदर मानते थे ताकि बच्चों की परवरिश अच्छे से हो सके। इसी तरह उन्होंने एक पुत्र और पुत्री की परवरिश अलग ढंग से करने की सलाह दी। उसने पुत्र को स्वतंत्र नागरिक बनाए जाने की चर्चा की तो वहीं पुत्री को इस तरह प्रशिक्षण देने की वकालत की जिससे वह पति और पिता की आज्ञा का पालन कर सके। प्लेटो ने दास प्रथा का समर्थन किया। इन्होंने दास और मालिक की अवस्था को जन्मजात माना। उनका मानना था कि समानता से समाज अराजक हो जाएगा। इसलिए समाज की बेहतरी के लिए दास और स्वामी का संबंध जरूरी है। दास को अपने स्वामी के वचनों को मानना चाहिए।

यूरोप का मध्यकाल चर्च के आधिपत्य का काल था। पोप का सत्ता पर भी नियंत्रण था। जनता धर्म और अंधविश्वास में उलझी हुई थी। बाद के दिनों में जिस विज्ञान का प्रभाव यूरोप पर होने वाला था उसका कोई निशान इस समय दिखाई नहीं दे रहा था। धर्म जनता को बरगला कर उसका शोषण कर रहा था। तर्क के लिए कोई जगह नहीं थी इसलिए इस समय कोई व्यवस्थित विचार आकार नहीं ले सका। इस पूरी प्रक्रिया पर जिसने भी सवाल उठाया उसकी आवाज अनसुनी की गयी और उसे सजा दी गयी। यूरोप के इतिहास में यह सामंतवाद का युग है, अंधकार युग है। जमीन के मालिक पोप की सहायता से मेहनतकश लोगों का दमन और शोषण करते थे। इस अंधेरे समय में भी दांते, सेंट टॉमस, सेंट ऑगस्टाइन जैसे चिंतकों ने इस वर्चस्व के खिलाफ आवाज बुलंद की। सेंट ऑगस्टाइन ने कहा "यदि राज्य लालसा और अहंकार पर टिका होता है तो वह स्वतंत्र मनुष्यों पर स्वतंत्र मनुष्यों का शासन नहीं रह जाता है अपितु उसमें शासक अपनी प्रज्ञा को दास बनाकर उस पर अत्याचार करने लगते हैं।"[26] उन्होंने धर्म की भूमिका को नए सिरे से स्पष्ट किया। वे सर्वसत्तावाद के खिलाफ थे। उन्होंने आत्मज्ञान और आत्मसंयम को विश्व शांति और सद्भाव के लिए सबसे जरूरी बताया। दांते ने तो धर्म को निजी आस्था का विषय बताया और इस पर पोप के राजनैतिक वर्चस्व को गैरजरूरी कहा। वे मानते थे कि सार्वजनिक जीवन में धर्म के आधार पर कोई हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। उन्होंने पोप को चेताया कि इस दखल से उसके आध्यात्मिक शक्ति के प्रभावहीन हो जाने का भी खतरा है। उन्होंने अपनी विचार प्रक्रिया से जनता को जोड़ा और साथ ही साथ उनको धर्म के नाम पर होने वाले शोषण से बचाने का भी काम किया।

बाद के दिनों में औद्योगिक क्रांति के बाद यूरोप के समाज में बड़ा परिवर्तन हुआ। पुरानी जड़ परम्पराएँ टूटी और नवीन विचार पद्धति का जन्म हुआ। तर्क और विज्ञान ने सोचने-समझने का तरीका बदल दिया। धर्म की जगह मनुष्य खुद चिंतन के केंद्र में आ गया। इस प्रकार सोलहवीं शताब्दी ने चिंतन की दिशा को बदल कर रख दिया। पुनर्जागरण और धर्मसुधार की भी इसमें महती भूमिका रही। मार्टिन लूथर इस युग के सबसे बड़े राजनीतिक दार्शनिक थे। इस युग में उनके अतिरिक्त जॉर्ज लॉक, हीगेल, कालमार्क्स, सार्त्र, रसेल जैसे चिंतकों ने यूरोप के समाज को आंदोलित कर दिया। कार्ल मार्क्स इस युग के सबसे बड़े चिंतक हुए। उन्होंने पहली बार समग्रता में सामाजिक गैरबराबरी का विरोध किया। उनका दृष्टिकोण वैज्ञानिक और व्यवहारिक था। मार्क्स मानते थे कि धर्म समाज के लिए कल्याणकारी नहीं है। उन्होने धर्म का विरोध किया। "धर्म ने मनुष्य के दुखों को बढ़ाया ही है क्योंकि वह उन सुखी व्यक्तियों का स्वार्थपूर्ण संगठन है जो ईश्वर, भाग्य, स्वर्ग, नरक आदि बातों की अफीम खिलाकर संसार की भूखी-नंगी जनता को बहकाये रखना चाहते हैं।"[27] उन्होंने इस बात पर बल दिया कि समाज के पिछड़ेपन की वजह सामाजिक गैरबराबरी है। सत्ता कुछ लोगों के हाथों में है इसलिए उनका वर्चस्व खत्म होना चाहिए। पूंजी का समान वितरण होना चाहिए। उन्होंने स्त्री के घरेलू श्रम को भी मान्यता दिलाने का प्रयास किया। वे समाज में किसी भी तरह के धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक वैषम्य के खिलाफ थे। बर्टेण्ड रसेल इंग्लैंड के प्रसिद्ध दार्शनिक हुए। उनका जोर इस बात पर था कि एक इंसान को दूसरे इंसान से घृणा नहीं करना चाहिए। वे उस व्यवस्था के पक्षधर थे जो हर तरह से लोकतान्त्रिक विचारों की पक्षधर हो। वे स्वतंत्र विचार को दमन करने वाली व्यवस्था के खिलाफ थे। शिक्षा में बुनियादी बदलाव को ही वे असली बदलाव प्रक्रिया का वाहक मानते थे। उनका मानना था कि समाज में फैली असमानता को दूर करने में शिक्षा सबसे सहायक है। "जिस तरह मनुष्य ने दूसरों को नियंत्रित करना सीखा है, उसी तरह वह अपने को नियंत्रित करना सीख जाये तो दुनिया की अधिकांश सामाजिक-आर्थिक समस्याओं को सुलझाया जा सकता है।"[28]

1.5 भारतीय समाज में उपेक्षा की परंपरा

भारतीय समाज अपने मूल स्वरूप में समन्वयवादी रहा है। जहाँ एक तरफ यहाँ के सामंतवादी व्यवस्था में शोषण की पुरानी परंपरा थी तो वहीं दूसरी ओर उसके विरोध की भी लंबी परंपरा रही है। हिन्दू धर्म की कुरीतियों के खिलाफ यहाँ बौद्ध, जैन और सिक्ख जैसे धर्मों का जन्म हुआ। एक तरफ यहाँ के समाज में कुछ खास लोगों का वर्चस्व रहा साथ ही दूसरी तरफ उसके विरोध की भी समानान्तर परंपरा चलती रही। समय के साथ उनका समन्वय भी होता रहा। कथित तौर पर अनार्य देवता शंकर बहुत आसानी से आर्य देवता के तौर पर स्वीकार कर लिए गए और बुद्ध बाद में विष्णु के दसवें अवतार मान लिए गए। जबकि दोनों आर्यों की प्रचलित पद्धति से अलग थे। आज भी नकार और स्वीकार की जद्दोजहद जारी है। आज भी भारतीय समाज न पूरी तरह आधुनिक है न पारंपरिक। जहाँ एक तरफ वह विज्ञान को अपना रहा है तो वहीं दूसरी तरफ वह अपनी परंपरा से भी चिपका हुआ है।

भारतीय समाज वैदिक काल से भी धार्मिक और अध्यात्मिक रहा है। इस समाज में ब्राह्मणवाद का शुरू से प्रभाव रहा है। पुराने राजतंत्र से लेकर आधुनिक लोकतन्त्र तक उसकी जड़ें मजबूत हैं। हालाँकि समाज का एक बड़ा हिस्सा इसके खिलाफ सदा आंदोलित रहा है। महावीर जैन ने जैन धर्म के माध्यम से अहिंसा का उपदेश दिया। उन्होंने छोटे-छोटे जीव-जंतुओं के प्रति भी मानव को दयालु बनने के लिए प्रेरित किया। जैन धर्म ने यह संदेश दिया कि किसी को ठेस या हानि पहुँचा कर जीवन जीना दुख का कारण है। इससे कोई सुखी नहीं रह सकता। अच्छे व्यवहार और आचरण से ही समाज का कल्याण हो सकता है। जैन धर्म में (क) हिंसा का त्याग (ख) स्तेय का त्याग (ग) असत्य का त्याग (घ) परिग्रह का त्याग पर विशेष जोर दिया गया है। "दूसरों को दबाकर या उन्हें हानि पहुँचाकर कोई भी व्यक्ति सुखी नहीं रह सकता क्योंकि दूसरों के प्रति दुर्व्यवहार व्यक्ति के भीतर भिन्न प्रकार की ग्रंथियों को जन्म देता है और वह स्वयं ही अपने द्वारा की जाने वाली दूसरों की अवहेलना के दुष्चक्र में फंस जाता है तथा आत्मग्लानि से ग्रस्त हो जाता है।"[29] बौद्ध धर्म ब्राह्मणवादी व्यवस्था के बेहद खिलाफ रहा। उसने धर्म के सहारे होने वाले कर्मकांडों का विरोध किया। उसने धर्म के मानवीय पहलू पर बल दिया। यह धर्म किसी की उपेक्षा को नकारता है। भले ही इसमें उपेक्षित लोगों को लेकर सीधा-सीधा कुछ ना कहा गया हो लेकिन यह धर्म सबके कल्याण की बात करता है। बौद्ध धर्म प्रेम, अहिंसा, परहित, सौहार्द के मार्ग का अनुसरण करता है।

भारतीय समाज का मध्यकाल यूरोपीय मध्यकाल से अलग है। इस समय भारत में मुस्लिम शासन शुरू हो चुका था। सामंतवादी प्रवृतियाँ ज़ोरों पर थी। मुस्लिम शासन की कट्टरता की वजह से हिन्दू स्त्रियों के अधिकार सीमित करके उनको घर के अंदर कैद कर दिया गया ताकि उनकी इज्जत बची रहे। हिन्दू समाज सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से श्रीहीन महसूस कर रहा था। ऐसे समय में दक्षिण भारत से भक्ति आंदोलन की हवा चली जिससे पूरा उत्तर भारत भी प्रभावित हुआ। इस समय भारतीय समाज को तुलसीदास के रूप में एक समन्वयवादी कवि मिला जिसने समाज को एक सूत्र में बांधने की कोशिश की। आदर्श चरित्रों के जरिये उन्होंने दिग्भ्रमित मानवचेतना को एक आधार दिया। हालाँकि उन्होंने उस वर्ण व्यवस्था का समर्थन किया जो आदमी की पहचान उसके जन्म के आधार पर करता है। उन्होंने स्त्रियों के प्रति भी व्यापक दृष्टिकोण का परिचय नहीं दिया। इसी युग में उनसे ठीक पहले कबीरदास का जन्म हुआ। कबीरदास ने जन्म के आधार पर किसी व्यक्ति की पहचान का विरोध किया और कर्म को प्रधानता दी। उन्होंने दलित समुदाय को अपमानजनक ज़िंदगी जीने को मजबूर किए जाने का विरोध किया। इसके अलावा उन्होंने हिन्दू और मुस्लिम दोनों धर्मों में मौजूद गैर बराबरी का भी विरोध किया। मानव जाति को आपस में बाँटने की किसी भी कोशिश के खिलाफ वे सदा मुखर रहे।

भक्तिकाल के बाद एक नए युग का उदय हुआ। सत्ता मुगलों के हाथों से निकल कर अंग्रेजों के हाथों में जाने लगी। भारतीय समाज में भी पुनर्जागरण की आहट हुई। पश्चिम के प्रभाव और स्वाभाविक विकासशील चेतना के फलस्वरूप अपनी परंपरा के नकारात्मक पक्षों पर लोगों का ध्यान गया। तार्किक

दृष्टि से सभी चीजों को देखा जाने लगा। एक तरफ देश की आजादी का स्वप्न पल रहा था तो दूसरी तरफ सामाजिक कुरीतियों से लड़ने की तैयारी भी चल रही थी। राजा राममोहन राय, दयानन्द सरस्वती, विवेकानंद, भीमराव अंबेडकर, फुले दंपत्ति, महात्मा गाँधी जैसे महापुरुषों ने अपने-अपने तरीके से समाज में फैली सामाजिक बुराइयों से लोहा लिया। राजा राममोहन राय ने ब्रह्म समाज की स्थापना की और स्त्रियों की दशा सुधारने का प्रयास किया। उन्होंने बाल-विवाह, पर्दा प्रथा, सती प्रथा, जाति प्रथा, धार्मिक अंधविश्वास जैसे सामाजिक बुराइयों के खिलाफ लंबी लड़ाई लड़ी। साथ ही उन्होंने स्त्री-शिक्षा, विधवा विवाह पर जोर दिया। आधुनिक भारतीय समाज में बराबरी का सबसे बड़ा संघर्ष डॉ. अंबेडकर के नेतृत्व में शुरू हुआ। सदियों से अपने हकों से वंचित एक बड़ा समुदाय अपने अधिकारों के लिए सजग हुआ। उसने यह समझ लिया कि जन्म के आधार ऊँची-नीची जाति में बंटा यह समाज उनके लिए धोखा है। उन्होंने अपने अधिकारों की लड़ाई शुरू की। जब भारत आजाद हुआ तो संविधान के जरिये उनके उत्थान का प्रयास किया गया। अंबेडकर खुद संविधान सभा के संविधान प्रारूप समिति के अध्यक्ष थे। दलितों को आरक्षण के माध्यम से मुख्यधारा में लाने का प्रयास किया गया जो कि देश की आबादी का एक बड़ा हिस्सा थे।

महात्मा गाँधी के नेतृत्व में भारत ने अंग्रेजों के खिलाफ आजादी की लड़ाई लड़ी। वे अंग्रेजों के अत्याचार के विरुद्ध खड़े हुए। उन्होंने 'सत्य' और 'अहिंसा' को अपना हथियार बनाया। उनका सपूर्ण चिंतन हिंसा और असमानता के विरोध में था। उनकी कल्पना ऐसे राज्य की थी जिसमें आम लोगों की भी संसाधन में हिस्सेदारी हो। वे लोगों को आत्मनिर्भर बनाने वाली शिक्षा पद्धति के हिमायती थे। आजादी की लड़ाई के साथ-साथ वे हरिजनों के उत्थान की भी लड़ाई लड़ रहे थे। उन्होंने दलितों को 'हरिजन' नाम दिया और इसी नाम से एक पत्रिका भी निकाली। वे भारतीय मानस में दलितों के प्रति बैठी उपेक्षित मानसिकता को बदलने के लिए लगातार प्रयत्नशील रहे। हालाँकि अंबेडकर से उनकी दलितों के कई मुद्दों पर बहस हुई है और उन पर सवाल भी उठाए गए। दलितों के सम्पूर्ण विकास को लेकर गाँधी की समझ स्पष्ट नहीं रही है लेकिन वो पहले ऐसे राजनेता रहे जिन्होंने सार्वजनिक रूप से इस मुद्दे को उठाया।

1.6 उपेक्षित लोगों की मनोदशा

उपेक्षित व्यक्ति की मनोदशा आम लोगों से अलग होती है | उसे अपने अस्तित्व पर ही शक होता रहता है | समाज द्वारा दुत्कारे गए इंसान की समस्त ऊर्जा अपने अस्तित्व की पुनर्स्थापना में ही गुजरती है। कई बार वह इतना निराश हो जाता है कि उसके अन्दर संघर्ष की क्षमता का एहसास कमजोर पड़ने लगता है | ऐसी अवस्था में आदमी नकारात्मक विचार से ग्रसित हो जाता है | कोई अजनबियत का शिकार हो जाता है तो कोई ईर्ष्यालु हो जाता है | उपेक्षित व्यक्ति खुद को संकटों से घिरा पाता है | वह भय और संत्रास का भी शिकार हो जाता है |

1.6.1 अजनबीपन

अपने अस्तित्व की तलाश में कई बार इस प्रक्रिया में लड़ते-लड़ते वह टूट जाता है और अंत में हार स्वीकार कर लेता है। हार स्वीकार करने का मतलब इसे अपनी नियति मानकर जीने लगता है। इस दौरान वह अजनबीपन का शिकार भी हो जाता है। चन्द्रकिरण सौनरैक्सा की कहानी 'खुदा की देन' की नज्जो ऐसे ही अजनबीपन की शिकार है। छज्जा के नीचे दब जाने के कारण उसका शरीर विकलांग हो गया। घर की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है इसलिए उसका ठीक से ईलाज भी नहीं हो पाया। जिस घर में उसका परिवार रहता है वह लाला राम भरोसे की पुरानी हवेली थी। मकान की हालत जर्जर थी। लाला को उस मकान से कोई फायदा नहीं था इसलिए उसकी मरम्मत नहीं करवाता था। इसलिए छज्जा गिरा और रज्जो उसमें दब गयी। एक खटोला पर उसका जीवन सिमट गया। उसने भी सब कुछ से खुद को काट लिया। वह पूरी तरह से अजनबीयत की शिकार है। पूरी कहानी में वह लगभग संवादविहीन है। लोग उसके मरने की दुआ मांगने लगे। सेठ को उसका खटोला भी खटक गया तो उसे नीम के पेड़ के नीचे डाल दिया गया। एक दिन आँधी-पानी में भींग कर वह बीमार पड़ी और मर गयी।

अजनबीपन उपेक्षित लोगों के जीवन की एक महत्वपूर्ण स्थिति है। अपने घर-समाज को छोड़ कर किसी अन्य संस्कृति और समाज में तालमेल बैठाने के दौरान या समाज द्वारा काट दिये जाने पर ऐसा क्षण आता है। जब किसी भी व्यक्ति के आसपास जीवन जीने के अनुकूल साधन और परिस्थिति नहीं होता है तब वह अजनबीपन के गिरफ्त में आता चला जाता है। इस स्थिति में उसके अंदर नैतिक द्वंद्व और संघर्ष की भावना जागृत होती है। उस पर पुराने को भूल नए को अपनाने का आग्रह बना रहता है। फलस्वरूप वह अजनबियत का शिकार होने लगता है। "अजनबियत अनुभव की वह स्थिति है, जब मनुष्य स्वयं को अपने संसार के केंद्र के रूप में महसूस नहीं कर पाता है....वह स्वयं अपनी पहुँच से परे होता है और इसीलिए किसी अन्य की पहुँच से भी वह परे हो उठता है। अपने अथवा बाहरी संसार के साथ किसी सृजनात्मक रूप से संबद्ध नहीं रहता"[30] इस प्रक्रिया में आदमी समाज के साथ-साथ खुद से भी कटने लगता है। अजनबीपन आंतरिक और बाह्य दोनों स्तरों पर होता है। ऐसे किसी भी आदमी के लिए यह बेचैनी, तनाव और मानसिक द्वंद्व का समय होता है। वह आत्मकेंद्रित हो जाता है। वह अपने स्व को बाह्य से काट लेता है और आस पास और परिस्थितियों के प्रति उदासीन हो जाता है। यह हाशिये के संदर्भ में आत्मचेतना का समय है।

अजनबीपन उपेक्षित लोगों के लिए एक स्वाभाविक स्थिति है। तथाकथित मुख्यधारा से अलग जब उपेक्षित समुदाय अपने आप को व्यवस्थित करने का प्रयास करता है तब उसे कई विरोधी परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। उसके चरित्र में नैतिक द्वंद्व और संघर्ष की भावना का विकास होने लगता है। उपेक्षित समाज के लोग लगातार हाशिये पर रहने के कारण कई तरह की मानसिक परेशानी से घिर जाते हैं। उन्हें हर वक़्त किसी संकट से घिरे होने का एहसास बना रहता है। कई बार उपेक्षा उन्हें स्थान परिवर्तन को भी मजबूर करती है। स्थान परिवर्तन से उपजी समस्याएँ इतनी बढ़ जाती

हैं कि किसी नए जगह तालमेल बैठाना कठिन हो जाता है। अपनी जड़ों से कट जाने का भय उनमें बेचैनी और तनाव उत्पन्न करता है। नयी परिस्थिति की वजह से उन्हें लगातार समझौता करना पड़ता है। वह इस पूरी प्रक्रिया में विवश होते हैं। वस्तुतः वह दो अलग संस्कृति के बीच फँसा होता है। स्टॉनक्वीस्ट ने इसे उनके दूसरे जीवन चक्र के रूप में विश्लेषित किया। यह अनुभव ही उनके विरोधी स्वर के प्रकटीकरण का आधार बनता है। मानसिक और शारीरिक रूप से उनमें परिवर्तन आता है। वह भ्रमित होते हैं, उनको नींद नहीं आती, नींद आ गयी तो तुरंत खुल जाती है, बैचनी का रहना, सबसे कटा रहना आदि उनके लक्षण हैं। इन सब के बीच वह खुद को व्यवस्थित करने की लगातार कोशिश करता रहता है।

1.6.2 ईर्ष्या

जब कोई उपेक्षित व्यक्ति अपने जीवन में किसी चीज की कमी महसूस करता है और उसे प्राप्त करने में असफल रहता है तो वह निराश हो जाता है | लेकिन जब वही चीज किसी और को बहुत आसानी से मिल जाती है तो उसके अन्दर ईर्ष्या का भाव उत्पन्न हो जाता है | जगदीश चंद्र की कहानी 'आधा टिकट' में बीरो एक विकलांग युवती है। बच्चे उसका मज़ाक उड़ाते हैं। "बीरो मौसी, क्या तेरा रेल में अब भी आधा टिकट लगता है ?..बीरो मौसी, तू बौनी क्यों रह गयी ? तू कुबड़ी क्यों है ? तेरे कूल्हों पर काठी-सी कैसे बन गई है ?"[31] वह सबके लिए मज़ाक की पात्र है। वह किसी से हँसी-ठट्ठा भी करने की कोशिश करती है तो लोग पलटकर 'करारा' जवाब देने की कोशिश करते हैं। "पोस्ती ने तो अपने सुंदर (बंदर) के लिए बीरो का रिश्ता माँगा था। सुना है बीरो तो तैयार थी, पर सुंदर ने इंकार कर दिया था |"[32] पूरी परिस्थितियाँ बीरो के खिलाफ थीं । उसके सामने उसके दोस्तों की शादी होती चली गई लेकिन विकलांगता की वजह से उसकी शादी कहीं नहीं हो सकी। वह समाज में हँसी की पात्र थी। हालाँकि बीरो को इसकी आदत पड़ चुकी थी। उसने खुद को इस माहौल में ढाल लिया था। लेकिन जब लीला शादी के बाद अपने सुहागरात की कहानी सुनाने लगी तो बीरो के अंदर की ईर्ष्या और दबी हुई हसरत बाहर आ गई। उसके लिए लीला की खुशी असहनीय हो गई। "लीलो, तुम्हें शर्म नहीं आती ऐसी गंदी बातें करते हुए ! तेरी शादी क्या हुई, तू तो बहुत ही बेशर्म हो गई है |"[33] उसके अन्दर यह भाव आ जाता है कि जो चीज मेरे पास नहीं है वह किसी और के पास भी क्यों है ? ऐसा नहीं होने पर उसका स्वभाव ईर्ष्यालु हो जाता है |

1.6.3 संकट का अनुभव

उपेक्षित होने के बाद कोई मनुष्य अपने अस्तित्व और अस्मिता को बचाने के प्रयास को खुद को चारों तरफ से घिरा पाता है। वह इस समय एक अलग तरह के संकट का अनुभव भी करता है। "इस प्रकार के संकटों का गुण है- भ्रमित होना, आँखें खुल जाना, बेचैनी तथा समूह अथवा समुदाय के लोगों से अलग खिंच-खिंचा रहना|"[34] वह खुद के अस्तित्व को बचाने के लिए संघर्ष का रास्ता चुनना चाहता है लेकिन फिर से पराजय का डर उसे दुविधाग्रस्त बना देता है। बदलाव के इस समय में व्यक्ति दोहरी चेतना का भी

शिकार हो जाता है। सकारात्मक संघर्ष ही मनुष्य को नए वातावरण के लिए तैयार करता है |हाशिये पर होने का अर्थ 'पहचान' (Identity) से जुड़ा होता है । इसके अलग-अलग जगहों पर राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक इत्यादि कारण होते हैं। हाशिये पर खड़ा होने का अनुभव यहीं से पैदा होता है |

1.6.4 भय तथा संत्रास

हाशिये पर रहे लोग अपने जीवन में इतना अत्याचार और शोषण देख चुके होते हैं कि वे हर वक्त भयग्रस्त महसूस करते हैं। उनके आसपास ऐसे वातावरण का निर्माण हो चुका होता है कि उनके अंदर विद्रोह का साहस नहीं बचता। उनका जीवन संत्रास के साये में गुजरता है। "उपेक्षित व्यक्ति के भीतर एक प्रकार का भय सदैव बना रहता है इसलिए ही वह अपने अधिकारों के प्रति सजग होकर भी प्रायः उसके लिए संघर्षरत नहीं हो पाता क्योंकि वह यथास्थिति को स्वीकार कर लेता है। उसे सदैव इस बात का भय सताता है कि यदि उसने संघर्ष करने का प्रयत्न किया तो हो सकता है उसकी स्थिति और अधिक दयनीय हो जाये। वह संघर्ष यात्रा की कठिन प्रक्रिया से भी घबराता है और अपने आस-पास के वातावरण से समझौता कर लेता है तथा सब कुछ वैसे ही चलने देता है जैसा चल रहा होता है। यह आकार उसका भय संत्रास में परिवर्तित हो जाता है और वह कभी न समाप्त होने वाली पीड़ा को निरंतर भोगता है।"[35]

आधुनिक समय में इंसान के अंदर संसार को भोगने की प्रवृति हद से ज्यादा बढ़ गयी है। विकास के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों की लूट मची हुई है। इंसान प्रकृति से दूर होता जा रहा है। सबके अंदर ज्यादा से ज्यादा प्राप्त करने की चाहत है। इस वजह से ईर्ष्या, लालच, द्वेष, छल इत्यादि प्रवृतियों में इजाफा हो गया है। जो इस अंधी दौड़ में पीछे रह जा रहे हैं या इसके साथ तालमेल नहीं बैठा पा रहे हैं, वह उपेक्षित हो रहे हैं। मनुष्य एक मशीन के रूप में बदलता जा रहा है। उसके अंदर की मानवीय भावनाएँ ज्यादा पाने की चाहत में दब जा रही हैं। इससे कुंठा का निर्माण हो रहा है। मनुष्य की संवेदनाएँ भी सिकुड़ती जा रही है। संवेदना भी स्वार्थ केन्द्रित होती जा रही है। उपयोग के आधार पर सम्बन्धों का निर्माण हो रहा है। मनुष्य सिर्फ प्रकृति से दूर नहीं हुआ है वरन अपने शरीर की प्रकृति से भी दूर हुआ है। इंसान के अंदर स्वास्थ्य संबंधी दिक्कतें बढ़ रही है। प्रदूषण ने शरीर और मन दोनों को बीमार बनाया है। संसार की दूरी सिमट गयी है लेकिन फिर भी हमारा भावनात्मक लगाव कम हो गया है। असुरक्षा की भावना और अन्योन्याश्रित सम्बन्धों की वजह से इंसान एक दूसरे के करीब रहे हैं। भावनात्मक स्तर पर आपस में उनका जुड़ाव रहा है। बदलते वक़्त में वैज्ञानिक खोजों की वजह से इन्सानों की एक दूसरे पर निर्भरता घटी है। एक सीमित जगह में तमाम संसाधनों की उपलब्धता ने इंसान का दायरा सीमित कर दिया है। एक तरह से वो 'कंफर्ट जोन' में जीने लगा है। जब कोई इंसान इस कंफर्ट जोन से बाहर आने पर मजबूर होता है या किया जाता है तब उसके व्यवहार में बहुत सारे परिवर्तन नजर आते हैं। कई बार वह उपेक्षित कर दिया जाता है तो कई बार वह खुद दूसरों की उपेक्षा करने लगता है। दरअसल इंसान खुद से ज्यादा अपने द्वारा निर्मित मायाजाल से ही संचालित होता है।

मृदुला गर्ग की कहानी 'जिजीविषा' में पति आदित्य भण्डारी के दोनों गुर्दे फेल हो चुके हैं। वह बीमार और लाचार होकर अस्पताल में भर्ती है। उसकी पत्नी उसे किसी भी कीमत पर ठीक होते देखना चाहती है। लेकिन पति आदित्य भण्डारी अपनी दयनीयता की वजह से कुंठित हो गया है। उसे लगता है कि उसकी पत्नी उसको सिर्फ इसलिए ठीक होते देखना चाहती है क्योंकि वह विधवा कहलाने से डर रही

है। उसे लगता है सब लोग आस पास जवान हो रहे हैं वह ही बीमार पड़ा है। वह बहुत आंतरिक द्वंद्व में है । उसे अपनी पत्नी की सकारात्मकता से दिक्कत है। जब एक रिश्तेदार उससे मिलने आया है तो उसे उसकी खुशी और मुस्कुराहट से दिक्कत होने लगती है। उसको अपनी पत्नी पर शक होता है। उसको लगता है कि उस रिश्तेदार के मन में उसकी पत्नी के लिए प्रेम है। वह सिर्फ उसके मरने का इंतजार कर रहा है। "आह, तुम कितनी महान हो, और कितने मामूली आदमी के लिए बलिदान दिए जा रही हो। इस बेपनाह प्यार का असली सत्पात्र तो मैं हूँ। कैसा शुष्क बना लिया है तुमने अपना जीवन। तुम चाहो तो मैं तुम्हें छुटकारा दिला सकता हूँ, तुम्हारी ज़िंदगी में हँसी-खुशी ला सकता हूँ। साफ कह रहा है वह। मुझे उसका एक-एक शब्द सुनाई दे रहा है।"[36] उपेक्षा की संरचना कई स्तर पर निर्मित होती है। उसके पीछे सामाजिक स्थिति, आर्थिक स्थिति, मानसिक अवस्था, शारीरिक क्षमता, लिंग, जाति, उम्र की भी भूमिका होती है। इसी आधार पर यह निर्धारित होता है कि कोई उपेक्षित समूह का है या उपेक्षा करने वाले समूह का। "उपेक्षा एक अमानवीय व्यवहार है परंतु साथ ही यह बहुत बार मनुष्य के अवचेतन मस्तिष्क की हीनता ग्रंथि से भी संचालित होता है।"[37] उपेक्षा से दोनों वर्ग प्रभावित होता है। दोनों अशांति और बेचैनी का अनुभव करते हैं।

अब सवाल यह है कि शोषण और उपेक्षा को इस समाज से कम कैसे किया जाय ? इसके लिए मानवीय गुणों पर ही भरोसा दिखाना होगा। उत्पीड़ित को उत्पीड़क के प्रति नफरत की भावना से मुक्त होना होगा। एक सकारात्मक मनोदशा के साथ इस दुष्चक्र से निकलने का प्रयत्न उत्पीड़ित को ही करना होगा। "उत्पीड़न की स्थिति पर विजय प्राप्त करने के लिए पहले तो यह आवश्यक है कि मनुष्य उसके कारणों को आलोचनात्मक ढंग से समझे, ताकि रूपांतकारी कर्म से वे एक ऐसी नई स्थिति का सृजन कर सकें, जिसमें पूर्णतर मनुष्यता के लिए प्रयास करना संभव हो।...हालाँकि उत्पीड़न की स्थिति स्वयं अमानुषिक बनाने वाली होती है, जो उत्पीड़कों और उनके द्वारा उत्पीड़ितों, दोनों को प्रभावित करती है, फिर भी दोनों की पूर्णतर मनुष्यता के लिए किया जाने वाला संघर्ष उत्पीड़ितों को ही शुरू करना होगा। उन्हें यह संघर्ष वहाँ से शुरू करना होगा, जहाँ उनकी मनुष्यता अवरुद्ध हुई पड़ी है। उत्पीड़क, जो दूसरों को अमानुषिक बनाने के कारण स्वयं अमानुषीकृत होता है, इस संघर्ष का नेतृत्व नहीं कर सकता।"[38] हालाँकि इस तरह का तर्क हमें आदर्श की तरफ ले जाता है। यह एक यूटोपिया जैसा प्रतीत होता है। लेकिन इस तरह आदर्श भी एक उम्मीद पैदा करता है। उपेक्षित समुदाय के लिए इस उम्मीद का होना बहुत जरूरी है। यह उनके अस्तित्व के लिए भी बेहद जरूरी है। "यूँ तो उपेक्षा की धारणा में किसी सकारात्मक पहलू को तलाश कर पाना वैसे तो असंभव है, परंतु एक स्तर पर उपेक्षा अपने शिकार को ऐसी आत्म-परिभाषा अपनाने के लिए प्रोत्साहित करती है जो इतिहास से निकलती है और जिसकी रचना भाषा, रूपक तथा क्रियाशीलता के औजारों के माध्यम से होती है।"[39] इन नवीन संदर्भों से उपेक्षित व्यक्ति खुद का साक्षात्कार कर पाता है। वह अपने अस्तित्व को लेकर जागरूक होता है। वह खुद के प्रति हुए उपेक्षा को समझ पाता है। इन नवीन संदर्भों से शक्ति लेकर वह इस उपेक्षा के कारणों की पड़ताल

करने में सक्षम हो पाता है। उसके अंदर एक तर्कपरक विवेक का निर्माण होता है। यही उसे एक द्वेषरहित संघर्ष मार्ग पर सकारात्मक रूप से ले जाता है।

उपेक्षा करने वाला और उपेक्षित होने वाला दोनों का आपसी संबंध है | उपेक्षा दोनों पक्षों को अमानवीयता की तरफ ले जाती है | दोनों अपने स्तर पर परेशानी का अनुभव करते हैं | वैसे उपेक्षा मानवीय कमजोरी है | उपेक्षा के कई आयाम हैं | लेकिन आधुनिक समय में जिस तरह से जिन्दगी की रफ़्तार बढ़ रही है, उससे सबके अन्दर एक दूसरे से आगे निकलने की होड़ मची है | यही होड़ उपेक्षा का कारण बनती है | इसको स्वाभाविक मनाकर स्वीकार नहीं किया जा सकता और ना ही ऐसी कल्पना की जा सकती है कि यह प्रवृत्ति इंसान के अन्दर से ख़त्म हो जायेगी | इसके समाधान में शोषित-उपेक्षित और शोषक दोनों की भूमिका जरुरी है | उपेक्षित का प्रतिशोध एक नया शोषक पैदा कर सकता है | इसलिए दोनों अपनी जिम्मेदारी निभाते हुए द्वेषरहित वातवरण में ही इसका प्रभाव कम कर सकते हैं और उपेक्षा की संभावना को खत्म करने की ओर बढ़ सकते हैं|

संदर्भ

[1] वी.ई.लेनिन, संकलित रचनाएँ, भाग-9, प्रगति प्रकाशन, मास्को, 1985,
[2] सतीश जमाली, प्रथम पुरुष, साहित्यवाणी, इलाहाबाद, 1972, पृष्ठ-13
[3] Robert E. Park, Human Migration and The Marginal Man, The American Journal of Sociology, May 1928, P- 881
[4] Robert E. Park, Human Migration and The Marginal Man, The American Journal of Sociology, May 1928, P- 883
[5] Evertt V. Stonequist, The Problem of the Marginal Man, The American Journal of Sociology, July 1935, Number-1, P-1
[6] Evertt V. Stonequist, The Problem of the Marginal Man, The American Journal of Sociology, July 1935, P-3
[7] Gist and wright, The Anglo-Indian community in historical perspective, p- 21
[8] पाआलो फ्रेरे, उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र, अनु- रमेश उपाध्याय, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, पृष्ठ-9
[9] डॉ.श्रीमती प्रेम सिंह, डॉ.रिम्पी खिल्लन, समकालीन कहानी और उपेक्षित समाज, नटराज प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2009, पृष्ठ-24
[10] डॉ.श्रीमती प्रेम सिंह, डॉ.रिम्पी खिल्लन, समकालीन कहानी और उपेक्षित समाज, नटराज प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2009, पृष्ठ-25
[11] The definition of inequality: International Encyclopaedia of the social and Behavioural Science, Vol.II
[12] द डीसेंट सोसाइटी, अविशाई मार्गलिट, यूनिवर्सिटी प्रैस, हावर्ड, 1996
[13] लिब्रलिज़्म एंड मल्टीकल्चररिज़्म पॉलिटिकल थ्योरी, चंद्रन कुकुटस, खंड 26, अंक 5, अक्टूबर,1996, पृष्ठ 699
[14] डॉ.श्रीमती प्रेम सिंह, डॉ.रिम्पी खिल्लन, समकालीन कहानी और उपेक्षित समाज, नटराज प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2009, पृष्ठ-25
[15] डॉ.श्रीमती प्रेम सिंह, डॉ.रिम्पी खिल्लन, समकालीन कहानी और उपेक्षित समाज, नटराज प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2009, पृष्ठ-25-26
[16] विनोद कुमार दवे, पद्मश्री थर्डजेंडर, हम भी इन्सान हैं, संपादक- डॉ. एम.फिरोज खान, वांग्मय बुक, अलीगढ़, 2018, पृष्ठ-107
[17] A.S. Oberai And H.K.Manmohan, Causes And Consequences of Internal Migration, Oxford university press, Delhi, 1983, P-15
[18] Robert E. Park, Human Migration and The Marginal Man, The American Journal of Sociology, May 1928, P- 893
[19] देवेंद्र चौबे, समकालीन कहानी का समाजशास्त्र, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 2001, पृष्ठ-41
[20] रामशरण जोशी, मुख्यधारा की अवधारणा, हंस, संपा- राजेन्द्र यादव, दिल्ली, फरवरी 1992, पृष्ठ- 32-33
[21] देवेंद्र चौबे, समकालीन कहानी का समाजशास्त्र, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 2001, पृष्ठ-11
[22] Robert E. Park, Human Migration and The Marginal Man, p- 893
[23] Plato to Marx, page- 35
[24] Plato to Marx, page-36
[25] ओमप्रकाश गाबा, राजनीति चिंतन की रूपरेखा, पृष्ठ-59
[26] ओमप्रकाश गाबा, राजनीति चिंतन की रूपरेखा, पृष्ठ-71
[27] महेंद्र कुलश्रेष्ठ, पाश्चात्य दार्शनिक(प्लेटो से कामू तक), पृष्ठ-76
[28] नंदकिशोर आचार्य, आधुनिक विचार, पृष्ठ-97

[29] डॉ.श्रीमती प्रेम सिंह, डॉ.रिम्पी खिल्लन, समकालीन कहानी और उपेक्षित समाज, नटराज प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2009, पृष्ठ-12

[30] गार्डन चार्ल्स रोडरमल, हिन्दी कहानी: अलगाव का दर्शन, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, 1982, पृष्ठ- 13

[31] जगदीश चंद्र, आधा टिकट, संपा- संध्या कुमारी, जीवन संग्राम के योद्धा, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नयी दिल्ली, 2019 पृष्ठ-66

[32] जगदीश चंद्र, आधा टिकट, संपा- संध्या कुमारी, जीवन संग्राम के योद्धा, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नयी दिल्ली, 2019 पृष्ठ-69

[33] जगदीश चंद्र, आधा टिकट, संपा- संध्या कुमारी, जीवन संग्राम के योद्धा, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नयी दिल्ली, 2019 पृष्ठ-73

[34] Ibid, p-11

[35] डॉ.श्रीमती प्रेम सिंह, डॉ.रिम्पी खिल्लन, समकालीन कहानी और उपेक्षित समाज, नटराज प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2009, पृष्ठ-32

[36] मृदुला गर्ग, जिजीविषा, संपा- संध्या कुमारी, जीवन संग्राम के योद्धा, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नयी दिल्ली, 2019 पृष्ठ-105

[37] डॉ.श्रीमती प्रेम सिंह, डॉ.रिम्पी खिल्लन, समकालीन कहानी और उपेक्षित समाज, नटराज प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2009, पृष्ठ-34

[38] पालो फ्रेरा, उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र, अनु-रमेश उपाध्याय, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन,1996 पृष्ठ-29

[39] डॉ.श्रीमती प्रेम सिंह, डॉ.रिम्पी खिल्लन, समकालीन कहानी और उपेक्षित समाज, नटराज प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2009, पृष्ठ-35

2. हिंदी कहानियों में एलजीबीटी समुदाय

2.1 भारतीय समाज और हिजड़ा समुदाय

2.2 हिजड़ा और किन्नर नाम का विवाद

2.3 हिजड़ों के प्रकार

2.4 प्राचीन भारतीय समाज और साहित्य में हिजड़ा

2.5 हिजड़ों से जुड़े मिथक

2.6 एलजीबीटी समुदाय और भारतीय कानून

2.7 भारतीय साहित्य और हिजड़ा जीवन

2.8 हिंदी कहानियों में हिजड़ा जीवन

2.9 हिन्दी कहानियों में समलैंगिकता

2.9.1 समलैंगिकता क्या है ?

2.9.2 समलैंगिकता और समाज

2.9.3 हिंदी कहानियों में स्त्री समलैंगिकता

2.9.4 हिंदी कहानियों में पुरुष समलैंगिकता

21वीं सदी अस्मिता विमर्श की सदी मानी जा सकती है। 20वीं सदी का अंतिम दशक और 21वीं सदी का प्रथम दो दशक साहित्य में अस्मिता विमर्श के केंद्र में रहा है। पिछली सदी के अंतिम दशक से ही समाज के उन समुदायों की आवाज मुखर रूप से सामने आने लगी थी, जो अब तक हाशिये पर रखी गयी थी। इन्हें साहित्य में समुचित भागीदारी नहीं मिली थी। दलित विमर्श और स्त्री विमर्श ने बहुत कम समय में समाज और साहित्य में अपनी जगह बना ली। आदिवासी विमर्श भी अपनी लड़ाई लड़ रहा है। इसके अलावा विकलांग विमर्श, वृद्ध विमर्श, पुरुष विमर्श, ओबीसी विमर्श, खेल विमर्श सहित बहुत सारे अस्मितावादी विमर्श हैं, जिनपर अभी चर्चा हो रही है। एलजीबीटी के मुद्दों को लेकर विदेशों में हलचल तो पिछली सदी में ही शुरू हो गयी थी, लेकिन भारत में अब जाकर इस पर बात शुरू हुई है। हिन्दी साहित्य में भी इससे संबंधित विचार और साहित्य को जगह मिलनी शुरू हो गयी है। इन सभी में 'तृतीय लिंगी विमर्श' की चर्चा भारतीय समाज और साहित्य में सबसे ज्यादा हो रही है।

2.1 समाज और हिजड़ा समुदाय

एलजीबीटी अंग्रेजी के अक्षर एल, जी, बी और टी से मिलकर बना है। जिसमें एल का मतलब होता है 'लेस्बियन'। यानि वे स्त्रियाँ जो पुरुष के बजाय किसी अन्य स्त्री से ही काम-सम्बन्ध बनाती हैं। जी का मतलब 'गे' यानि वे पुरुष जो सिर्फ पुरुष से ही सम्बन्ध बनाते हैं। बी का मतलब बाईसेक्सुअल यानि ऐसे 'गे' और 'लेस्बियन' जो अपने से विपरीत लिंग के साथ भी काम- सम्बन्ध बनाते हैं। हिंदी में इसके लिए समलैंगिक शब्द प्रयुक्त होता है। टी का मतलब ट्रांसजेंडर यानि हिजड़े। व्यवस्थित रूप से इस समुदाय को मिलाकर एलजीबीटी कहा गया है। किसी को भी समलैंगिक या उभयलैंगिक उसके यौन व्यवहार के आधार पर कहा जाता है, जबकि ट्रांसजेंडर समुदाय के लोग लिंग विकार की वजह से अलग लिंग के अंतर्गत रखे गए हैं। यह विकार जन्मजात होता है। शरीर विज्ञान के अनुसार महिला में केवल एक्स क्रोमोसोम होता है जबकि पुरुष में एक्स और वाय दोनों क्रोमोसोम होता है। महिलाओं की डिम्बी जब पुरुषों के एक्स क्रोमोसोम के संपर्क में आती है तो लड़की और अगर वाय के संपर्क में आता है तो लड़के का जन्म होता है। इसी क्रम में अगर डिम्ब दोनों क्रोमोसोम से बराबर मात्रा में मिलता है तो ट्रांसजेंडर के जन्म की सम्भावना बढ़ जाती है।

अमेरिका में इसके अधिकारों के लिए बहुत बड़ी क्रांति हुई। बड़ी संख्या में एलजीबीटी मारे गए। तब जाकर उनको कानूनी अधिकार मिला। भारत में भी इनके अधिकारों के लिए के लिए लड़ाई लड़ी जा रही है। हिजड़ों को तो भारत में भी कुछ अधिकार मिलने शुरू हो गए हैं। सरकारी दस्तावेजों में स्त्रीलिंग पुल्लिंग के अलावा 'थर्ड जेंडर' का भी विकल्प दिया जा रहा है। लेकिन एलजीबीटी समुदाय के अन्य घटकों को अभी लम्बी लड़ाई लड़नी है। 'नाज फाउन्डेशन' जैसे कई एनजीओ इसके लिए काम कर रहे हैं। हिंदी साहित्य में भी इनपर लगातार लेखन हो रहा है। हिन्दी साहित्य की अधिकतर विधाओं

में पिछले कुछ सालों से इस पर प्रचुर लेखन हो रहा है। लेकिन स्थिति जस की तस है। आज भी वह समाज में उपेक्षित ही हैं |

"वो
ताली बजाते हैं
और जिल्लत
कमाते हैं |"[1]

हिजड़ों को लेकर समाज में जो उपेक्षा का भाव है उसकी सबसे बड़ी वजह क्या है ? हिजड़े संतान उत्पन्न करने में सक्षम नहीं हैं | पैदा नहीं कर सकते इसलिए उपेक्षित हैं। फिर सवाल यह उठता है कि क्या बच्चे पैदा करना ही मनुष्य का अंतिम उद्देश्य है ? ट्रांसजेंडर तो इसके अलावा सब कुछ कर सकते हैं। ट्रांसजेंडर का प्रजनन अंग बाकी मनुष्यों की तरह विकसित नहीं होता ठीक उसी तरह जैसे किसी का हाथ कमजोर रह जाता है तो किसी का पैर या किसी के आँख की रोशनी नहीं होती तो किसी को बचपन से ही सुनाई नहीं देता। यह भी एक किस्म की विकलांगता ही तो है। वैसे विकलांगों की भी समाज में कोई बहुत बेहतर स्थिति नहीं है लेकिन तब भी उन्हें समाज के अंदर रहने का अधिकार तो है। सरकारी सुविधाएं तो हैं। ट्रांसजेंडर अपने आप में हमारे समाज के ऊपर एक गहरा सवाल है।

जिन लोगों को हिजड़ों के बारे में कम जानकारी है या जिसने समाज में प्रचलित मान्यताओं के जरिये ही अपने मन में हिजड़ों की छवि बनाई है, वह हिजड़ों को लेकर कौतूहल की दृष्टि रखता है। उस कौतूहल में से ही डर भी उपजता है। आखिर ऐसा क्या है कि उनको देखकर हम सामान्य अनुभव नहीं करते हैं। डर और रोमांच का वातावरण क्यों उत्पन्न होता है ? खासकर ट्रेन या सार्वजनिक जगहों पर हिजड़ों के आते ही एक भय का माहौल बन जाता है। वर्ष 2009 में बिहार क्रिकेट टीम चंडीगढ़ से राष्ट्रीय प्रतियोगिता में भाग लेकर लौट रही थी। मैं भी उस टीम का हिस्सा था। ट्रेन जब उत्तरप्रदेश के किसी स्टेशन पर रुकी तो कई हिजड़े ट्रेन में चढ़े। उन्होंने सबसे हाथ चमका-चमका कर पैसा माँगना शुरू कर दिया। हमारी टीम के एक लड़के ने पैसे देने से मना कर दिया। जिस हिजड़े को उसने मना किया उसने अपना लहंगा उठाया और उस लड़के को अपने लहंगे के अंदर खींच लिया। उस लड़के ने इस बात की कल्पना भी नहीं की थी। वह शर्म से पानी-पानी हो गया। आगे एक लड़के ने हिजड़े से चुहल की कोशिश की तो उसने उसका लिंग पकड़ लिया। इसके बाद पूरी बोगी में हड़कंप मच गया । सब लोगों ने बिना किसी प्रतिवाद के रुपये निकाल कर उनके सामने रख दिए।

आखिर कोई भी हिजड़ा ऐसा असभ्य व्यवहार क्यों करता है ? इसका जवाब मुझे ट्रेन में ही मिला। मैं दिल्ली से अपने घर सहरसा जा रहा था। गर्मी का मौसम था और उमस बहुत थी | इसलिए उससे बचने के लिए बोगी के गेट पर चला गया। वहाँ पहले से एक हिजड़ा मौजूद था। एक आदमी ने उससे एक सिक्के की मांग की और उसने दे दिया। मुझे जिज्ञासा हुई तो मैंने पूछा कि इससे क्या होता है ? उस आदमी ने जवाब दिया कि हिजड़े के पैसे देने से मनोकामना पूरी होती है। मुझे हिजड़े को लेकर

पहली बार हिचक कम हुई क्योंकि इससे पहले वाकई मुझे भी उनसे बहुत डर लगता था। मेरे पास डरने के पर्याप्त कारण थे फिर भी मैंने डरते हुए उनसे अपना अनुभव सुनाया। मैंने कहा कि मुझे आपलोगों से बहुत डर लगता है। उसने जो बात कही वो बात अब मुझे अच्छे से समझ आ रही है जब मैं इस पर शोध कर रहा हूँ। उन्होंने कहा कि अगर हम इस तरीके से बात नहीं करें और डरा कर न रखें तो कोई हमें भीख नहीं देगा और ऊपर से रोज कोई ना कोई हमें मुफ्त का माल समझ के छेड़ेगा। समाज हमारी इज्जत नहीं करता। या तो वो हमें अपने फायदे के लिए कुछ देता है या डर से। कई बार मौका मिलने पर इस डर का प्रतिशोध लेने से भी समाज नहीं चूकता है। 'हिंदुस्तान' दिल्ली संस्करण अखबार के 19 मई 2016 के एक खबर के अनुसार एक पुलिस अधिकारी ने थाने के बाहर विरोध प्रदर्शन कर रहे एक नग्न ट्रांसजेंडर का वीडियो बना लिया और उसे सोशल साइट पर वायरल कर दिया। ट्रांसजेंडर अपने साथ हुए छेड़खानी की शिकायत करने पहुँची थी। हालाँकि बाद में उस पुलिस अधिकारी को निलंबित कर दिया गया। यह उसी जमी हुई नफरत का नतीजा है जिससे स्त्रियाँ भी प्रताड़ित हैं। कुल मिलाकर समाज के लिए ट्रांसजेंडर या तो कौतुक का विषय है या नफरत का। नौकरी मिल जाने के प्रसंग पर मानोबी बंदोपाधाय्य अपनी आत्मकथा में लिखती हैं "पहले कुछ माह तो लोग कौतूहल के मारे, स्कूल के बाहर जमा हो जाते ताकि मुझे प्रवेश करते हुए देख सकें। उन्हें यह बात बड़ी मजेदार लगती थी कि जिस इंसान को वे हिजड़ा कहना पसंद करते थे, उसने एक नामी स्कूल में अध्यापक की नौकरी हथियाने में कामयाबी हासिल कर ली थी।"[2]

आम सोच है कि सारे हिजड़े वेश्यावृति में शामिल होते हैं। लेकिन ऐसा नहीं है। यह उनकी प्राथमिकता में नहीं है। शिक्षा का अभाव, रोजगार के सीमित अवसर, आर्थिक परेशानी और परिवार के भावनात्मक सहयोग की कमी उनको इस पेशे में उतरने के लिए मजबूर करती है। जब से ट्रांसजेंडर होना कमाई के एक बड़े कारोबार में बदल गया है तब से इस समुदाय में अवांछित तत्त्वों का भी प्रवेश भी हो गया है। कई जगह साधारण पुरुषों द्वारा भी ट्रांसजेंडर का वेश बना कर उगाही करने का चलन बढ़ गया है। ट्रांसजेंडर के अंदर भी ज्यादा कमाने, ज्यादा बड़े जगह पर कब्जा करने की प्रवृति देखी जाने लगी है। उनका माँगने का क्षेत्र बंटा होता है, इसलिए क्षेत्र को लेकर भी वर्चस्व की लड़ाई चलती रहती है। 13 जुलाई 2018 के हिंदुस्तान में एक खबर छपी थी। जिसके अनुसार ट्रांसजेंडरों के एक समूह ने अपने समूह को ताकतवर बनाने के लिए पुरुषों को फुसलाकर उसका लिंग काटना शुरू कर दिया। जिससे वे भी उसके समूह में एक ट्रांसजेंडर की तरह शामिल हो सकें।

ब्रिटेन आवासीय स्कूल एसोसिएशन ने 2016 में अपने शिक्षकों से अनुरोध किया कि ट्रांसजेंडर को 'ही' या 'शी' के बजाय 'जी' कहा जाय। इस प्रकार वे उन्हें उनके असली पहचान के साथ जीने में मदद कर रहे थे। यूरोप के देशों में 'जी' एक लिंग-निरपेक्ष शब्द है। विदेशों में ट्रांसजेंडर को हर तरीके से मदद दी जा रही है, लेकिन भारतीय समाज और सरकार की नीतियों में ट्रांसजेंडर को जगह नहीं मिली, जिससे उसे एक सम्मानित नागरिक होने का एहसास हो। इसलिए वे भी नाउम्मीद होकर सरकार और

व्यवस्था के प्रति उदासीन बने रहते हैं। 'कुकुज नैस्ट' कहानी में रेल के टिकट निरीक्षक द्वारा टिकट मांगे जाने पर एक हिजड़ा पात्र कहती है कि "सरकार हमें राशन कार्ड देती है क्या? पर हम अन्न तो खाते हैं ना! सरकार हमें पहचान पत्र देती है क्या? वोट देने देती है क्या ? पर हम इसी देश में रहते हैं न! सरकार पहले हमें दूसरों की तरह जाने-समझे तो हम भी दूसरों की तरह टिकेट लेंगे|"[3]

खेलों की दुनिया में भी ट्रांसजेंडर को लेकर भेदभाव है। खेल में खिलाड़ियों की दो कैटेगरी है महिला और पुरुष। इसके अलावा विकलांगों की भी अलग स्पर्धा होती है। लेकिन ट्रांसजेंडर के लिए ऐसी कोई अलग व्यवस्था नहीं है। नतीजा ट्रांसजेंडर अपनी शारीरिक क्षमता अनुसार पुरुष और महिला वर्ग में खेलते हैं। पकड़े जाने का डर बना रहता है। कई पकड़े भी जाते हैं। 2006 के दोहा एशियाई खेल में शांति सोंदुरराजन ने रजत पदक जीता। तमिलनाडु सरकार ने उसे पुलिस विभाग में सम्मानजनक पद दिया लेकिन वह इस डर से प्रशिक्षण के लिए नहीं गयी कि कहीं उसका राज खुल न जाए। हुआ भी यही बाद में राज खुला तो उसका पदक वापस ले लिया गया। मानसिक रूप से परेशान होकर उसने आत्महत्या करने की कोशिश भी की। इंदौर के एक भव्य टेनिस बॉल क्रिकेट प्रतियोगिता में भाग लेने ट्रांसजेंडर की टीम भी पहुँच गयी। ट्रांसजेंडर को न खिलाने का कोई नियम नहीं था इसलिए आयोजक फँस गए। उनका मजाक बनाया कि बल्ला भी पकड़ना आता है कि नहीं ? उन्होंने चुनौती स्वीकार कर ली। आयोजक की तरफ से गुड्डू शुक्ला ने बॉल फेंकी और ट्रांसजेंडर बल्लेबाज ने सधे अंदाज में उसे खेल दिया। इस तरह उनको प्रतियोगिता में प्रवेश मिला |

हिजड़ों की समस्या सिर्फ सामाजिक स्वीकार की आशा तक ही सीमित क्यों रहे ? सामाजिक स्वीकार मिल भी गया तो सम्मानजनक जिन्दगी जीने के लिए हिजड़ों के पास कौन सी योग्यता होगी ? इस बात को पंजाब विश्वविद्यालय के ट्रांसजेंडर छात्र धनंजय ने बहुत पहले समझ लिया। लेकिन एक समय विश्वविद्यालय में पढ़ने की चाहत उसके लिए गले की हड्डी बन गयी थी। सीनियरों ने उसके साथ गुदा मैथुन किया। प्रशासन ने झूठे मुकदमे में फँसा दिया। लेकिन उसने अपने कदम पीछे नहीं खींचे। उसका संघर्ष जारी रहा। आज उसके द्वारा उठायी गयी आवाज की बदौलत ट्रांसजेंडर की नयी पीढ़ी सम्मान के साथ पंजाब विश्वविद्यालय में पढ़ रही है। उनके लिए विश्वविद्यालय प्रशासन ने अलग से ट्रांसजेंडर टॉयलेट बनवाया है। धनंजय इस बदलाव के बाद भविष्य को लेकर बहुत आशावान हैं। "पहले लोग बात करने, मिलने में शर्म महसूस करते थे। कहीं से गुजरता तो लोग मेरे हाव-भाव देखकर हँसते, मज़ाक बनाते। लेकिन आज लोग हमें हमारी पहचान के साथ स्वीकार कर रहे हैं। शुरुआत में लोग एलजीबीटीक्यू पहचानों के बारे में नहीं जानते थे, विशेष रूप से ट्रान्सजेंडर के बारे में उनके दिमाग में बहुत सारी भ्रांतियाँ थी। वे सभी को 'गे' समझते थे। लोगों के बीच रहने से यह हुआ है कि आज इसी विश्वविद्यालय में 10 से भी ज्यादा शोध ट्रान्सजेंडर के ऊपर हो रहे हैं। वे संवेदनशील हुए हैं, उनकी सोच में बदलाव आया है। उन्हें पहली बार पता चल रहा है कि हमें किन समस्याओं से गुजरना पड़ता है। इन

बदलवों के बाद भी मुझे इस विश्वविद्यालय से बहुत सारी उम्मीदें हैं |"[4] आज उसके संघर्षों की बदौलत बहुत सारे ट्रांसजेंडर अलग-अलग विषय में नामांकन करवा रहे हैं |

समय के साथ व्यवस्था ट्रांसजेंडर को लेकर सरोकारी हुई है। वर्ष 2019 के लोकसभा चुनाव में निर्वाचन आयोग ने ट्रांसजेंडर मतदाताओं की भागीदारी बढ़ाने के लिए जागरूकता अभियान चलाया। हालाँकि पहले चरण में पूरे देश में पंजीकृत 7774 ट्रांसजेंडरों में सिर्फ 17 प्रतिशत ने ही वोट डाले, लेकिन बिहार में यह 70 प्रतिशत तक जा पहुँचा। हिंदुस्तान अखबार ने खास तौर से हर लोकसभा क्षेत्र में पंजीकृत स्त्री-पुरुष के अलावा ट्रांसजेंडर लोगों की संख्या भी प्रकाशित की। सरकारी कागजात में दो ही लिंग का विकल्प होता है। इसलिए कोई भी फॉर्म भरते समय हिजड़ों को बहुत सारी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। इसी वजह से वे बहुत सारी सरकारी सुविधा से वंचित रह जाते हैं। जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय और दिल्ली विश्वविद्यालय ने अपने फॉर्म में 2015 से आवेदन पत्र में ट्रांसजेन्डर के लिए भी अलग से श्रेणी (कैटेगरी) बनाई थी। बाद में जामिया ने अपने दूरस्थ शिक्षा केंद्र के पाठ्यक्रमों में ट्रांसजेंडरों को मुफ्त शिक्षा देने की पहल की। इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (इग्नू) ने भी सभी पाठ्यक्रमों में उनके लिए फीस की पूरी छूट दे दी।

2.2 हिजड़ा और किन्नर नाम का विवाद

आम भारतीय लोगों में ट्रांसजेंडर को हिजड़ा के नाम से जाना जाता है। यह एक अपमानजनक शब्द के रूप में रूढ़ हो गया है। लोग इसको गाली के रूप में प्रयोग करते हैं। इसलिए साहित्य में इसके बदले 'किन्नर' शब्द का प्रयोग होने लगा। लेकिन यह प्रयोग भी स्वीकार्य नहीं हुआ। पहाड़ी लेखक हरनोट ने इस प्रयोग पर आपत्ति जताई। जानकीपुल पर प्रकाशित अपनी कहानी 'किन्नर' के शुरुआत में लेखक एस.आर. हरनोट ने बौद्धिक तबके से यह आग्रह किया है कि हिजड़ों के लिए किन्नर शब्द का प्रयोग न करें। उन्होंने इसके पीछे पहाड़ी राज्य हिमाचल प्रदेश के किन्नौर इलाके की किन्नर जनजाति के पहचान के संकट का हवाला दिया है। हरनोट खुद हिमाचल के रहने वाले हैं। संविधान ने भी यहाँ के लोगों को किन्नर के रूप में मान्यता दी है। "आश्चर्य तो तब होता है जब हमारा वह वर्ग जिसे हमारा देश बुद्धिजीवी वर्ग कहता है जिसमें लेखक सबसे समझदार और सजग माना जाता है, वही किन्नर शब्द का प्रयोग हिजड़ा समुदाय के लिए करने लग जाए तो उसे क्या माना जाए.....अज्ञानता या बेवकूफी.....?...किन्नर को लेकर राहुल सांकृत्यायन की कई पुस्तकें हैं जिनमें 'किन्नर देश' प्रमुख है। उन्होंने विस्तार से इस शब्द की और जनजाति की व्याख्या की है! इसके बाद दर्जनों पुस्तकें और शोध ग्रन्थ किन्नर साहित्य, इतिहास और लोक गीतों के साथ किन्नर जनजाति पर उपलब्ध है.....इसलिए जो लोग किन्नर का अर्थ हिजड़ा करते हैं क्या फिर यह उपलब्ध साहित्य हिजड़ोंका साहित्य है...? क्या यह हमारे संविधान, विधान सभा, हिमाचल प्रदेश, किन्नौर जिला और वहाँ के निवासी किन्नरों का सीधा-सीधा अपमान नहीं है...! अगर हमारे साहित्यकार बंधु ही इस शब्द को गलत अर्थ में प्रयोग करने लग जाएंगे तो हमारी उम्मीद किससे होगी....?"[5] हरनोट की कहानी 'किन्नर' का नायक बेलीराम किन्नर भी पूरी कहानी में इसी बात के लिए

संघर्ष करता रहता है कि यह नाम उनकी पहचान है। उनसे यह पहचान न छिना जाए। किन्नर शब्द के प्रयोग की वजह से ही मधुर भंडारकर की फिल्म 'ट्रैफिक सिगनल' को हिमाचल में रिलीज नहीं होने दिया गया था। हिमाचल प्रदेश विधान सभा ने भी इस प्रयोग पर कड़ा नोटिस लिया था और निंदा प्रस्ताव पास किया था। लोकसभा में भी इस मुद्दे को उठाया गया था। लोकसभा ने सभी संस्थानों को पत्र लिख कर इस शब्द को गलत अर्थ में प्रयोग न करने का निवेदन किया है। इसलिए इस शोध प्रबंध में में 'किन्नर जनजाति' की भावनाओं का ख्याल रखते हुए किन्नर शब्द का प्रयोग नहीं किया है। वैसे इसके लिए समाज में हिजड़ा शब्द भी सम्मानजनक नहीं हैं लेकिन किसी और विकल्प के अभाव में इस शोध प्रबंध में इसके लिए हिजड़ा के साथ-साथ ट्रांसजेंडर का प्रयोग किया गया है।

2.3 हिजड़ों के प्रकार

हिजड़ा मूलतः उर्दू भाषा का शब्द है। उर्दू में इसे 'ख्वाज़ासरा' भी कहा जाता है। हिजड़ा में हिजर शब्द अरबी भाषा से लिया गया है। हिजर का अर्थ होता है वह जो समुदाय से बाहर का हो अर्थात जिसने समुदाय छोड़ दिया हो। स्त्री-पुरुष के पारम्परिक समाज से अलग रहने वाला। हिजड़ों को अलग-अलग प्रदेशों और भाषाओं में भिन्न-भिन्न नाम से जाना जाता है। हिंदी और बंगाली में 'हिजड़ा', कन्नड़ में 'माद्दा', उर्दू में 'खोजवां/हिजड़', पंजाब (पाकिस्तान) में 'खुसरा', तेलगु में 'माडा','कोज्जा', नपुंसकुडु' गुजराती में 'पवैया', तमिल में 'नंगाई', अरुवन्नी', 'शिरूरनान गाई', 'अली', 'अरावनी' नाम से जाना जाता है। ये नाम कहने-सुनने में चाहे जैसे भी हो लेकिन समाज में इसका प्रयोग सदैव एक गाली की तरह होता है। हिंदी में हिजड़ा नपुंसक के अर्थ में प्रयोग होता है जिसमें एक घृणा का भाव छिपा होता है|

मूलतः हिजड़े वे होते हैं जिनका जननांग प्राकृतिक रूप से अविकसित होता है। लेकिन इसके अलावा भी हिजड़ों की कई श्रेणियाँ हैं। इनको छह भाग में बाँट सकते हैं। बुचरा, नीलिमा, मनसा, हंसा, छिबरा और अबुआ। सिर्फ बुचरा इनमें जन्मजात हिजड़ा होता है बाकि सब परिस्थितियों की वजह से इसमें शामिल होते हैं। नीलिमा प्राकृतिक रूप से हिजड़े नहीं होते, लेकिन किसी कारण से वे इसमें शामिल हो जाते हैं। मनसा ऐसे हिजड़े होते हैं जिनका तन तो पुरुष का होता है, लेकिन वे एक स्त्री की तरह महसूस करते हैं। कुछ लोग यौन रोगों या नपुंसकता की वजह से भी इसमें शामिल हो जाते हैं। इन्हें हंसा कहा जाता है। कुछ पुरुषों का लिंग रंजिश या अन्य किसी दुश्मनी की वजह से जबरदस्ती काट दिया जाता है। ऐसे लोगों को छिबरा कहा जाता है। हिजड़ों का मुख्य पेशा भीख माँगना है। इसमें ठीक-ठाक कमाई हो जाती है। इसी लोभ में कुछ बेरोजगार भी हिजड़े का रूप बना कर कमाई करते हैं। आये दिन हिजड़ों द्वारा उनकी पिटाई होती रहती है। इस रूपधारी हिजड़े को अबुआ कहते हैं।

अकादमिक और प्रशासनिक भाषा में इस समुदाय के लिए ट्रांसजेंडर शब्द प्रयोग हो रहा है। लेकिन समाज हिजड़ा और छक्का कह कर उसका मजाक उड़ाता है। इस विषय पर अध्ययन के बाद हमारी सोचने समझने की क्षमता विकसित हुई है, तब जाकर हम यह समझ पायें हैं कि दरअसल परिवार

और समाज ने हमें जो सिखाया उसमें विकृतियाँ थीं। हिजड़ा भी हमारी तरह एक मनुष्य है। उनसे दूर भागने की जरुरत नहीं है। उनसे डरने की जरुरत नहीं है। उनसे भी बात की जा सकती है। उनको भी छुआ जा सकता है। उनके साथ भी बैठ कर खाना खाया जा सकता है। उनके साथ गले लगा जा सकता है। सिर्फ बच्चे पैदा ना कर पाने की अक्षमता उनसे मनुष्य बने रहने का अधिकार नहीं छीन सकती। समाज आज भी ट्रांसजेंडर को लेकर उपेक्षित भाव रखता है। उससे दूरी बनाता चलता है। तथाकथित सभ्य समाज तो उसके साथ चार कदम पैदल चलने में भी डरता है।

असली हिजड़ों की जगह बड़ी मात्रा में रूपधारी हिजड़े सक्रिय हैं। उनका एकमात्र उद्देश्य लोगों से पैसा वसूलना है। इसमें कई लोग तो शादीशुदा और बाल- बच्चेदार भी हैं। "असली किन्नर मन व आत्मा से स्त्री होता है। उनका शरीर पुरुष की तरह हो सकता है, पर मन से वे पुरुष की चाहत रखते हैं। स्त्री की तरह उनकी चाहत पुरुष से संसर्ग की होती है, जबकि नकली किन्नर पुरुष होते हैं और सेक्स के लिए स्त्री की चाहत रखते हैं।"[6] दिल्ली में डॉक्टरों ने दो हजार ट्रांसजेंडरों का चिकित्सकीय परीक्षण किया तो उसमें से 1997 ट्रांसजेंडर नकली निकले। सिर्फ 3 हिजड़े प्राकृतिक तौर पर हिजड़े थे। कई गिरोह बहुरुपया ट्रांसजेंडर बनाने का भी धंधा चलाते हैं, क्योंकि यह अब फायदे का सौदा है। निर्मला भुराड़िया ने अपने लेख में लिखा है कि "अखबार में छपने आई एक खबर पर नजर पड़ी। पैसे के लेन-देन में किसी का एक युवक से झगड़ा हुआ तो उस गुंडे ने युवक को जबर्दस्ती नशा कराया और उसका लिंग काटने के पश्चात उसे चमेली नामक एक किन्नर को बेच दिया।"[7]

2.4 प्राचीन भारतीय समाज और साहित्य में हिजड़े

प्राचीन भारतीय ग्रंथों में भी ट्रांसजेंडर का जिक्र है। वैदिक ग्रंथों में स्त्रीलिंग और पुल्लिंग के अलावा नपुंसक लिंग का भी उल्लेख किया गया है। लिंग को वहाँ प्रकृति नाम दिया गया है। कामसूत्रकार महर्षि वात्स्यायन ने भी अपने ग्रन्थ 'कामसूत्र' में स्त्री और पुरुष प्रकृति के अलावा तृतीय प्रकृति की चर्चा की है। हालाँकि मनुस्मृति में मनु ने अपने तरह की अनोखी व्याख्या दी है। जाहिर है आज का विज्ञान उसे सही नहीं मानता। मनु ने कहा है कि "उच्चकोटि के पुरुष से लड़के का जन्म होता है स्त्री के प्रभावी होने पर बच्ची का जन्म होता है और यदि दोनों समान है तो तीसरे प्रकार के बच्चे का जन्म होता अथवा बेटा-बेटी जुड़वा होते हैं यदि दोनों कमजोर होते हैं तो वे कमजोर अथवा परिणाम में विफल होते हैं तो तृतीय प्रकृति के मनुष्यों की उत्पत्ति होती है।"[8]

पंद्रहवीं शताब्दी में सिकंदर लोदी ने हिजड़ों का खानकाह बनाया था। पौराणिक काल से लेकर मुग़ल काल तक हिजड़े भारतीय समाज के मुख्यधारा का हिस्सा थे। मुग़ल काल में हिजड़ों को हरम की जिम्मेदारी दी जाती थी। रानियों की संख्या अधिक होती थी और कई बार युद्ध या अन्य कामों की वजह से राजा राज्य से बाहर होते थे तो इस दौरान सुरक्षकर्मियों से रानियों के सम्बन्ध बन जाने का खतरा होता था। इस लिहाज से हिजड़ों से कोई खतरा नहीं होता था, इसलिए मुग़ल दरबार में हिजड़ों को सम्मान प्राप्त

था। वे समाज के लिए वे उपयोगी माने जाते थे। उनके प्रति नफरत और अलगाव का भाव नहीं था। अंग्रेजों के आने के बाद विक्टोरियाई नैतिकता के प्रभाव में उन्हें कानून बना कर अपराधी घोषित कर दिया गया। इसी वजह से वे समाज से दूर कर दिए गए|

रामायण में भी इनका उल्लेख है। जब राम अपने पिता की आज्ञा का पालन करते हुए 14 वर्ष के लिए जंगल की ओर रवाना हुए तो उनके साथ नगर के अधिकतर लोग भी चल पड़े। नगर से बहुत दूर जाकर राम ने सभी नर-नारी को वापस अयोध्या लौट जाने को कहा। साथ ही उन्हें अपने राज्य के प्रति कर्तव्यों का पालन करने को कहा। उस समूह में कुछ हिजड़े भी थे। उन्हें विशेष रूप से राम ने कुछ नहीं कहा। वे 14 साल वहीं बैठ कर राम की प्रतीक्षा करते रहे। जब राम 14 वर्ष बाद वापस लौटे तो उन्हें अपनी प्रतीक्षा में पाया। राम को अपनी भूल का अहसास हुआ। उन्होंने प्रसन्न होकर उन सबको आशीर्वाद दिया कि मंगल उत्सव पर तुम लोग आशीर्वाद दे पाओगे|

महाभारत में कई जगह हिजड़ों का प्रसंग है। इसमें शिखंडी का जिक्र आता है जो बाद में भीष्म की मृत्यु का कारण बनती है। शिखंडी पूर्व जन्म में अम्बा नाम की एक राजकुमारी थी। अपने भाई विचित्रवीर्य के लिए भीष्म ने उसका अपहरण कर लिया। अम्बा किसी और पुरुष को चाहती थी। इसलिए विचित्रवीर्य से उसकी शादी नहीं हो सकी। चूँकि उसका अपहरण हो चुका था इसलिए उस पुरुष ने भी उसे अपनाने से इनकार कर दिया। अम्बा कहीं की नहीं रही। उसने विवश होकर भीष्म से प्रणय निवेदन किया। भीष्म आजीवन अविवाहित रहने का निश्चय कर चुके थे इसलिए उन्होंने इनकार कर दिया। अम्बा ने अपनी बर्बादी का कारण भीष्म को माना और उसे शाप दिया कि अगले जन्म में वह उसकी मृत्यु का कारण बनेगी। अर्जुन ने एक बार उर्वशी नाम की अप्सरा का प्रेम प्रस्ताव ठुकरा दिया। उर्वशी ने क्रोधवश उन्हें कुछ समय के लिए हिजड़ा बन जाने का शाप दिया। इसलिए कहा जाता है कि अज्ञातवास के समय राजा विराट के यहाँ अर्जुन को वृहन्नला के रूप में कुछ दिन गुजारना पड़ा। जो स्त्रैण पुरुष था और राजकुमारी उत्तरा को नृत्य सिखाता था। जब राजा विराट की सेना और दुर्योधन की सेना में युद्ध हुआ तो विराट की सेना का नेतृत्व कर रहा राजकुमार उत्तर कुमार सामने विशाल सेना देख डर गया फिर वृहन्नला बने अर्जुन ने मोर्चा संभाला और जीत हासिल की। युद्ध में हार की आशंका से ग्रस्त महल में प्रतीक्षारत राजा विराट को जब कंक बने युधिष्ठिर ने भरोसा दिलाया कि वृहन्नला साथ है कुछ नहीं होगा राजकुमार को, तो राजा विराट ने उनका अपमान किया। वे वृहन्नला हिजड़े की एक वीर योद्धा के रूप में कल्पना तक नहीं कर पाए। कंक भरोसा दिलाता रहा और वे क्रोधित होते थे और गुस्से में आकर चौसर की गोटी कंक के आँख में मार दी। आज भी यह प्रवृति लोगों में देखी जा सकती है। हमने सदैव हिजड़ों की क्षमता पर शक किया और उसे स्त्रैण समझकर कमजोर समझा।

महाभारत में जब कौरवों और पांडवों के बीच युद्ध की घोषणा हो गयी तो पांडवों ने जीत के लिए नरबली देने का निश्चय किया। लेकिन इसके लिए आवश्यक था कि कोई राजकुमार स्वेच्छा से अपनी बलि दे। इसके लिए अरावन तैयार हो गया। अरावन नाग कन्या उलूपी और अर्जुन का पुत्र था।

जब अर्जुन उत्तर-पूर्व की यात्रा पर थे तो उनका नाग कन्या उलूपी से संपर्क हुआ था। इसी दौरान अरावन का जन्म हुआ। बाद में अर्जुन हस्तिनापुर लौट आए। जब महाभारत का युद्ध शुरू हुआ तब अरावन भी उसमें भाग लेने आया। उसने अपने पिता और परिवार के लिए अपने को काली के सम्मुख अर्पित करने का निश्चय किया। लेकिन उसने एक शर्त रखी कि बलि की पूर्वसंध्या पर वह एक विवाहित का जीवन जीना चाहता है। एक दिन की आयु वाले वर के साथ कौन विवाह करे ? घोर संकट छा गया। हर बार की तरह कृष्ण ने इसका समाधान किया। उन्होंने मोहिनी स्त्री का वेश बना कर अरावन के साथ रात गुजारी और उसकी बलि के बाद नवविवाहिता की तरह विलाप भी किया। कृष्ण के इसी मोहिनी रूप से हिजड़े खुद को जोड़ कर देखते हैं। इसी की याद में तमिलनाडु विल्लुपुरम जिले के कुरांग गाँव के कूथान्डावार मंदिर परिसर में हर साल अप्रैल-मई महीने में 18 दिन तक कूथान्डावार महोत्सव मनाया जाता है। यह हिजड़ों का सबसे बड़ा पर्व है। इसमें देश-विदेश के हजारों हिजड़े शामिल होते हैं। सबकी शादी अरावन से होती है। इस खुशी में सब लोग रात भर जश्न मानते हैं। अगले दिन सुबह में अरावन की बलि होती है फिर सब शोक मनाते हैं। सब लोग विधवा की तरह विलाप करते हुए अपनी चूड़ियाँ तोड़ देते हैं |

2.5 हिजड़ों से जुड़े मिथक

ट्रांसजेंडर को लेकर समाज में बहुत सारे पूर्वाग्रह हैं जिसका प्रभाव साहित्य और समाज पर भी पड़ा है। समाज में प्रचलित किवदंतियों ने उनके प्रति समाज में नफरत और दूरी पैदा की। इन किंवदंतियों के आधार पर ही हमने उनके प्रति एक अलग धारणा निर्मित कर ली। जैसे एक किंवदंती प्रचलित है कि किन्नरों का अंतिम संस्कार रात को होता है। इसका जवाब एक साक्षात्कार में ट्रांसजेंडर मनीषा महंत ने दिया। "नहीं-नहीं हम कोई क्रिमिनल या चोर डाकू थोड़े ही हैं, हमें भला किसका डर! हम क्यों रात के अँधेरे में किसी का संस्कार करेंगे। किसी भी किन्नर का संस्कार दिन के उजाले में और उसके परिवारजनों और शुभचिंतकों की मौजूदगी में होता है |"[9] साथ ही यह भी प्रचलित है कि उनकी लाश को जूतों-चप्पलों से पीटते हुए अंतिम संस्कार के लिए ले जाया जाता है। उसका भी खंडन मनीषा महंत ने किया "...ये सिर्फ एक अफवाह मात्र है, किसी किन्नर की मृत्यु या इंतकाल होने पर उसको उसके परिवार और रिश्तेदारों की मौजूदगी में दफनाया जाता है या अंतिम संस्कार किया जाता है |... जो किन्नरों के डेरों से दूर रहते हैं ये सिर्फ उनकी सोच और सुनी-सुनाई बात है, बाकि जो किन्नरों के डेरों के आस-पास रहते हैं वो तो कई बार किन्नरों की अंतिम विदाई में शामिल हो चुके होते हैं तो उनके मन में ऐसी कोई धारणा नहीं होती है, क्योंकि वो सबकुछ अपनी आँखों से देख चुके होते हैं |"[10] हाँ ये बात सच है कि उनके जाने से समाज पर कोई फर्क नहीं पड़ता। समाज के लिए कोई ट्रांसजेंडर उपयोगी नहीं है। समाज उसकी परवाह नहीं करता। हरीशचन्द्र पांडे की कविता 'हिजड़े' उनकी भावनाओं को शब्द देती है।

"नहीं सुनने में आ रही आत्महत्याएँ हिजड़ों की
दंगों में शामिल होने के समाचार नहीं आ रहे
मर्द और औरतों से अटी पड़ी इस दुनिया में

इनका पखेरूओं की तरह चुपचाप विदा हो जाना
कोई नहीं जानता !"[11]

2.6 एलजीबीटी समुदाय और भारतीय कानून

सन 1871 ईस्वी से पहले तक हिजड़े समाज में उपेक्षित नहीं थे। उनको सम्मान प्राप्त था। 1871 में विक्टोरियाई नैतिकता के प्रभाव में अंग्रेजों ने जरायमपेशा अपराध अधिनियम (क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट) बनाकर इनको अपराधी घोषित कर दिया। धारा 377 के तहत इनपर नजर रखी जाने लगी और इसे गैर जमानती अपराध की श्रेणी में रखा गया। हालाँकि आजाद भारत में सख्ती थोड़ी कम हुई और इनको जरायमपेशा जाति की सूची से बाहर कर दिया गया, लेकिन समलैंगिकता को लेकर धारा 377 पूर्ववत बना रहा। सुप्रीम कोर्ट ने भी 22 अक्टूबर 2013 को कहा कि ट्रांसजेंडर समाज में अछूत बने हुए हैं। आमतौर पर उन्हें स्कूलों और शिक्षण संस्थानों में दाखिला नहीं मिलता। उनके लिए बहुत कुछ किया जाना बाकी है। 15 अप्रैल 2014 को सर्वोच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति के एस राधाकृष्णन और न्यायमूर्ति ए.के. सीकरी ने हिजड़ों को तीसरे लिंग के रूप में कानूनी मान्यता दे दी। इनको बच्चा गोद लेने, लिंग परिवर्तन का भी अधिकार दिया।

गौरतलब है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 377 के तहत समलैंगिकता को अपराध माना गया था। धारा 377 'अप्राकृतिक यौन सम्बन्धों' को अपराध मानती थी और इसके लिए आजीवन कारावास का प्रावधान था। सबसे पहले दिल्ली की एक संस्था 'नाज़ फाउंडेशन' ने 2001 में दिल्ली उच्च न्यायालय से धारा 377 को चुनौती दी। 'नाज़ फाउंडेशन' ने अपनी याचिका में यह तर्क रखा कि विधि आयोग भी अपनी 172वीं रिपोर्ट में धारा 377 को हटाने का आग्रह कर कर चुकी है। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि यह धारा संविधान के अनुच्छेद 15 का उल्लंघन करती है। अनुच्छेद 15 के अनुसार किसी भी व्यक्ति से 'सेक्स' के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता। यौन अभिरुचि की स्वतंत्रता को लेकर उन्होंने कई मनोवैज्ञानिकों, मनोचिकित्सकों और यौन-विज्ञानियों की रिपोर्टें प्रस्तुत की। याचिकाकर्ताओं ने संविधान के अनुच्छेद 21 का भी जिक्र किया। अनुच्छेद 21 के अनुसार हर व्यक्ति को सम्मान से जीवन जीने और गोपनीयता का अधिकार है। इसलिए उन्होंने माँग की कि दो वयस्क व्यक्ति को एकांत में अपनी इच्छा से जीने का हक दिया जाय। 1860 में अंग्रेजों द्वारा भारतीय दंड संहिता में इसे शामिल किया गया था। उस वक्त इसे ईसाई धर्म में भी अनैतिक माना जाता था। लेकिन 1967 में ब्रिटेन ने भी समलैंगिक संबंधों को कानूनी मान्यता दे दी है|

2 जुलाई 2009 को दिल्ली उच्च न्यायालय ने भी इस कानून को बदल दिया, लेकिन इस फैसले के सात दिन बाद यानि 9 जुलाई को ही दिल्ली के एक ज्योतिषाचार्य सुरेश कौशल ने इस फैसले को चुनौती दे दी। उनके अनुसार 'नाज़ फाउंडेशन' को विदेशों से पैसा मिलता है और उसके इशारे पर ही ये सब हो रहा है। उनका तर्क था कि 'समलैंगिकता धर्मविरुद्ध' है। सुरेश कौशल के साथ बाबा रामदेव के

प्रवक्ता एस.के. तिजारावाला, आल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड, अपोस्टोलिक चर्चेज अलायंस, सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा, तमिलनाडु मुस्लिम मुनेत्र कषगम और क्रांतिकारी मनुवादी मोर्चा पार्टी भी उनके समर्थन में आ गयी। चार साल बाद 11 दिसंबर 2013 में सर्वोच्च न्यायालय ने दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले को पलटते हुए पूर्ववर्ती कानून को ही जायज ठहराया | नया कानून सिर्फ लगभग साढ़े चार साल तक वैध रह सका। इस फैसले में सर्वोच्च न्यायालय ने देश-विदेश के मनोचिकित्सकों के तर्कों और शोध, एड्स पर कार्य करने वाली संस्थाओं और स्वास्थ्य मंत्रालय की रिपोर्ट सबको नकार दिया। उन्होंने राम जेठमलानी और फली. एस. नरीमन जैसे वकीलों के तर्कों से भी सहमति नहीं जताई। 6 सितम्बर 2018 को उच्चतम न्यायालय ने फिर से धारा 377 को असंवैधानिक घोषित करते हुए समलैंगिकता को कानूनी जामा पहना दिया। 5 साल लंबी अदालती लड़ाई के बाद उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्रा की अध्यक्षता में पांच जजों की संवैधानिक पीठ ने इसे अतार्किक और मनमानापन मानते हुए समलैंगिकता को अपराध के दायरे से बाहर कर दिया। अदालत ने यौन झुकाव को प्राकृतिक माना। "अंतरंगता और निजता किसी की भी व्यक्तिगत पसंद होती है। दो वयस्कों के बीच आपसी सहमति से बने यौन संबंध पर आईपीसी की धारा 377 संविधान के समानता के अधिकार, यानी अनुच्छेद 14 का हनन करती है |"[12] हालाँकि कोर्ट ने धारा 377 के अंतर्गत बच्चों और पशुओं से संबन्धित अप्राकृतिक यौन संबंध स्थापित करने को यथावत अपराध की श्रेणी में रखा है।

समलैंगिकों के साथ ट्रांसजेंडर भी धारा 377 के विरोध में थे। सुरेश कौशल का मानना था "किन्नरों को समलैंगिक लोग अपनी ढाल की तरह इस्तेमाल कर रहे हैं। उन्हें लगा होगा कि समलैंगिकों के बहाने उन्हें भी पहचान मिल जाएगी, इसलिए वो भी इनके साथ शामिल हो गए। उनमें तो पता नहीं यौन संबंध बनाने की इच्छा होती भी है या नहीं |"[13] जबकि मनोवैज्ञानिक पुलकित शर्मा का मानना है "यौन इच्छा हर व्यक्ति में होती है। वह उतनी ही किन्नरों में भी होती है जितनी किसी स्त्री या पुरुष में। लोग उन्हें जानते-समझते नहीं तो यह मान लेते हैं कि उनमें शायद यौन इच्छा ही नहीं होती होगी। कई लोगों में यह भ्रम होता है कि ट्रांसजेंडर अन्य लोगों की तरह यौन संबंध नहीं बना सकते तो शायद उन्हें इसकी जरूरत भी महसूस नहीं होती होगी |"[14] समलैंगिकता से जुड़ा सबसे बड़ा विवाद इसके प्राकृतिक या अप्राकृतिक होने को लेकर है। 1992 में विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) ने भी समलैंगिकता को मानसिक बीमारी की सूची से हटा दिया था। दिल्ली उच्च न्यायालय ने सबसे पहले इससे सहमति जताते हुए माना था कि समलैंगिकता कोई बीमारी नहीं है। यह प्राकृतिक है इसे बदला नहीं जा सकता |

2.7 भारतीय साहित्य और हिजड़ा जीवन

भारत की अलग-अलग भाषाओं में ट्रांसजेंडर समुदाय पर लेखन होता रहा है। भारत की पहली ट्रांसजेंडर पत्रिका 'अबोमानोब' मानोबी बंदोपाध्याय के सम्पादन में बंगाल से निकली। ट्रांसजेंडर मानोबी बंदोपाध्याय ने बंगला में आत्मकथा भी लिखी। जिसका हिन्दी में 'पुरुष तन में छुपा मेरा नारी मन' नाम से अनुवाद भी हुआ। मानोबी भारत की पहली ट्रांसजेंडर कॉलेज प्रिंसिपल भी बनीं। उन्होंने अपनी

आत्मकथा में विस्तार से एक ट्रांसजेंडर के जीवन संघर्ष को चित्रित किया है। कानून से लेकर समाज कदम-कदम पर उसके खिलाफ खड़ा होता है। खास कर एक ट्रांसजेंडर व्यक्ति कैसे भावनात्मक रूप से एक साथी के लिए संघर्ष करता है, इसे आत्मकथा में बहुत विस्तार से देखा जा सकता है। "वे मुझे एकांत में देखते ही घेर लेते, मेरे बाल और कपड़े नोचते और कहते कि वे देखना चाहते हैं कि मेरे बाल असली हैं या मैंने नकली बालों की विग लगा रखी है ? एक बार, उनमें से दो लोगों ने मुझे दीवार से सटा कर खड़ा कर दिया। वे मुझे देख कर फुफकारे और इस दौरान मुझे अपना मुँह बंद रखने की चेतावनी दी। उन्होंने मेरी छातियों के निप्पल इतनी ज़ोर से दबाए कि मेरी कराह निकल गयी |"[15] लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी की आत्मकथा का हिन्दी अनुवाद 'मैं हिजड़ा... मैं लक्ष्मी' नाम से प्रकाशित हुआ। यह मराठी, गुजराती और अँग्रेजी में भी उपलब्ध है। लक्ष्मीनारायण हिजड़ों की आवाज को वैश्विक पटल पर ले जाती है। उनका जीवन संघर्ष भी आम हिजड़ों की तरह संघर्षमय रहा है। हालाँकि पारिवारिक सहयोग उन्हें अन्य ट्रांसजेंडर से ज्यादा मिला। उन्होंने हिजड़ों को समाज की मुख्यधारा में लाने के लिए अपना जीवन समर्पित किया हुआ है।

हिन्दी कथा साहित्य या हिन्दी साहित्य में नीरजा माधव के उपन्यास 'यमदीप' से 'तृतीय लिंगी विमर्श' की शुरूआत मानी जा सकती है। 2002 में 'सामयिक प्रकाशन' से प्रकाशित यह हिन्दी का पहला उपन्यास है, जो पूरी तरह से हिजड़ा जीवन पर आधारित है। यहाँ से इस विमर्श का प्रस्थान बिन्दु माना जा सकता है। प्रदीप सौरभ का 'तीसरी ताली', महेंद्र भीष्म का 'किन्नर कथा', निर्मला भुराड़िया का 'गुलाम मंडी', चित्रा मुद्गल का 'पोस्ट बॉक्स नं० 203 नाला सोपारा' , भगवत अनमोल का 'जिंदगी 50-50', सुभाष अखिल का 'दरमियाना' जैसे उपन्यास हिन्दी में ट्रांसजेंडर को लेकर लिखे गए हैं। उर्दू, बांग्ला और पंजाबी में भी ट्रांसजेंडर को लेकर बहुत साहित्य लिखा गया है। उर्दू कहानी 'मृत्यु के बाद किन्नर का अपनी माँ को ख़त' भावुक करने वाली रचना है। इसमें पुत्र को पिता घर से निकाल देता है, क्योंकि बात फ़ैल गयी थी और बदनामी होने लगी थी। लेकिन पुत्र छिप-छिप कर अपने घर आता है और दूर से अपनी अम्मा की गतिविधि देखता है। उसने पत्र में लिखा | "दरवाजे की ओट से जब तुम्हें गर्मा-गर्म रोटी बनाते देखता तो मेरी भूख भी बढ़ जाती और तुम अपने हाथों से निवाले बना-बना कर मेरे भाई-बहनों के मुँह में डालती तो हर निवाले पर मेरा भी मुँह खुलता मगर वह निवाले की हसरत में खुला ही रह जाता। इस हसरत को पूरा करने के लिए मैं अक्सर घर के बाहर रखी हुई सूखी रोटी को अपने आंसूओं में भिगो-भिगो कर खाता |"[16] पिता द्वारा घर से निकाल दिए जाने के बाद भी उसका माँ से लगाव बना रहता है। शारीरिक सम्बन्ध से इनकार करने पर उसे कुछ लोग गोली मार देते हैं, लेकिन वह मरते वक्त भी माँ को याद करता रहता है। पूरी चिट्ठी में माँ के प्रति प्यार उमड़ता रहता है। वह पिता द्वारा परिवार से अलग कर दिया गया था, लेकिन वह माँ से सदैव जुड़ा रहा। जबर्दस्ती एक ट्रांसजेंडर बच्चे को परिवार से दूर कर देने वाला समाज कतई नहीं समझता है कि हिजड़ों के अंदर भी परिवार का मोह समान ही होता है। इसके अतिरिक्त बांग्ला में तपन बंदोपाध्याय की 'बृहनल्ला', पंजाबी में परमजीत धींगरा की

कहानी 'ख़मोश महाभारत', चन्दन नेगी की 'खौदा चाचा', तौकीर चुगताई की 'किन्नर', जैसी कहानियाँ भी ट्रांसजेंडर समुदाय के उपेक्षित जीवन का जीता जागता इतिहास है।

2.8 हिजड़ा जीवन और हिंदी कहानियाँ

हिन्दी कहानी के विविधतापूर्ण परिवेश में भी हिजड़ा (ट्रांसजेंडर) समुदाय पर केन्द्रित कहानियाँ आरंभिक दौर में न के बराबर लिखे गए। बहुत बाद में नयी कहानी के समय में शिवप्रसाद सिंह की कहानी 'बिंदा महाराज' चर्चित रहीं । इधर इक्कीसवीं सदी में विविध विमर्शों में 'तृतीय लिंगी विमर्श' को भी जगह मिली और इस पर केन्द्रित साहित्य सृजन अलग से चर्चा का विषय बने हैं। अब हिन्दी कहानियों में ट्रांसजेंडरों का जीवन के विभिन्न पक्ष सामने आने लगे हैं। कहानियों के माध्यम से उनके जीवन के उन पक्षों पर भी नजर गयी है जिस पर आमतौर पर कम चर्चा होती है। उनके जन्म लेते ही उदासी छा जाती है और लोग उसे स्वीकार नहीं कर पाते हैं। हालाँकि कई बार माता-पिता का अपने ट्रांसजेंडर बच्चे के प्रति मोह उसकी ज़िंदगी में बड़ा बदलाव ला देता है। कुछ माँ-बाप समाज के डर से अपने बच्चों का त्याग कर देते हैं, क्योंकि वह समाज के ताने के बीच अपने बच्चे को पालने में असमर्थ महसूस करते हैं।

किसी भी ट्रांसजेंडर के लिए सबसे महत्वपूर्ण होता है परिवार का सहयोग | सामाजिक ताने-बाने के प्रभाव से सबसे पहले परिवार ही उनसे पीछा छुड़ाने की कोशिश करता है, लेकिन कई बार परिवार उनके साथ मजबूती से भी खड़ा होता है | कमल कुमार की कहानी 'कुकुज नैस्ट' में भी ट्रांसजेंडर बच्ची के माता-पिता नहीं चाहते हैं कि उनकी बच्ची बाकी ट्रांसजेंडर जैसी ज़िंदगी जियें । इसलिए उसे पारम्परिक रूप से नाचने गाने वाले समूह में शामिल नहीं होने देते हैं। उसे सामान्य जिन्दगी जीने का अवसर मिलता है। हालाँकि इसमें उसके माता-पिता का जिद और परिस्थितिगत पैदा हुई जागरूकता का भी हाथ है। कहानी के केंद्र में जो नायिका है उसका कोई नाम लेखक ने नहीं दिया है। नाम के बदले 'वह' के सहारे कहानी कही गयी है। वह सामान्य जिन्दगी जी तो रही है लेकिन उसके अन्दर अब भी एक डर है। खासकर तब तो वह और भी सहम जाती है जब किसी ट्रांसजेंडर को भीख मांगते या बच्चे के जन्म पर नाचते-गाते देखती है। उसके डर में सहयात्री उसके माँ-बाप भी हैं। वह नौकरी करती है और उसको ऑफिस की तरफ से एक साल के असाइनमेंट पर अमेरिका भी भेजी जाती है। डर के बावजूद वह सामान्य जिन्दगी जीती है। जीवन के उत्तरार्द्ध की कहानी इसमें नहीं है। कहानी से पता चलता है कि एक ट्रांसजेंडर की तमाम योग्यता पीछे रह जाती है और उसका लिंग ही उसकी पहचान रह जाती है | इसी तरह डॉ. संगीता गाँधी की कहानी 'मैंने दुनिया जीत ली' में माँ की जिद की वजह से ही ट्रांसजेंडर स्नेहा एक सामान्य ज़िंदगी जी पाती है। इसके परिणामस्वरूप उसकी माँ उर्मि को अपना बसा-बसाया सुखी घर त्यागना पड़ता है। ट्रांसजेंडर बच्चे के जन्म पर पिता सहित परिवार का कोई भी सदस्य समर्थन में नहीं आता। सब उसे फेंक देने, अनाथालय में या ट्रांसजेंडर समुदाय को दे देने की सलाह देते हैं। उसकी भाभी ने तो कहा कि अगर उर्मि ने ये बच्चा घर में रखा तो वह भैया को लेकर घर से अलग हो जाएगी, जबकि वह खुद सरकार से अनुदान लेकर गरीब बच्चों के लिए काम करती थी। यही हाल उसके समाजसेवी

पिता का भी था। "अपना इंतजाम कर लो। हम तुम्हें इस बच्चे के साथ यहाँ नहीं रख सकते। थोड़ी आर्थिक सहायता अवश्य कर देंगे|"[17] उर्मि घर छोड़ देती है। बहुत मुसीबत का सामना करती हैं। इसी दौरान उसे भीख माँग रही एक परित्यक्त स्त्री मिलती है जो उसका साथ देती है। दोनों के सहयोग से ट्रांसजेंडर स्नेहा अपने सपने तक पहुँचती है और पढ़ाई के लिए विदेश जाती हैं। जहाँ उसके शोध कार्य को बहुत तारीफ़ मिलती है।

ट्रांसजेंडर समाज में जाति और धर्म की वजह से कोई भेदभाव नहीं है। उन सबका संघर्ष भेदभाव रहित और साझा है। 'कबीरन' कहानी में मुख्य पात्र कबीरन भी यही सवाल उठाती है "तुम्हारी दुनिया हमें सामान्य नहीं मानती। जबकि तुम लोग खुद सामान्य नहीं हो। जेहनी बीमार हो। कभी जात में, कभी धर्म में, कभी औरत-मर्द में भेदभाव किए रहते हो। बीमार समाज है तुम्हारा। इसकी बीमारी दूर करने की कोशिश करो |"[18] विजेंद्र प्रताप की कहानी 'संकल्प' में भी एक जगह ऐसा प्रसंग आता है जो इस बात की पुष्टि करता है। "सामाजिक समरसता की बात की जाए तो हिजड़ों के डेरे से बड़ा शायद ही कोई उदाहरण मिले। कोई हिन्दू के घर जन्मा, तो कोई मुस्लिम के तो कोई किसी पंडित, दलित या अन्य के पर किसी में कोई भेदभाव नहीं |"[19] कबीरन उस समाज में लौटने से इनकार कर देती है जिसने उसे बचपन में ठुकरा दिया। उस समाज से सवाल करती है जिसमें स्त्री- पुरुषों के अलावा किसी का कोई स्थान नहीं है। ट्रांसजेंडर चूँकि इन दोनों में से कोई नहीं है इसलिए कानून भी उनके अनुसार नहीं है। कबीरन के साथ अनाथालय में बलात्कार होता है, लेकिन वह किसी से शिकायत नहीं कर पाती, क्योंकि कानून में इस बात की जगह ही नहीं है कि हिजड़ों से भी बलात्कार हो सकता है। वह अपनी हिजड़ों की कौम में खुश है, क्योंकि उसे लगता है कि सामान्य दुनिया की तरह बेरहम और असंवेदनशील लोग यहाँ नहीं हैं। "अब हमारा परिवार, रिश्ते-नाते, सब यही समुदाय तो है। हम यहीं अपनी पूरी जिन्दगी जी लेते हैं। भाई-बहन, पति-पत्नी, माँ-बाप सब यहीं होते हैं। पर मैं पूरे विश्वास से कह सकती हूँ तुम्हारी दुनिया से अच्छी होती है हमारी दुनिया। किसी को धोखा नहीं देते, दुत्कारते नहीं हैं। हम मेहनत करते हैं और गाते-बजाते हैं, उसके बदले कुछ ले लेते हैं। हमारा समाज..तुम्हारी बेरहम दुनिया से अलग है बाबूजी |"[20] कबीरन की कहानी यह है कि जब उसका जन्म होता है तब तक उसकी मां बेहोश होती है। दाई और दादी मिलकर मरे बच्चे पैदा होने की अफवाह फैला कर बच्चे को अनाथालय भेज देती है, क्योंकि कोई उसे इस रूप में स्वीकार नहीं कर पाता है। बाद में उसके भाई सुमेघ का जन्म होता है जो इस भूल गयी कहानी को फिर जिन्दा करता है। उसे अपने आसपास एक हिजड़ा दिखता है जो अपना जैसा लगता है। सुमेघ से बार-बार उसकी चर्चा सुन कर उसके माता-पिता परेशान हो जाते हैं और फिर एक दिन स्वयं ही सारी बात सुमेघ को बता देते हैं। सुमेघ अपनी बहन को घर वापस लाने की कोशिश करता है लेकिन वह इनकार कर देती है|

क्या ट्रांसजेंडर को बाकी लोगों की तरह जीने और परिवार बनाने का अधिकार नहीं है? सोमा भारती की कहानी 'गली आगे मुड़ती है' यही सवाल उठाती है। समाज द्वारा स्थापित नियम जिसमें सिर्फ

स्त्री-पुरुष को ही परिवार बनाने का अधिकार है, साथ रहने का अधिकार है, विवाह का अधिकार है। ट्रांसजेंडर नील इसी नियम के घेरे में कैद है। इससे निकलने के लिए रायना एक माध्यम भी है और न निकल पाने का एक मजबूत घेरा भी। जब रायना नील की ख़ामोशी को पढ़ने में नाकाम रहती है तब वह खुद ही पहल करती है। नील के भी समक्ष अब कोई विकल्प नहीं रह जाता है। वह नग्न होकर रायमा के सामने खड़ा हो जाता है "तुमने सही सुना रायमा, मैं, तुम सबका नील एक किन्नर है..हिजड़ा कहते हो जिसे तुम लोग |... अब बोलो, मुझसे अकेलापन बांटना है...करना है ब्याह मुझसे ?"[21] वह फैशन उद्योग (इंडस्ट्री) से जुड़ा है। उसके ट्रांसजेंडर होने की पहचान लम्बे समय तक दुनिया की नजर से छुपी रहती है। रायना उसकी शो स्टॉपर है। दोनों अपने जीवन में सफल हैं, लेकिन निजी जिन्दगी में बुरी तरह विफल। जहाँ रायना अपनी भूख मिटाने के लिए 10 साल की उम्र में पचास साल के आदमी को अपना वजूद गिरवी दे चुकी होती है वहीं नील आस-पास किसी लड़की के होने मात्र से बैचैन हो उठता था। वह अपनी व्यवस्थित जिन्दगी में कोई भी व्यवधान नहीं चाहता था। लेकिन रायना ने उसके एकरस जिन्दगी में व्यवधान डाल दिया था। उसने शादी की बात की तो नील ने अपनी हकीकत बता दी। कुछ समय तक दूरी रही लेकिन फिर रायना ने बिना शादी के एक परिवार बनाने और साथ रहने का आग्रह किया। नील तत्काल तो काम का बहाना बना गया, लेकिन कहानी इस उम्मीद में ख़त्म होती है कि कभी न कभी बर्फ पिघलेगी। "मत बनाओ मुझे पत्नी, एक परिवार बना लो। तुम भी अकेले हो मैं भी एक बच्चे के साथ अकेली। क्या दो मित्र एक परिवार की तरह नहीं रह सकते?..मुझे तुम्हारी कम्पैनियनशिप चाहिए नील, मुझे यह भी यकीन है कि तुम आज नहीं तो कल मेरी बात जरुर समझोगे और मान भी जाओगे और हम एक परिवार जरुर बनायेंगे। अकेले- अकेले अपने- अपने नागपाश में कैद नहीं रहेंगे। मुक्त होंगे। नया इतिहास बनायेंगे |"[22]

महेंद्र भीष्म की आदर्शवादी कहानी 'माई...' भविष्य के समाज का स्वप्न दिखाती है। कहानी में वृद्धा ट्रांसजेंडर एक आदमी का बैग चुरा लेती है। वह आदमी ट्रेन के इंतजार में प्लेटफॉर्म पर ही झपकी मार गया था। जब नींद खुलती है तो, वह वृद्धा को पकड़ लेता है और उसके साथ अच्छा व्यवहार करता है। उसे खिलाता-पिलाता है और अपने घर ले आता है। सब लोग उसे घर में उसे वैसा ही सम्मान देते हैं जैसा अपने बुजुर्ग को देते हैं। यहाँ तक कि घर के सारे काम उससे पूछ के होते हैं। अब सवाल यह उठता है कि क्या वास्तव में यह समाज किसी वृद्ध ट्रांसजेंडर को इस तरह का सम्मान देने के लिए तैयार है ? जवाब नकारात्मक ही है। समाज ने अभी इस दिशा में सोचना शुरू ही किया है इसलिए हमें यह कहानी अतिशयोक्तिपूर्ण लगती है। लेकिन, अगर इस वृद्धा में से ट्रांसजेंडर हटा दें तो कहानी कुछ हद तक स्वाभाविक लग सकती है। ट्रांसजेंडर को हर जगह जिस समस्या का सामना करना पड़ता है वह इस कहानी में कहीं दिखाई नहीं देता है। कहानी आदर्शवादी किस्म की है। वैसे कहानी एक संवेदनशील समाज का खाका भी खींचती है।

जब हम किसी भी स्थिति से खुद रूबरू नहीं होते तब तक उस विषय पर हमारी समझ एकांगी होती है | हम उसकी गंभीरता को समझ नहीं पाते | डॉ. लवलेश दत्त की कहानी 'बददुआ' में रामकली के घर वालों ने कभी हिजड़ों का अपमान किया था और लाठी लेकर उनके पीछे मारने दौड़े थे। हिजड़ों ने बददुआ दी कि उनके भी घर हिजड़ा पैदा होगा। संयोग से रामकली का बेटा हिजड़ा पैदा हुआ और अंत में हिजड़े उसे अपने साथ ले गए जबकि बेटे के मोह में रामकली रोती बिलखती रह गयी। जिस समाज ने हिजड़ों की परवाह नहीं की, जिसकी इज्जत नहीं की, जिसको आदमी नहीं माना, उसमें एक हिजड़ा ने रहने से इंकार कर दिया। हिजड़ों का जन्म समाज के बाहर नहीं होता बल्कि समाज के ही किसी परिवार में होता है। इसके बावजूद समाज उसको स्वीकार नहीं करता है। रामकली के परिवार ने पहले तो हिजड़ों का अपमान किया लेकिन जब उनका खुद का बेटा मुरली हिजड़ा हो गया तब जाकर उनको एहसास हुआ। रामकली ने मुरली को बहुत रोकने की कोशिश की लेकिन उसे ही अपने होने का एहसास था "हाँ माँ...मुझे लड़की बनना अच्छा लगता है। मुझे लाली लगाना, साड़ी पहनना, नाचना यह सब बहुत अच्छा लगता है माँ..."[23] वह अंत में माँ को छोड़ सहर्ष हिजड़ों की टोली में शामिल हो गया।

नयी कहानी के दौर में कई अछूते विषयों को कथा साहित्य में जगह मिली। इसी दौर में शिव प्रसाद सिंह ने ट्रांसजेंडर को केंद्र में रख कर 'बिंदा महराज' जैसी कहानी लिखी। उस समय किसी ने नहीं सोचा था कि आगे चलकर हिजड़ों का जीवन भी एक अलग विमर्श के केंद्र में आ जाएगा। शिव प्रसाद सिंह ने बिंदा महाराज के रूप में एक ऐसे हिजड़े पात्र का निर्माण किया है जो समाज के अमानवीय और हिजड़ों के मानवीय रूप को उद्घाटित करता है। समाज में हिजड़ों को भी स्त्री की तरह एक ऑब्जेक्ट के रूप में देखा जाता है। उसकी यौनिक गतिविधि पर सबकी नजर रहती है लेकिन उसके इंसान होने की परवाह कोई नहीं करता। "यह लोग लिंग की दृष्टि से भले ही अपूर्ण होते हैं परंतु मानवीय गुण के रूप में प्रेम करुणा और ममता जैसी प्रवृतियाँ स्वाभाविक रूप से उनके भीतर भी होती हैं। लेकिन वह उसको व्यक्त नहीं पाते हैं। या कहा जाय कि समाज का नफरत भरा रवैया उसको व्यक्त करने का अवसर ही नहीं देता है |"[24] बिंदा महराज को दीपू मिसिर के बेटे से बहुत लगाव है लेकिन गाँव में यह अफवाह फैला दी जाती है कि मिसिर और बिंदा में चक्कर चल रहा है। वैसे यह अलग बात है कि बिंदा को इस तरह की बात पसंद है क्योंकि वह सपने में भी खुद को इस लायक नहीं समझता कि कोई उससे भी प्यार कर सकता है। एक बार दीपू मिसिर का बेटा भ्रम में आकर बिंदा को बुआ बोल जाता है और फिर बिंदा उसे गले लगा लेता है। जब उस बच्चे की अचानक तबीयत खराब हो जाती है और उसकी मृत्यु हो जाती है तब सब लोग बिंदा को ही डायन करार देते हैं। "हिजड़े के साथ का असर है भाई...सोने जैसा लड़का सो गया|"[25] इसके बाद बिंदा खुद को समाज से काट लेता है और बीमार पड़ जाता है। कहानी हिजड़ों के जीवन के अलावा भी समाज की एक अलग परत खोलती है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने हर जाति द्वारा अपने से छोटी जाति खोज लेने की प्रवृति की ओर जो इशारा किया था वह इस कहानी में भी दिखता है। बिंदा महराज हिजड़ा होकर समाज में उपेक्षित है तो घुरविनवा चमार जाति से होने की वजह से। होना तो यह चाहिए कि दोनों खुद का एक ही श्रेणी में समझे लेकिन बिंदा महराज भी घुरविनवा के साथ दुर्व्यवहार

करते हैं "भाग बे हरामजादा। इसका दीदा न देखो। दुनिया-भर का रोंघट पोतकर देह में सटा आता है; चमार सियार की जात हुंह, कैसा जमाना आ गया है, बड़े-छोटे का कोई विचार नहीं"[26] एक हिजड़ा भी उसी मनुवादी व्यवस्था का हिस्सा बना हुआ है जिसका शिकार वह खुद है। कोई अपूर्ण लिंग की वजह से तिरष्कृत है तो कोई तथाकथित छोटी जाति में जन्म लेने की वजह से।

समाज में हिजड़ों को लेकर जो धारणा बनी है उसमें उनका मानवीय पक्ष गायब कर दिया गया है। हमने हिजड़ों के बारे में जो सुना या एक नजर में जो देखा उसी को सच मान लेते हैं। सुनी-सुनाई बातों और रूढ प्रतिमानों पर उनकी ज़िंदगी का आकलन करते हैं। हम ट्रेन में या खुशी के अवसर पर पैसा माँगते हुए हिजड़ों को लेकर एक नकारात्मक छवि मन में बना लेते हैं। जबकि हिजड़े भी संवेदनशील हो सकते हैं उनका मानवीय पक्ष ज्यादा उदार हो सकता है, इसकी तरफ हमारा ध्यान नहीं जाता है। देहरादून ऑनलाइन हिंदुस्तान अखबार में एक खबर "कंधे पर ले जा रहा था भाई का शव, किन्नरों ने पैसे जमा कर बुलाई एम्बुलेंस" शीर्षक से प्रकाशित हुई। इसे साझा करते हुए राघवेन्द्र अवस्थी नामक एक व्यक्ति ने फेसबुक पर लिखा "अपने मंत्रिमंडल में कुछ किन्नरों को शामिल कीजिये प्रधानसेवक जी...शायद तब सिस्टम कुछ संवेदनशील हो सके..."[27]

महेंद्र भीष्म की 'त्रासदी', गरिमा संजय दुबे की 'पन्ना बा', श्रीकृष्ण सैनी की 'हिजड़ा', पूनम पाठक की 'किन्नर' कहानी हिजड़ों के प्रति समाज की इसी सोच को झुठलाती है। ये अलग बात है कि अंततः वह समाज के उसी सोच का शिकार हो जाती है। त्रासदी कहानी में सुंदरी हिजड़ा विधवा रति को गुंडों से बचाती है। रति भी सुंदरी को अपने घर में आश्रय दे देती है। लेकिन उसका बेटा दीपक समाज द्वारा हिजड़ों के प्रति फैलाये नफरत के जाल में उलझ कर सुंदरी को ट्रेन के नीचे फेंक देता है। एक हिजड़ा अगर 'सामान्य' इंसान के लिए हितकारी भी होता है तब भी वह हिजड़ा ही रह जाता है। एक इंसान के तौर पर स्वीकृति हासिल नहीं कर पाता है। तथाकथित मुख्यधारा का समाज हिजड़ों को हाशिये पर रखना चाहता है। किसी भी प्रकार से उसके द्वारा समाज में घुसने की कोशिश समाज के ठीकेदारों को नागवार गुजरती है। सुंदरी हिजड़े के मामले में भी समाज दीपक के माध्यम से सुंदरी को काँटे की तरह निकाल फेंकता है। पहले उसे घर से निकाला फिर उसे मार डाला। गरिमा संजय दुबे की कहानी 'पन्ना बा' कहानी भी उस पूर्वाग्रह को ध्वस्त करती है जिसमें हिजड़ों को अमानवीय मान लिया जाता है। उनका भी जीवन एक साधारण इंसान की तरह है जिसको गुस्सा भी आता है और प्यार भी आता है। उसके अंदर भी घृणा है, नफरत है, ईर्ष्या है। जब कहानीकार और उनके भाई की गलती से जाम तोड़ने के दौरान पन्ना बा को पत्थर लग जाता है तब समाज में प्रचलित धारणा के अनुरूप वे लोग एक खास आशंका से ग्रसित हो जाते हैं। जबकि गुस्सा होने के बावजूद पन्ना बा अपने लिए कुछ खर्चा पानी माँग कर उसके घर से लौट गया। जब विवाह के बाद लेखिका अपने बच्चे के साथ पन्ना बा को मिली तो उसने उसके बच्चे को दस रुपया का नोट देते हुए आशीर्वाद दिया। मानो मुहल्ले का कोई बुजुर्ग अपने नाती-पोते को नेग दे रहा हो। हमने ट्रांसजेंडर के लोगों को लेकर इतनी भ्रांत धारणा बना रखी है कि

अक्सर हम उनके मानवीय पक्ष की उपेक्षा कर जाते हैं। कहानी उसके पक्ष में खड़ी होती है और ताकीद करती है कि उनको भी इंसान समझा जाए। श्रीकृष्ण सैनी की कहानी 'हिजड़ा' भी ट्रांसजेंडर के मानवीय पहलू को उद्घाटित करता है। निम्मो ने सब दिन रजिया हिजड़ा को 'हिजड़ा' न मान कर एक इंसान माना। इसलिए उसकी अचानक मौत के बाद रजिया उसके बच्चे को अपना लेती है। इसके लिए उसे विरोध का सामना भी करना पड़ता है। जब तक बच्चे अफसर नहीं बन जाते हैं तब तक वह बिना बताए उनका खर्चा उठाती है। कुछ परिस्थितियों की वजह से सुनील को हिजड़ों से नफरत है। जब उसकी नफरत बढ़ जाती है तब प्रिंसिपल उसको सच्चाई से अवगत कराते हैं। "...तुम हमेशा पूछा करते थे कि तुम्हारी फीस, कपड़े वगैरह पर कौन खर्च कर रहा है... अरे जान जाओगे तो यह अकड़ी हुई गर्दन ज़िंदगी में फिर कभी नहीं उठेगी। तुम्हें पालने वाली रजिया थी जो खुद एक हिजड़ा थी |... अरे, यह जान जिसके बल पर तुम अकड़ रहे हो, यह एक देवता स्वरूप हिजड़े की ही बख्शी हुई है तुम्हें। याद है तुम्हें इस सभ्य दुनिया के लोग बुरी तरह घायल करके सुनसान इलाके में फेंक गए थे। अगर वह देवता तुम्हें खून नहीं देता तो आज तुम यह दिन देखने के लिए जिंदा नहीं होते |"[28] अधिकतर उपेक्षित समुदाय और तथाकथित मुख्य धारा के समाज में संवाद के अभाव में इतनी दूरी बढ़ जाती है कि दोनों एक दूसरे को समझे बिना एक दूसरे के प्रति एक रूढ़ धारणा निर्मित कर लेते हैं। इस कहानी के माध्यम से यह धारणा और पुष्ट होती है। सुनील के चाचा ने भले उससे दूरी बना ली लेकिन एक हिजड़े ने उसका जीवन भर साथ दिया। इसके बावजूद हिजड़ों को लेकर समाज के बने कमजोर मानदंडों में फँसा सुनील राज खुलने से पहले तक उनके प्रति उपेक्षित भाव रखता रहा। पूनम पाठक की कहानी 'किन्नर' में मानसी हिजड़ा के बगल की सीट पर बैठने से इंकार कर देती है। लेकिन बस में जब उसे लड़के छेड़ने लगते हैं तो वही हिजड़ा बचाने आता है। फिर मानसी की धारणा एक झटके में बदल जाती है। "हिजड़ा ये नहीं बल्कि आप सभी हो, जो अभी तक सारा तमाशा देख रहे थे, किसी हिन्दी फिल्म की तरह। कुछ देर और चलता तो शायद एम.एम.एस. भी बनाने लगते, पर मदद को एक हाथ आगे नहीं आता |"[29]

राकेश शंकर भारती की कहानी 'मेरी बेटी' में मुन्नी के जीवन के जरिये हम देखते हैं कि अगर किन्नरों को भी मौके मिले तो वह भी लड़के और लड़कियों की तरह समाज और देश की सेवा कर सकती है। मुन्नी उर्फ राधिका एम्स में डॉक्टर बनकर इसे प्रमाणित करती है। हालाँकि कहानी में जिस नाटकीयता से मुन्नी की किस्मत बदली गयी है वैसा यथार्थ रूप में सभी ट्रांसजेंडर के साथ हो नहीं पाता। राधिका को अरोरा दंपत्ति का साथ मिला इसलिए उसकी किस्मत बदल गयी वरना अधिकतर को घर से बाहर निकाल दिया जाता है |

विश्वनाथ त्रिपाठी ने 'तृतीय लिंगी विमर्श' को 'नया मानवीय विमर्श' माने जाने की वकालत करते हैं | किरण सिंह की कहानी 'संझा' इस विमर्श की प्रतिनिधि कहानी है | जब किसी घर-परिवार में ट्रांसजेंडर बच्चे का जन्म होता है तो कई स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। कुछ परिवार इस सच को स्वीकार कर लेते हैं और कुछ स्वीकार नहीं कर पाते। जो स्वीकार नहीं कर पाते वे बच्चे हिजड़ों को सौंप देते हैं।

जबकि कुछ परिवार स्वीकार तो कर लेते हैं लेकिन समाज का भय उनको बना रहता है और एक दिन वो भी सामाजिक दवाब में उसका त्याग कर देते हैं। लेकिन एक श्रेणी उन परिवारों की भी है जो स्वीकार भी करते हैं और हर संकट में अपने बच्चे के साथ खड़े भी होते हैं। संझा ऐसी ही कहानी है। संझा की माँ अपनी सामाजिक ज़िंदगी को छोड़ नन्ही संझा के लिए अपने आपको घर के अंदर कैद कर लेती है हालाँकि वह बहुत दिनों तक संघर्ष नहीं कर पाती और चिंता में मर जाती है लेकिन उसका पिता अंतिम साँस तक उसको दुनिया की नजरों से बचाने की कोशिश करता है। बड़ी होकर वह कनाई से शादी करती है और उसकी नपुंसकता ठीक करती है। वैद्य पिता से उसे यह कला विरासत में मिली थी। लेकिन वही कनाई उसे दुनिया की नजर में नंगा कर देता है। तब अचानक संझा दुनिया की नजर से बच कर किसी तरह ज़िंदगी जीने की अपनी प्रवृति का त्याग कर देती है। "न मैं तुम्हारे जैसी मर्द हूँ। न मैं तुम्हारे जैसी औरत हूँ। मैं वो हूँ जिसमें पुरुष का पौरुष है और औरत का औरतपन। तुम मुझे मारना तो दूर, अब मुझे छू भी नहीं सकते, क्योंकि मैं एक जरूरत बन चुकी हूँ। सारे चौगाँव ही नहीं, आस-पास के कस्बे-शहर तक, एक मैं ही हूँ जो तुम्हारी ज़िंदगी बचा सकती हूँ। अपनी औषधियों में अमरित का सिफ़त मैंने तप करके हासिल किया है। मैं जहाँ जाऊँगी, मेरी इज्जत होगी। तुम लोग अपनी सोचो।"[30]

ट्रांसजेंडर के जीवन का सबसे त्रासद पक्ष यह है कि उसे अपनी नयी पहचान की वजह से अपना घर- परिवार सब त्यागना पड़ता है | किसी भी इंसान के लिए यह करना बहुत कठिन काम है | नए जीवन की शुरुआत के एवज में अपने अतीत से कट जाना पीड़ादायक होता है | डॉ. मृणालिका ओझा की कहानी 'एक मोड़ ये भी' में प्रतिज्ञा को जब अपनी नयी पहचान के बारे में पता चलता है तो वह अचानक से गायब हो जाती है। कहानी का अंत उपेक्षा, घृणा या नकार से नहीं बल्कि भूले-बिसरे प्रेम के पुनर्जीवन से होता है, स्वीकार से होता है। प्रतिज्ञा, सोफिया और रघु बचपन के मित्र हैं। रघु प्रतिज्ञा को चाहता है। अचानक प्रतिज्ञा के अंदर जैविक परिवर्तन आने लगता है जो उसे एहसास दिला देता है कि वह ट्रांसजेंडर है। उसका व्यवहार भी चिड़चिड़ा हो जाता है। वह स्कूल छोड़ देता है। पिता उसे चाचा को सौंप देता है और चाचा उसे ट्रांसजेंडर समुदाय में पहुँचा देता है। दोस्तों को इस बात की खबर भी नहीं होती है कि प्रतीक्षा के साथ क्या हुआ ? रघु वैरागी हो जाता है और सोफिया अपने जीवन में व्यस्त हो जाती है। एक दिन अचानक ट्रेन में प्रतिज्ञा अपने बदले रूप 'समीर' में सोफिया को मिल जाती है। फिर उसकी रघु से भी मुलाक़ात होती है। वे प्रतिज्ञा के बदले रूप को स्वीकार कर लेते हैं। कहानी एक नए सपने को आकार देती हुई समाप्त होती है। सोफिया कहती भी है "ज़िंदगी की बेवफ़ाई को व्यक्ति की बेवफ़ाई मत समझो। हम अँधेरे में सच के नाम पर भटक रहे हैं। तीनों के बीच में जो काल्पनिक सच है, उसे दूर करो। हम तीनों अच्छे मित्र हैं। एक-दूसरे के प्रति इतने अनुत्तरदायी कैसे हो सकते हैं ?"[31]

सदियों से पुरुष द्वारा स्त्री वेश बनाकर नाचने-गाने की परंपरा रही है। कुछ तो इतना अच्छा श्रृंगार कर लेते हैं कि सचमुच में स्त्री लगने लगते हैं । अब भले कुछ गाँवों में आरकेस्ट्रा का आगमन हो गया है लेकिन आज भी उत्तर भारत के अधिकतर गाँवों में इस 'लौंडा नाच' की प्रथा जीवित है। अश्विनी कुमार

आलोक की कहानी 'मोहब्बत वाले गाने' का नायक छकउरी भी ऐसा ही नर्तक है। "न रूप, न रंग। काला भुजंग, उस पर आँखों में भगजोगार काजल।"[32] हालाँकि अब वह उम्रदराज हो गया है लेकिन उसको अपने जवानी पर बहुत गर्व है। "मुझे वह जमाना याद है, जब मेरे गीत सुनकर हरदेव मास्टर का नाच देखने जाते लोगों के पाँव रुक जाते थे। वह भी एक जमाना था बबलू बाबू ! जब गाँव में पहली बार अलखू बाबू की भतीजी के विवाह में हेमामालिनी का नाच आया था और लोगों ने उस नाच को देखकर थूक दिया था। थूक दिया, बबलू बाबू! या कहकर कि नामी बनिया की झाँ.... बिकती है। रे इससे अच्छा तो हमारा छकउरी नाचता है।"[33] वह समाज की नजर में पुरुष होकर भी स्त्री है। आसनसोल के एक सेठ का लड़का उसको स्त्री रूप में प्यार करता है तो उसके साथ नाचने वाली ट्रांसजेंडर मीना उसे पुरुष रूप में प्यार करती है। "मीना मुझसे मोहब्बत करती है बबलू बाबू ! यह स्त्री नहीं है, पुरुष भी नहीं। मैं स्त्री होकर इसे पा लेता, या यह मुझे पुरुष होकर पा लेती। मैं पुरुष होकर भी स्त्रियों-सा दिखता रहा। परंतु इस हिजड़े ने पूरी उम्र मुझे मोहब्बत दी।"[34] हालाँकि छकउरी विवाहित है और उसके बच्चे भी हैं। लेकिन मीना कहती है- "मोहब्बत महसूस की जाती है साहेब! महसूस करने के लिए दिल ईश्वर ने सभी को दिया है।... मैं हिजड़ा हूँ साहेब! समाज के लिए मज़ाक की वस्तु! देह से विचित्र। पर मुझे भी किसी देह और दिल की दरकार रहती है। छकउरी मेरा सबकुछ है। अलग-अलग होते हुए भी हम अलग नहीं हैं।"[35] मीना छकउरी के नाम का सिंदूर भी लगाती है। मीना जिस शिद्दत से छकउरी से प्रेम करती है उसी तरह राही मासूम रजा की कहानी 'खलीक अहमद बुआ' में खलीक अहमद रुस्तम खाँ से करते हैं। समर्पण इतना कि रुस्तम के अलावा किसी को भी नजर उठा कर नहीं देखा। रुस्तम ने जब वेश्या पुखराज के लिए उसके साथ दगाबाजी की तो उसको पुखराज के कोठे पर जाकर चाकू से मार दिया। उसके लिए रुस्तम पति था। "प्रेम को किसी बंधन में बांधना आसान नहीं है। प्रेम और विवाह दो अलग-अलग मार्ग है। विवाह अगर पूर्ण रूप से भौतिक है तो प्रेम एक फैन्टेसी है या कहें एक यूटोपिया है। जिसमें अक्सर प्रेमी अपने को डुबोए रहते हैं।"[36] बुआ ऐसी ही प्रेमिका थी। एक हिजड़े के लिए ना शादी की परंपरा है ना ही उसके लिए इसके मायने हैं लेकिन प्रेम में समर्पण किसी से भी कम नहीं है। वह रुस्तम को घी चुपड़ कर रोटी खिलाती थी, पैर दबाती थी तो बेवफ़ाई पर जान लेने से भी ना चुकी। आखिरकार पूरी दुनिया के सामने उसने अपने रिश्ते को कुबूला था।

ट्रांसजेंडर समुदाय के लिए दुर्लभ संयोग है कि कोई इलाज के बाद पूरी तरह नर या नारी के रूप में बदल जाये और बच्चे पैदा करने में भी सक्षम हो। विजेंद्र प्रताप सिंह की कहानी 'संकल्प' में मधुर से माधुरी बना नायक ट्रांसजेंडर के विरले उदाहरणों में से है जो ऑपरेशन के बाद एक लड़की के रूप में परिवर्तित हो जाता है। जब एक पुलिस जबर्दस्ती उसके साथ संबंध बनाता है तब उसे अपने अर्धविकसित योनि का एहसास होता है। "गुरुमाई से ही पता चला कि बुचरा हिजड़े जो औरत ज्यादा होते हैं। उनके योनि जैसी आकृति होती तो है परंतु बहुत कम उन्नत होती है किसी-किसी के तो सिर्फ दो छेद मात्र होते हैं। अर्धविकसित योनि होती है पर लिंग होता भी है और नहीं भी होता है। उनके साथ

औरत की तरह सेक्स किया जा सकता है |"[37] इलाज के बाद वह एक पूर्ण औरत के रूप में सामने आती है। इस कहानी में भी एक डॉक्टर पात्र इस बात की पुष्टि करता है।

ट्रांसजेंडर बच्चे के जन्म पर पूरा परिवार उस औरत के खिलाफ खड़ा हो जाता है जिसने बच्चा जना होता है। किसी हिजड़े बच्चे के जन्म पर परिवार की मर्दानगी को सबसे ज्यादा ठेस पहुँचती है। विनोद कुमार दवे की कहानी 'पद्मश्री थर्डजेंडर' में रेवती द्वारा हिजड़े बच्चे को जन्म देने पर उसकी सास आगबबूला हो जाती है। "कलमुँही मर क्यों नहीं गयी? क्या मुंह दिखाना अब समाज में। गला घोंट कर मार दो दोनों को। ये ही पैदा करना था तो 9 महीने तक कोख में लेकर क्यों बैठी रही ? जहर खा लेती। फांसी पर लटक जाती। कुएं में कूद जाती। मुझे पता होता तो लाट मार देती तेरे पेट को डाकण ! पता नहीं क्या जन दिया कुलटा तूने। छिनाल कहाँ मेरे बेटे के गले पड़ गयी..."[38] बाद में अपने एक शिक्षक की मदद से वह उस ट्रांसजेंडर बच्चे को पाल कर एक विश्वस्तरीय पर्वतारोही बनाती है। उसको बाद में 'पद्मश्री' से भी सम्मानित किया जाता है।

आमतौर पर हरेक ट्रांसजेंडर नाच-गा कर ही अपनी जीविका चलाते हैं। यह उनकी मजबूरी भी है। बाकी पेशे उनके लिए अनुकूल नहीं होते क्योंकि समाज उनको स्वीकार नहीं पाता। कई बार कुछ ट्रांसजेंडर इस दिशा में कोशिश करते भी हैं तो उनको बहुत सारी अवांछित चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। सफिया सिद्दीकी की कहानी 'अपना दर्द' की नायिका राजू का भी मन नाचने-गाने में नहीं लगता। कुछ और करने की बेचैनी उसे गलत राह पर ले जा रही होती है, लेकिन पारो दीदी की वजह से वह बच जाती है। लेकिन अंततः वह मैकअप का काम सीख ही जाती है। भले ही हिजड़ा होने की वजह से उसे परिवार छोड़ना पड़ता हैं, लेकिन हर कदम पर वह अपने लिए नए रास्ते बना ही लेती है।

इन सबके अतिरिक्त हिन्दी में बहुत सारी कहानियाँ हैं जो ट्रांसजेंडर जीवन के विविध पहलू को हमारे सामने रखती है। उर्मिला शुक्ल की कहानी 'मैं फूलमति और हिजड़े', डॉ. लवलेश दत्त की 'नवाब' और नेग', डॉ. विमलेश शर्मा की 'मन मरीचिका', डॉ. मेराज अहमद की 'मैमूना, मोमीना और मैनू, जवाहरलाल कौल 'व्यग्र' की 'ज्योति सूना नयन', कैस जौनपुरी की 'एक किन्नर की लव स्टोरी, बबिता भंडारी की 'समर से सुरमई', लव कुमार लव की 'अंधेरे की परतें', डॉ. रश्मि दीक्षित की 'नियति', मीना पाठक की 'भूमिजा', ललित सिंह राजपुरोहित की 'ट्रांसजेंडर', चाँद दीपिका की 'खुश रहो क्लीनिक, ललित शर्मा की 'रतियावन की चेली', अंजना वर्मा की ' कौन तार से बी'नी चदरिया, डॉ. पद्मा शर्मा की 'इज्जत के रहबर', कादंबरी मेहरा की 'हिजड़ा' कुसुम अंसल की 'ई मुर्दन के गाँव', सलाम बिन रजाक की 'बीच के लोग' कहानियाँ इसमें प्रमुख है। सभी कहानियाँ से जो एक प्रमुख सवाल उभर कर सामने आता है वह यह है कि इनकी यह दशा क्यों ? समाज का रुख इनके प्रति ऐसा क्यों ? क्या यह इंसान नहीं है ? क्या इनको समाज में सम्मान के साथ जीने का हक नहीं है ? कुछ सवाल के जवाब मिलते हैं तो कुछ सवाल अनसुलझे हैं। अभी भी बहुत सारे सवाल हल किए जाने हैं। डॉ. लता अग्रवाल लिखती हैं:-

विकलांग के नाम पर
पाते हैं संवेदना
जीते हैं विशेष अधिकार संग
मुझे क्यों नहीं
ससम्मान जीने का वह अधिकार ?
आखिर मैं भी तो
विकलांग हूँ
जी हाँ !
मैं लैंगिक विकलांग हूँ |"[39]

2.9 हिन्दी कहानियों में समलैंगिकता

2.9.1 समलैंगिकता क्या है?

हमारे समाज में प्रजनन प्रक्रिया के जुड़े यौन व्यवहार ही स्वीकार्य रहे हैं। इसके अलावा किसी भी तरह के यौनिक व्यवहार को समाज और कानून ने मान्यता नहीं दी है। स्त्री-पुरुष के बीच के यौन संबंध ही नैतिक माने जाते रहे हैं। इसके अलावा किसी भी तरह के संबंध को अप्राकृतिक माना गया है। समलैंगिक रिश्तों को लेकर मानव समाज बहुत क्रूर रहा है। धार्मिक ग्रंथों में भी स्त्री-पुरुष सम्बन्ध के अलावा किसी अन्य प्रकार के यौनिक संबंध को पाप माना गया है। परन्तु धर्म की पहरेदारी और दबिश के कारण प्राचीन समय से ही ऐसे रिश्ते चोरी-छिपे ही सही समाज में जरुर विद्यमान रहे हैं |

जब कोई स्त्री या पुरुष समान लिंगी के प्रति यौन या रूमानी रूप से जुड़ा होता है तो यह समलैंगिकता के अंतर्गत आता है। "यदि कोई समलैंगिकता को इस अर्थ में लेता है कि वह शब्द केवल उन लोगों के लिए प्रयुक्त होता है जो समान लिंग के लोगों के प्रति आकर्षित होते हैं, तब इस परिभाषा के अनुसार कहीं अधिक लोग समलैंगिक होंगे बजाय कि यदि कोई समलैंगिकता का अर्थ केवल यह समझता हो जिसमें दो समानलिंगी लोगों के आपसी यौन-संबंध हैं। आमतौर पर, यह शब्द उन सभी लोगों के लिए प्रयुक्त होता है, जो समान लिंग के प्रति आकर्षित होते हैं, उनके लिए भी जिनका अभी तक समलैंगिक यौन-संबंध हैं |"[40]

समलैंगिकता को लेकर सबसे पहला सवाल जो उभरता है वह यह कि क्या यह प्राकृतिक है ? जो यौन संबंध सृजन में सक्षम नहीं है क्या उसे जायज संबंध माना जाय ? इस संदर्भ में समलैंगिक अतुल कुमार सिंह कहते हैं "मेरे को ऐसा लगता है कि जो ह्यूमन बॉडी होती है...लाइक..हम लोगों का जो एग्झिस्टैंस होता है वो बिकॉज़ ऑफ़ इमोशंस है। प्यार, स्नेह, गुस्सा, अवसाद अगर किसी के मन को परिभाषित करो तो इसके बिना परिभाषा कम्पलीट नहीं हो सकती। तो इसके लिए लाइक...जहाँ प्यार की बात आती है तो इमोशंस होते हैं वो पावरफुल होते हैं ..लाइक...किसी भी इमोशंस को फील करने के

लिए...परफॉर्म करने के लिए मेय बी दिक्कत होता है..बट फील करने के लिए कोई बाउंडेसन या बाउंड्री नहीं क्रियेट की जा सकती है। क्योंकि..लाइक...इमोशंस होना ही एक ह्यूमैनिटी है।"[41]

साहित्य में जिस तरह से इन सम्बन्धों पर चर्चा की गयी है उससे हमें नयी दृष्टियाँ मिलती हैं। समलैंगिक संबंध को लेकर पूरी दुनिया में बहस चल रही है। मनोवैज्ञानिकों ने तो इसे पूरी तरह प्राकृतिक बताया है। यह इलाज से ठीक होने वाली चीज है ही नहीं क्योंकि यह बीमारी नहीं है। साहित्य में ऐसे संबंध के विविध पहलू सामने आए हैं। हमारा समाज खुल कर ऐसे रिश्तों को जाहिर करने से डरता है। अगर इस बात को खुल कर स्वीकार किया जाने लगे तो समाज की यह बनी-बनाई धारणा टूट सकती है कि सिर्फ स्त्री-पुरुष के बीच ही प्रेम हो सकता है। सामाजिक बंधन ऐसे समुदाय को अपने प्रेम और भावना को व्यक्त करने से रोकते हैं।

2.9.2 समलैंगिकता और समाज

अंग्रेज इस तरह के संबंध के पक्ष में नहीं थे | वह भी विक्टोरियाई नैतिकता से गहरे प्रभावित थे। भारत में पहली बार क़ानूनी रूप से अंग्रेज विधिशास्त्री विलियम ब्लैकस्टोन(1723-80) ने इस पर प्रतिबंध लगाया। उन्होंने दो पुरुषों को आपस में यौन सम्बन्ध बनाने पर सजा दे दी। बाद में लार्ड मैकाले ने इसे भारतीय दण्ड विधान के धारा 377 के अंतर्गत रखा और 1861 में इसे लागू किया। यह भारतीय दण्ड विधान की धारा 377 'अप्राकृतिक अपराधों' के उप अध्याय में शामिल है। धारा के अनुसार किसी भी पुरुष, महिला या जानवर के साथ अप्राकृतिक रूप से शारीरिक सम्बन्ध बनाने वाले व्यक्ति को आजीवन कारावास की सजा हो सकती है। 20वीं सदी में यूरोप और अमेरिका में ऐसे रिश्तों को लेकर खूब आन्दोलन हुए। सामाजिक मान्यता को लेकर लम्बी लड़ाई लड़ी गयी। तब जाकर उनको उनका अधिकार मिला और विवाह के लिए कानूनी रूप से इजाजत मिली। पूर्ण रूप से सामाजिक मान्यता का इंतजार तब भी बना ही हुआ है। भारत में तो अभी यह आन्दोलन अपने प्रारंभिक दौर में है।

जब इस समुदाय के लोग अपनी पहचान को छुपाने के बजाय उस पर गर्व करते हैं तो उसका विशेष महत्व होता है। वे मानते हैं कि उन्होंने कोई गलत काम नहीं किया है जिसके लिए लज्जित होना पड़े। जो लोग अपनी लैंगिक रुचि को जाहिर करते हैं उन्हें 'खुला' और जो छुपा के रखते हैं उन्हें 'कोठरी के भीतर' कहा जाता है। प्राचीन समय की चित्रकारियों के माध्यम से पता चलता है कि उस समय भी दो पुरुषों के बीच अंतरंग संबंध और यौन व्यवहार होते थे। दक्षिण अफ्रीका, ताइवान, जर्मनी, माल्टा, अमेरिका, फ्रांस, आयरलैंड, कोलम्बिया, डेनमार्क, पुर्तगाल, ब्राज़ील, नीदरलैंड, आइसलैंड, नॉर्वे, स्पेन, कनाडा, उरुग्वे, फ़िनलैंड, स्वीडन, बेल्जियम, अर्जेन्टीना, न्यूजीलैंड, मेक्सिको ऐसे देश हैं जहाँ समलैंगिकों को कानूनी मान्यता है और विवाह करने की भी अनुमति है। सबसे पहले नीदरलैंड ने 2001 में इसको कानूनी मान्यता दी थी। भारत में संभवतः पहला मामला छत्तीसगढ़ में देखने को मिला। सरगुजा जिला अस्पताल की नर्स तनुजा चौहान और जया वर्मा ने 27 मार्च 2001 को समलैंगिक विवाह

किया था। यह औपचारिक रूप से विवाह का पहला मामला माना जाता है। विवाह बाकायदा वैदिक रीति-रिवाज के साथ हुआ था। इस तरह की एक और घटना भी छत्तीसगढ़ में ही घटी। दुर्ग जिले की डॉ. नीरा रजक और नर्स अंजनी निषाद ने भी समलैंगिक विवाह के लिए आवेदन दिया था लेकिन प्रशासन ने इसकी अनुमति नहीं दी। छत्तीसगढ़ के ही रायगढ़ जिले के एक गाँव में 20 साल की रासमति और 13 साल की रुक्मिणी ने शादी की लेकिन गाँव वालों ने जबरदस्ती उन्हें अलग कर दिया। उच्चतम न्यायालय द्वारा समलैंगिकता के पक्ष में निर्णय के बाद उत्तरप्रदेश के हमीरपुर की 25 वर्षीय अभिलाषा और 21 वर्षीय दीपशिखा ने अपने-अपने पति को तलाक देकर शादी कर ली। हालाँकि शादी के रजिस्ट्रेशन में दिक्कत आ रही है। पिता ने भी घर से निकल जाने का अल्टीमेटम दे दिया है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ से अपील करते हुए अभिलाषा कहती हैं "मेरी मोदी, योगी जी से दरख्वास्त है कि उनके बनाए कानून से हमने शादी की है। हमें उनकी तरफ से जॉब में मदद मिलनी चाहिए।"[42] समाज ने जब ताना मारते हुए इस तरह के रिश्ते को अस्वीकार करते हुए कहा कि ऐसा नहीं होता है तब दीपशिखा ने जवाब देते हुए कहा कि "कैसे नहीं होता है ? होता है। सरकार ने कानून बनाया है।"[43]

भारतीय समाज में किसी भी समलैंगिक के लिए साथी खोजना कठिन काम है। किसी के साथ स्थायी प्रेम उससे भी दुरूह है। कई बार उनके साथ हिंसा हो जाती है तो कई बार वो खुद हिंसा पर उतर आते हैं। 17 जुलाई 2017 के हिंदुस्तान दिल्ली संस्करण के पेज नंबर 4 पर प्रकाशित खबर के अनुसार एक जिम ट्रेनर ने सिर्फ इसलिए एक बैंक मैनेजर को चाकू से गोद डाला क्योंकि वो समलैंगिक संबंध के लिए दवाब डाल रहा था। जेल एक ऐसी जगह है जहाँ समलैंगिक संबंध की संभावना सबसे ज्यादा होती है। वहाँ महिला और पुरुष वार्ड अलग-अलग होते हैं। कई कैदियों को लंबी सजा होती है इसलिए वो लंबे समय तक बाहरी समाज से कटे होते हैं। इसलिए जेल में दो पुरुषों के बीच शारीरिक संबंध बनने शुरू हो जाते हैं। हालाँकि इस तरह के सबंध की शुरुआत आमतौर पर जबर्दस्ती से होता है। सांसद पप्पू यादव ने अपनी जेल के दिनों पर लिखी एक पुस्तक 'जेल' में लिखा है "संयोग से कुछ भूमिहार जाति के बड़े अपराधी ने एक कुर्मी जाति और पासवान जाति के कुछ नौजवानों के साथ जबर्दस्ती शारीरिक संबंध बनाना चाहा था, या कहें बना लिया था। जिसके चलते पूरे सप्ताह तक बांकीपुर जेल में मीटिंग चलती रही।"[44]

योग गुरु बाबा रामदेव ने प्रभु चावला को दिए एक इंटरव्यू में कहा कि "समलैंगिकता एक मानसिक और अनुवांशिक बीमारी है...यह पशुता से भी बुरी है. इसके लिए पुनर्वास केंद्र होने चाहिए ना कि इसे बढ़ावा दिया जाना चाहिए ...समलैंगिकता को बढ़ावा देने से परेशानियां बढ़ती ही जाएंगी और एक गलत परंपरा की शुरुआत होगी | उन्होंने समलैंगिकता को विवाह संस्कृति के खिलाफ बताया और कहा कि यह एक संगठित सेक्स अपराध है...सबसे बड़ी हानि चरित्र की हानि होती है, अगर चरित्र गया तो सबकुछ गया और समलैंगिकता चरित्रहीनता की पराकाष्ठा है।...समलैंगिकता खून में होती है

इसलिए रक्तदान से समलैंगिक लोगों को दूर रखना चाहिए नहीं तो लोगों के जींस बदल जाएंगे |"[45] हिंदी की ऑनलाइन वेबसाइट द क्विंट ने बाबा रामदेव के इस दावे की पड़ताल के लिए उनके पतंजलि चिकित्सालय का दौरा किया। पतंजलि के चिकित्सकों ने इस सम्बन्ध में अपनी राय रखी। बीएएमएस डिग्रीधारी (बैचलर ऑफ आयुर्वेद, मेडिसिन एंड सर्जरी,) डॉ.ज्ञानेंद्र कुमार ने कहा कि "इनको स्वामी जी का कार्यक्रम दिखाओ, इससे मानसिक विकार ठीक हो जाएगा। ये तो अननेचुरल है |"[46] डॉ. रजत ने कहा कि "ये बीमारी नहीं है, लेकिन हमारे समाज में इसे मान्य नहीं किया जा सकता, विल पावर(इच्छा शक्ति) से इसे ठीक किया जा सकता है |"[47] पतंजलि आयुर्वेद सेंटर के प्रवक्ता एस. के. तिजरावाला ने कहा कि "हमें लगता है ये एक मानसिक विकार है। एक इंसान आध्यात्मिक जीवनशैली अपनाकर, अपनी संस्कृति के बारे में जानकार और योग के जरिए फिर से सामान्य हो सकता है |"[48] आर्या वैद्य शाला, कोट्टल के डॉ. विनोद के इसके ठीक उलट विचार रखते हैं। उनका कहना है कि "समलैंगिकता कोई रोग नहीं, इसलिए इसके इलाज का सवाल नहीं है। जो इसके इलाज की बात करते हैं, वे केवल लोगों को बेवकूफ बनाते हैं |

2.9.3 हिंदी कहानियों में स्त्री समलैंगिकता (लेस्बियन)

स्त्री समलैंगिकता या लेस्बियन पर हमारे समाज और साहित्य में चर्चा तो शुरू हो गयी है लेकिन इस तरह के संबंध को हमारा समाज स्वीकार करने को तैयार नहीं है। अब जबकि कानून ने इसे अपराध मानने से इंकार कर दिया है इसलिए अब जो कहानियाँ लिखी जाएंगी उसमें उसका फर्क भले देखा जाए लेकिन इस कानून के आने से पहले के जीवन की जो कहानियाँ हैं उसमें अपराध माने जाने का डर और समाज की अस्वीकृति का एहसास साफ देखा जा सकता है। जानकारी के अभाव में इस तरह की भावना कोई मुक्कमल आकार नहीं ले पाती है। कई बार ऐसे पात्र परिवार और समाज के दबाव में आकर इसे खुद अनैतिक मान लेती हैं और शादी करके अपनी भावनाओं को दबा देती हैं। निर्मला जसवाल की कहानी 'रेत का रिश्ता' स्त्री समलैंगिक जीवन की ऐसी ही तस्वीर हमारे सामने रखती है। कहानी में दो युवती है जिनके बीच प्रेमपूर्ण संबंध हैं। वैसे दोनों उभयलिंगी हैं। दोनों एक दूसरे से गहरे जुड़े हैं, लेकिन दोनों को अलग-अलग पुरुष से भी प्रेम है। अंत में शादी किसी और से हो जाती है। शुरुआत में अमृत जिंदर को संगीत से ज्यादा तवज्जो देती है और अंत में संगीत भी पम्मी को अमृत पर तरजीह दे देती है। अमृत और संगीत प्रेम में तो है लेकिन साथ रहने का साहस कभी जुटा नहीं पाती। अमृत मन मारकर न्यूजीलैंड में शादी कर लेती है लेकिन बाद में उसका पति चल बसता है। संगीत अमृत के चेहरे से मिलते जुलते एक अमीर से शादी कर लेती है जिससे बाद में उसका तलाक हो जाता है। कहानी के अंत में दोनों के मिलने का फिर से संयोग बनता है लेकिन दोनों फिर कोई निर्णय नहीं ले पाती है । इन दोनों की समस्या सिर्फ समलैंगिक होने भर की नहीं है। इनके अंदर की मध्यवर्गीय चेतना इनको कोई भी निर्णय लेने में बाधा पहुँचाती है। प्रेम में कोई निर्णय न लेने के बाद दोनों ने अपनी आर्थिक सुरक्षा का ख्याल रखते हुए सक्षम पुरुषों से शादी की। जबकि दोनों उस रिश्ते में खुश नहीं थीं। संगीत का तो बाकायदा तलाक हो गया।

स्वाति तिवारी की कहानी 'वो जो भी है, मुझे पसंद है' में एक मनोविज्ञान की शिक्षिका और उसकी छात्रा के बीच समलैंगिकों को लेकर एक बहस है। छात्रा अमेरिका में रहती है और अपनी प्रिय शिक्षिका को एक सेमिनार में बोलने के लिए अमेरिका बुलाती है। जब उसको पता चलता है कि उसकी छात्रा समलैंगिक है और शादी नहीं कर रही तो वह उससे बहस में उलझ जाती है। बहस में छात्रा अमिता कहती है "मेम आप तो सिंगमंड फ्रायड को पढ़ती रही है न, आपने ही एक बार फ्रायड को पढ़ाते हुए समझाया था ना ?.. मेम मुझे लगता है फ्रायड ठीक ही कहते हैं यह विकृति(परवरसन) नहीं यह उलटाव(इनवरसन) है वे इसे बीमारी-विमारी नहीं मानते ?"[49] अमिता लंबी बहस के बाद अपनी शिक्षिका की सोच बदलने में कामयाब हो जाती है। शिक्षिका जब भारत लौटती है तो इस विषय पर एक अंतरराष्ट्रीय सेमिनार का प्रस्ताव रखती है जिस कारण प्राचार्या की भी धारणा बदलती है। प्राचार्या को अफसोस होता है कि इससे पहले वह अपने समलैंगिक बेटे को समझ नहीं पायी थी।

हमारे समाज में स्वाभाविक रूप से लिंगाकर्षण के प्रति एक बनी बनाई धारणा है कि एक स्त्री एक पुरुष के प्रति ही आकर्षित हो सकती है, उससे ही प्रेम कर सकती है। उसी तरह एक पुरुष भी एक स्त्री के प्रति ही आकर्षित होता है, प्रेम करता है और विवाह करता है। नरेंद्र सैनी की कहानी 'एक लड़की अनजानी-सी' इस मान्यता का निषेध करती है। इस कहानी में काम्या मुख्य पात्र है जो स्त्री समलैंगी(लेस्बियन) है। तीन लड़के उनसे प्रेम करते हैं और उनके प्रति समर्पित दिखाई पड़ते हैं। काम्या को लेकर सबने सपने बुन रखें हैं। काम्या किसी से भी शादी का वादा नहीं करती है। एक दिन वह तीनों को एक साथ एक जगह बुलाती है और आगे के सफर के लिए तीनों का साथ मांगती है। "मैं उसे चाहती हूँ लेकिन समाज हमें एक नहीं होने देगा। इसलिए मुझे हमेशा तुम लोगों का साथ चाहिए। बोलो हमेशा मेरा साथ दोगे न ?"[50] फिर वह अपने और रोशनी के रिश्ते की असलियत उन तीनों को बता देती है। हालाँकि तीनों लड़के इस बात से बहुत ज्यादा आश्चर्यचकित नहीं होते बल्कि उनका ध्यान इस बात पर है कि काम्या को तीनों में से कोई हासिल नहीं कर पाया।

पुरुषों के प्रति नफरत भी कई बार इस तरह के संबंधों का कारण बनती है | अपने अनुभव की वजह से कोई स्त्री पुरुष के बजाय किसी अन्य स्त्री को खुद के करीब महसूस करती है | डॉ. लवलेश दत्त की कहानी 'स्पर्श' भी समलैंगिक सम्बन्धों की वकालत तो करती है लेकिन उसके जड़ में समलैंगिक आकर्षण कम और पुरुषों के प्रति नफरत ज्यादा है। दीप्ति अपने माँ साक्षी के अतीत से परिचित है जो दो पुरुषों द्वारा छली गयी। दोनों पुरुषों ने उसका साथ नहीं दिया। एक ने शादी नहीं की और गर्भवती होने पर बच्चे को अपना नाम देने से इंकार कर दिया। साथ ही उसने गर्भपात करने का हुक्म भी दिया। जबकि दूसरे ने बच्चे सहित अपनाने का वादा करके प्रेम का नाटक किया और फरार हो गया। इसलिए दीप्ति के अंदर माँ के अतीत को लेकर गुस्सा है और उसका लड़कों के प्रति आकर्षण खत्म हो गया है। "तुम ही बताओ माँ तुम्हें क्या मिला...सबकुछ छोड़कर जिसके सहारे तुम आई थीं उसने तुम्हें क्या दिया ? बताओ मम्मी...एक नहीं दो-दो आदमियों का साथ तुमने लेने की कोशिश की लेकिन हासिल क्या हुआ ? आज

तुम और मैं अकेले ही हैं। न तुम्हें पति का नाम मिला और न मुझे पिता का ? फिर ऐसे फरेबी पुरुषों में से किसी एक के साथ शादी करके उसके बच्चे की माँ बनके मुझे क्या मिलेगा ? कहीं मेरी ज़िंदगी भी आपके जैसी निकल गयी तो ? सच माँ! बहुत तरस आता है तुम्हारी ज़िंदगी पर। नहीं चाहिए मुझे तुम्हारे जैसी ज़िंदगी। इससे तो अच्छा है कि मैं संजना को अपना जीवनसाथी बनाकर अपने साथ रख लूँ।"[51] कहानी के अंत में माँ साक्षी अपने बेटी के तर्कों से सहमत हो जाती है और संजना के साथ उसके समलैंगिक रिश्ते को सहजता से स्वीकार लेती है।

समलैंगिक जीवन से जुड़ी कहानियाँ पढ़ते समय एक प्रश्न बार-बार मन में आता है कि मान लिया कि कोई प्राकृतिक रूप से समलैंगिक है तो वह खुद के जैसा साथी कहाँ से ढूंढेगा ? उसकी खोज कैसे संभव हो पाती है ? हालाँकि बड़े शहरों में ग्रिंडर (grindr), रोमियो (romeo), हर (her) इत्यादि ऐप ने साथी की खोज आसान कर दी है। इसके बावजूद किसी विषमलिंगी स्त्री और पुरुष के लिए साथी ढूँढना अपेक्षाकृत आसान है। समाज में विपरीत लिंगी संबंध को ही मान्यता है इसलिए ऐसे सबंध साफ-साफ दिखाई देते हैं। इस बात की संभावना हो सकती है कि अगर समलैंगिक संबंधों को सामाजिक मान्यता मिले तो पारंपरिक धारणा में भी बदलाव हो सकता है। लेकिन आज की हालत में भारतीय समाज में यह सहज रिश्ता नहीं माना जाता है। फिर सवाल उठता है कि एक समलैंगिक अपने साथी की तलाश कैसे करता है ? क्या इस प्रक्रिया में वह जबर्दस्ती का भी सहारा लेता है ? किसी की मजबूरी का भी फायदा उठाता है ? या कुछ रिश्ते परिस्थिति की उपज होते हैं जो समय के साथ खत्म हो जाते हैं ? आकांक्षा पारे काशिव की कहानी 'सखि साजन' में इस प्रश्न का जवाब मिलता है लेकिन वह भी आधा-अधूरा। इस कहानी में सोनाली बेला से प्रेम करती है। जाहिर तौर पर इस रिश्ते को स्वीकार करने का वातावरण नहीं बन पाता है तो बेला अपने ऑफिस के मित्र विनीत से शादी कर लेती है। सोनाली अकेले रह जाती है। यहाँ संभव है कि बेला उभयलैंगिक है जिसके लिए दोनों लिंगों से सहज संबंध है। या यह भी हो सकता है कि वह स्वाभाविक तौर पर ऐसी ना हो लेकिन परिस्थितिवश ऐसे संबंध विकसित हो गए हों। कहानी के अंत-अंत तक बेला में इस रिश्ते के टूट जाने का कोई गम दिखाई नहीं देता है। विनीत से शादी के वक्त कुछ भी असामान्य नहीं था उसकी ज़िंदगी में। कहानी का अंत डायरी में सोनाली द्वारा बनाए खूब सारे आँखों के चित्र से होता है। अगर प्रदीप इसकी व्याख्या करता तो इसका मतलब होता कि सोनाली आज भी बेला का इंतजार कर रही है। कहानी इस बात का जवाब नहीं देती है कि इंतजार का क्या हुआ ?

अमेरिका में एलजीबीटी के अधिकारों को लेकर बड़े आंदोलन हुए हैं। उसमें बड़े पैमाने पर हिंसा भी हुई और बहुत सारे लोग मारे गए। इसकी झलक और प्रभाव अनिल प्रभा कुमार की कहानी 'कतार से कटा घर' में मिलती है। वहाँ समलैंगिक विवाह को लेकर जो आंदोलन हुए उसका असर इस कहानी पर दिखता है। इसमें दो महिला समलैंगिक (लेस्बियन) हैं और बिना विवाह के दोनों साथ रह रही हैं। डोनेट किये गए स्पर्म के सहारे उन्होंने बच्चा(बेटी) गोद भी लिया है। दोनों के परिवार में से एक का

परिवार नाराज है। सामाजिक मान्यता नाम मात्र है। यहाँ तक कि उनके बच्चे को स्कूल में चिढ़ाया जाता है। लेकिन दोनों अपने बच्चे को अपने सम्बन्धों के बारे में खुल कर बताती हैं और समाज के सामने ना झुकने और ना शर्मिंदा होने के लिए प्रेरित करती हैं। "रेत में सिर छुपा लेने से तो तूफान को नहीं नकारा जा सकता। लोग इस बात को मानना ही नहीं चाहते इसलिए ज़्यादातर लोग अपने सम्बन्धों को छिपाकर रखते हैं। हम क्योंकि खुले समाज में रहते हैं तो कोशिश कर रहे हैं कि जो हम हैं, उसी तरह से रहें ! हम अलग हैं पर गलत नहीं !"[52] दोनों को एक जोड़ा नहीं माना जाता। दोनों को अलग- अलग टैक्स देना पड़ता है। विवाह का प्रावधान नहीं है। फिर भी दोनों कानूनी लड़ाई लड़ते हैं और अपने अधिकार प्राप्त करते हैं। फिर उनका विवाह होता है। अंत-अंत तक सभी नाखुश परिवार वाले भी शामिल हो जाते हैं। लेकिन समाज की नफरत से अभी लड़ना बाकी है क्योंकि विवाह के दिन जोड़े की कार जिस पर 'न्यूली मैरिड' लिखा होता है उस पर कोई अंडा फेंक जाता है।

समलैंगिक रिश्तों को जाहिर करने के साहस का न होना और समाज की अस्वीकार्यता इस तरह की संबंधों को जटिल बना देते हैं | ऐसे संबंध में दोनों युगल असुरक्षा बोध से ग्रसित हो जाते हैं | राजेन्द्र यादव की कहानी 'प्रतीक्षा' में गीता के अंदर भी असुरक्षा बोध बहुत ज्यादा है। वह किसी भी कीमत पर नन्दा को खोना नहीं चाहती। उसके चले जाने की किसी भी संभावना से वह आहत हो जाती है। बचपन से 'मास्टर साहब' के अधूरे प्रेम में आज भी वह प्रतीक्षारत है। नन्दा एक किरायेदार के रूप में कुंती मेहरा के माध्यम से गीता से जुड़ी। लेकिन वक्त के साथ यह रिश्ता बदल गया। नन्दा को एक व्यवस्थित ज़िंदगी मिली तो गीता को एक सहारा। नन्दा जब मिस रेमंड से जुड़ी तो गीता शेरनी की तरह खूँखार हो उठी। हालाँकि हर्ष के साथ नन्दा को देख कर वह खुश होती है लेकिन आंतरिक रूप से वह डर भी जाती है कि इस वजह से कहीं नन्दा उससे दूर ना हो जाये। नन्दा के बिना वह अधूरा हो जाती है। "उस रात नन्दा के निर्वस्त्र, समर्पित शरीर को अपनी उत्तेजित साँसों और उन्मत्त बाहों में जकड़े, उसके दाहिने वक्ष के रूपये के बराबर दाग पर होंठ रखे, गीता पागलों की तरह बस यही कहती रही, "नन्दन, मुझे छोड़कर मत जाना!...मैं तेरे बिना मर जाऊँगी, नन्दन!"[53]

मुंबई जैसे बड़े शहरों में समलैंगिक रिश्तों के पनपने और उसके स्वीकार का वातावरण बाकी जगह की तुलना में ज्यादा है | लेकिन यहाँ का भी समाज दूसरे जगहों से भिन्न नहीं है | अंततः ऐसे रिश्ते नकारात्मक रूप में परिणत हो जाते हैं | बहुत सूरज प्रकाश की लंबी कहानी 'ये जो देश है मेरा...' मुंबई के भागदौड़ भरी ज़िंदगी की कहानी है। इसका एक बड़ा हिस्सा मुंबई की ज़िंदगी के आसपास ही घूमता है। इसमें हरलीन लेस्बियन (स्त्री समलैंगिक) है। उसकी अपनी स्वतंत्र ज़िंदगी है। लेकिन वह भी अपने लिए एक मुक्कमल साथी चाहती है। बरखा के साथ वह अपने भविष्य का सपना बुनती है। अपनी कमाई का बड़ा हिस्सा उस पर खर्च करती है। बरखा के अंदर पुरुष हार्मोन्स है इसलिए उसके ऑपरेशन के लिए पैसे भी जमा कर रही है । इस रिश्ते का अंत बहुत खराब होता है क्योंकि बरखा उनकी बजाय किसी विषमलिंगी से शादी करके अपना घर बसा लेती है। हरलीन इस सदमे को बर्दाश्त नहीं कर पाती और

आत्महत्या कर लेती है। इस कहानी में बॉलीवुड की रंगीन दुनिया का सच भी बाहर आता है। कास्टिंग काउच उस इंडस्ट्री के लिए आम बात है। समलैंगिक सम्बन्धों को यहाँ बहुत सहज रूप से लिया जाता है। अपनी आत्मकथा 'एक अनोखा लड़का' में करण जौहर ने तो खुद का समलैंगिक होना स्वीकार भी किया है। कई बार यह रिश्ते भावनात्मक स्तर पर भी विकसित होते हैं तो कई बार शोषण के स्तर पर। "अब जो नयी नस्ल आ गयी है इस लाइन में, वह बहुत खतरनाक है। वह है कास्टिंग काउच। जरूरी नहीं कि ये बंदा कास्टिंग डॉइरेक्टर हो। वह चैनल में या प्रोड्क्शन हाउस में कुछ भी हो सकता। काम उसका बस एक ही है कि चैनल में या प्रोड्क्शन हाउस को इस बात के लिए कनविन्स करना कि ये रोल तो फलां बंदी को मिलना ही चाहिये। हॉ, उस बंदी को, और अगर कास्टिंग काउच गे है तो उस बंदे को इस रोल को पाने के पहले या बाद में भी उसका बिस्तर गर्म करना ही होगा। स्मार्ट लड़कों से कहा जाता है कि रोल चाहिये तो लड़की लाओ चाहे तुम्हारी गर्लफ्रेंड ही क्यों न हो। उन्हें पता है कि बंदा स्मार्ट है ता उसकी गर्लफ्रेंड भी सुंदर होगी।"[54]

इस्मत चुगताई की बहुचर्चित कहानी 'लिहाफ' उन शुरूआती कहानियों में से है जिसमें समलैंगिक सम्बन्धों पर खुल कर बात की गयी है। हालाँकि मूल रूप से यह कहानी उर्दू में लिखी गयी है। इस कहानी में स्त्री समलैंगिक और पुरुष समलैंगिक दोनों संबंध दिखाई पड़ते हैं। बेगम जान के माँ-बाप ने उसकी शादी बड़ी उम्र के नवाब साहब से इसलिए कर दी क्योंकि उनका किसी बाजारू औरत से कोई संबंध नहीं था। लेकिन नवाब साहब को गोरे- गोरे, पतली कमर वाले नौजवानों का शौक था। उन्हें बेगम जान में कोई रुचि नहीं है। इसी अकेलपन को रज्जो ने भर दिया है। वह उनके जिस्म की मालिश करती रहती है। कहानी में बहुत बेबाकी से उन दोनों के बीच के शारीरिक सम्बन्धों का वर्णन किया गया है।

स्त्री समलैंगिकता से संबंधित कहानियों में विविधता है। इसके माध्यम से ऐसे सम्बन्धों की प्रकृति को समझने में मदद मिलती है। मातृत्व के नए विकल्प से स्त्री समलैंगिकता को एक मजबूत आधार मिला है। दोनों पार्टनर में से कोई भी कृत्रिम तरीके से बच्चे को जन्म दे सकती है। यह पुरुष समलैंगिक के लिए संभव नहीं है। उन्हें किसी तीसरे मनुष्य की सशरीर सहायता लेनी होगी। अनिल प्रभा कुमार की कहानी 'कतार से कटा घर' इसकी पुष्टि करती है। हालाँकि कहानी इससे उत्पन्न अन्य जटिलता की ओर भी इशारा करती है। भारतीय समाज में स्त्री समलैंगिकता को अभी स्वीकार नहीं किया गया है। इसलिए कहानियों में स्पष्ट दिखता है कि कई लड़कियां इसे खुल कर व्यक्त नहीं कर पाती और मजबूरी में किसी पुरुष से शादी कर लेती है। यह भी संभव है कि वो उभयलिंगी हों इसलिए वह सर्वस्वीकार्य संबंध की तरह बढ़ जाती है। क्योंकि वे अपनी कमजोर प्राथमिकता के पक्ष में खड़े होने का साहस जुटा नहीं पाती। जब यह विमर्श नया आकार लेगा तब इसके और भी विविध आयाम सामने आएंगे।

2.9.4 हिंदी कहानियों में पुरुष समलैंगिकता (गे)

साहित्य में जिस रूप में पुरुष समलैंगिक संबंध आया है उसके अनुसार कहा जा सकता है कि कई बार यह संबंध स्वाभाविक तौर पर विकसित ना होकर परिस्थिगत होता है । शाहिद अख्तर की कहानी 'टकला नवाब' में भी पुरुष समलैंगिक संबंध का प्रसंग आया है लेकिन वह स्वाभाविक रूप से बना संबंध नहीं है बल्कि बलात्कार है। कहानी का अंत ही इस वाक्य से होता है कि "परसों वह बाजू वाला टकला नवाब मेरे को ज़बरदस्ती अपनी खोली में बुला ले गया था |"[55] गाँव से आया अनवर मुंबई में अजनबी है लेकिन जब से कमाठीपुरा की वेश्या सावित्री से उसका संपर्क हुआ उसको जीने की वजह मिल गयी। वह पूरी कहानी में सावित्री के साथ एक बेहतर शारीरिक संबंध को जी रहा है। उसके मोहल्ले के टकला नवाब की उस पर नजर थी और एक दिन वही नजर जबर्दस्ती के संबंध में बदल जाती है। इस वजह से उसके लिंग से खून का श्राव होने लगा। डॉक्टर और उसके दोस्त मुन्ना को लगता है कि यह वेश्यागमन की वजह से हुआ है लेकिन सच तो यह था कि यह टकला नवाब द्वारा जबर्दस्ती बनाए संबंध की वजह से हुआ था। इस तरह के संबंध में एक पक्ष अपनी इच्छा बलात किसी दूसरे पर थोप देता है। तारीख असलम 'तस्नीम' की कहानी 'ओवरकोट' में जमादार रहमान भी ताहिर के साथ जबर्दस्ती ही करता है। कलीम के जरिए उसे ताहिर के परिवार की सारी खबर है। कलीम को भी ओवरकोट देकर उसने अपने जाल में फँसा लिया है। उसने ताहिर के पापा को भी ताहिर को बाहर घुमाने के लिए राजी कर लिया है। उसे यह भी पता है कि ताहिर के पापा ऑफिस से देर रात तक घर आते हैं।

बच्चों को फुसलाकर उससे जबर्दस्ती संबंध बनाने वाले को मेडिकल साइन्स में 'पीडोफाइल्स यानि बालकामुक' कहा गया है। बीबीसी में 21 अप्रैल 2015 को अपने एक लेख में द्रोण शर्मा बताते हैं कि इस तरह के शोषण में परिवार के लोग ही शामिल रहते हैं। उन्होंने इस लेख का शीर्षक 'बाल यौन शोषण: ख़तरा अपनों से है' दिया है और बताया है कि बच्चों का यौन शोषण करने वालों में आधे अभिभावक होते हैं या बीस फ़ीसदी अन्य रिश्तेदार। जमादार रहमान का ताहिर के घर में आना जाना है। इसी का फायदा उठा कर वह ताहिर को अपने साथ घुमाने ले जाता है। गाँधी मैदान के एक सुनसान कोने में वह ताहिर के साथ जबर्दस्ती करता है। "...खूब मजे में खोया हुआ था कि ताहिर को अचानक जैसे बिच्छू के डंक मारा हो। कुछ ऐसा ही एहसास हुआ था। उसने हड़बड़ा कर वहाँ से उठने की कोशिश की। रहमान मियाँ ने उसको अपनी गोद में खींचकर बिठाते हुए बेहद नरमो नाजुक लहजे में समझाया 'ऐसी कोई बात नहीं है ताहिर। धीरे-धीरे तुम को भी मजा आने लगेगा... आज तो पहली बार है न! रहमान मियां ने अपने शरीर की ओर इशारा करते हुए बेहद मुलायमियत से कहा...इसे पकड़े रहो... दबाते रहो... और सहलाते रहो..."[56] वैसे ताहिर ने पुलिस का डर दिखा कर उससे छुटकारा पाया। उसने रहमान द्वारा पैसे देने और सिनेमा दिखाने के लालच की परवाह नहीं की। उसने यह भी अनुमान लगाने की कोशिश की, कि कलीम को ओवरकोट का लालच इसने इसी काम के लिए दिया होगा।

धर्म समलैंगिकता के मामले में निर्मम रहा है। किसी भी धर्म में आसानी से इसकी स्वीकृति नहीं है।

समलैंगिक संबंधों को लेकर धर्म का रुख बहुत कठोर रहा है | हरेक धर्म ने इस तरह के रिश्ते का निषेध किया है | अनिलप्रभा कुमार की कहानी 'दीवार के पार' एक ईसाई समलैंगिक युवक की कहानी है । उसकी माँ मेरी एक धर्मभीरु महिला है । इसलिए जब उसको पता चलता है कि उसका बेटा समलैंगिक है तो उसको पादरी की कठोरता याद आने लगी । वह इस स्थिति को स्वीकार नहीं कर पाती है । "मेरी को लगता जैसे उसकी ममता पर कोई गंदी, घिनौनी-सी चीज आकर लिपट गई है । उसकी प्रार्थनाएँ बढ़ गईं। सीने के ऊपर एक भारी बोझ, एक अपराध-बोध । मेरी परवरिश में क्या कुछ कमी रह गई ? वह जीसस से मांफ़ी माँगती । फादर रिल्के के शब्द कानों में गूँजते-समलैंगिकता पाप है । यह अप्राकृतिक है । ऐसे लोगों के लिए हमारे धर्म में कोई स्थान नहीं है |"[57] धर्म से काट दिये जाने के इसी डर की वजह से वह बेटे को स्वीकार नहीं कर पाती और न ही उसकी इस 'समस्या' को समझ पाती है । एक दिन उसका बेटा खुद को दुनिया में अकेला पाता है और आत्महत्या कर लेता है । एहसास होने पर मेरी अपने धर्म का बहिष्कार कर देती है । "जिस धर्म में मेरे बेटे के लिए स्वीकृति नहीं, आज से मैं उसको ही अस्वीकार करती हूँ । मैं अब कभी चर्च नहीं आ पाऊँगी |"[58] धर्म की कठोरता ने समलैंगिकता को लेकर सामाजिक स्वीकृति की राह को और कठिन बनाया है । कहानी में भी किसी पात्र के अंदर क्रिस के प्रति सहानुभूति तक नहीं है । उसका रूममेट उसके अंतरंग क्षणों की वीडियो बना लेता है और उसे इंटरनेट के जरिये पूरी दुनिया के सामने परोस देता है । हालाँकि क्रिस के रूममेट को उसके अपराध की कानूनन सजा भी मिली । कहानी की पृष्टभूमि भारत के बाहर की है और वहाँ इसको लेकर सख्त कानून है । समलैंगिकों के लिए सामाजिक स्वीकृति प्राथमिक कारक है । उनके सामने बहुतेरी चुनौतियाँ हैं और वे उसके लिए लड़ते भी हैं लेकिन उनके संघर्ष का एक बड़ा हिस्सा स्वीकार और नकार में ही खत्म हो जाता है । हालाँकि अब कानून इस मामले में उनके साथ आ रहा है ।

पंकज सुबीर की कहानी 'अँधेरे का गणित' एक ऐसे समलैंगिक की कहानी है जो हर वक़्त अपने पार्टनर की तलाश में रहता है । मुंबई की भीड़भाड़ वाली ज़िंदगी में वह अकेला महसूस करता है । गाँव के दिनों में एक शादी समारोह में कुछ लोग उसको बियर पिला कर जबर्दस्ती उसके साथ संबंध बनाते हैं । उसकी समझ में कुछ नहीं आता है । उसका एक दोस्त उसको समझाने के नाम पर उससे फिर संबंध बनाता है । यह संबंध प्रगाढ़ता में बदल गया । वह इस तरह के संबंध के प्रति उत्सुक और सहज हो गया । "उस रात दो अनावरण हुए, पर आज ना तो पसलियाँ चटख रहीं थीं, न ही साँसे उखड़ रहीं थीं, एक भारहीनता थी जो वस्त्रों के जंगल से बाहर आने पर महसूस हो रही थी, उसका दोस्त कोहरे की तरह छाया हुआ था । उसके अंदर भी कुछ उगने लगा था, कुछ ऐसा जो उसे कोहरे में धुएँ की तरह बिखेरने लगा था |"[59] ज़िंदगी की जरूरतों की वजह से कस्बा छूट गया और मुंबई कर्मस्थली बन गयी । जिस दोस्त से शारीरिक जरूरत पूरी होती थी उससे दूरी हो गयी । बार-बार कस्बा जाना भी संभव नहीं था । वह शाहरुख खान के पोस्टर देख-देख कर उसको अपने पार्टनर के तौर कल्पना करता रहता था । आखिरकार तन्मय के रूप में उसे एक सहारा मिल जाता है । तन्मय के आने के बाद वह पुराने रिश्ते के पार्टी विमुख हो जाता है । कथानायक के अंदर शारीरिक चाहत ज्यादा है । छोटे आयु में उसके साथ जो कुछ हुआ उससे उसकी

यौनिकता बदल गयी। उसने एक कुंठा का रूप ले लिया जो बाद में प्रबल हो गया। जिसकी पूर्ति के लिए वह हर वक्त प्रयासरत रहता है। अपने दोस्त से दूरी और मुंबई का अकेलापन उसके लिए बोझ बन जाता है। वह एक दिशा की तलाश में रहता है। तन्मय उसके लिए एक संभावना बन कर आता है।

उभयलिंगी संबंधों की प्रकृति बहुत जटिल है | लोगों को यह तय करने और एहसास करने में समय लग जाता है कि उनकी काम प्रवृत्ति किस तरह की है | वक्त के साथ लोगों की रूचि में बदलाव भी संभव होता है | सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'आग में गर्मी कम क्यों है ?' में शेखर के साथ भी वही होता है | एक समय के बाद उसकी यौन रूचि बदल जाती है | इन्सानों के शरीर और मन में मनोवैज्ञानिक और रासायनिक परिवर्तन से ऐसा हो जाता है । शेखर को एक समय लड़कियों में बहुत रुचि थी और उसने प्रेम विवाह किया था। लेकिन उसे पहले कभी पता नहीं चल पाया कि वह उभयलिंगी है। "अपनी इस कुण्ठा को लेकर मैं मनोविशेषज्ञ से कई बार मिल चुका हूँ। उसी की सहायता से अपने-आप को समझ पाया हूँ। मेरी शारीरिक संरचना ऐसी है कि मैं दोनों लिंगों के प्रति आकर्षित हो सकता हूँ।...कल ही तुम्हारी मुलाकात डॉ. क्रिमली वेंजोरोफ्फ जो टॉप की मनोविशेषज्ञ है, उससे करवाता हूँ, वही तुम्हारी इस शंका को दूर कर सकती है। उसी ने मेरी काउंसलिंग की है, तभी मैं जान पाया कि प्यार-मोहब्बत, समलिंग-विपरीत लिंग आकर्षण सब केमिकल्स का खेल है।...अभी नए शोध से पता चला है कि पुरुषों में भी मेनोपज होता है जिसे एनड्रोपाज कहते हैं और उनमें धीरे-धीरे शारीरिक परिवर्तन होते हैं, महिलाओं की तरह एकदम नहीं। बाई सेक्सुअल इंसान उम्र के किसी भी हिस्से में, स्त्री-पुरुष दोनों तरफ आकर्षित हो सकता है और मेरी बदकिस्मती है कि मैं बाई सेक्सुअल हूँ।"[60] जब उसने अमेरिका में जेम्ज को देखा तो उसकी रुचि बदल गयी। अपनी पत्नी को छोड़ वह जेम्ज की दुनिया में खो गया। पत्नी को इसकी खबर नहीं थी क्योंकि शेखर को डर था कि पत्नी उसके जज़्बातों को समझ नहीं पाएगी। एक दिन पत्नी उसे जेम्ज के साथ हमबिस्तर देख लेती है और उससे दूरी बना लेती है। कुछ समय बाद जेम्ज भी उसको धोखा दे देता है। शेखर इसको स्वीकार नहीं कर पाता है और आत्महत्या कर लेता है।

पुरुष समलैंगिकता, स्त्री समलैंगिकता और ट्रांसजेंडर को लेकर विमर्श अभी शुरूआती दौर में है। समलैंगिकता की प्रकृति को लेकर विमर्शकारों में बहस जारी है। मनोवैज्ञानिकों ने भले इसे प्राकृतिक बताया है लेकिन इसकी स्वाभाविकता से संबंधित कहानियों का हिन्दी साहित्य में अभाव है। जो कहानियाँ अपने शोध के लिए मुझे उपलब्ध हो पायी उसमें इस संबंध की परिकल्पना पूरी तरह से स्पष्ट नहीं है। कहानियाँ इस विमर्श की शुरूआत तो करती हैं लेकिन बहुत आगे नहीं ले जा पाती। कई बार पुरुष समलैंगिक उभयलिंगी भी होते हैं। यह एक जटिल परिस्थिति है। ऐसे जटिल संबंधों को भी और व्याख्यायित किए जाने की जरूरत है। हालाँकि सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'आग में गर्मी कम क्यों है' में इसकी एक झलक मिलती है। हिन्दी कहानी और समलैंगिक विमर्श में अभी यह किया जाना बाकी है। एलजीबीटी समुदाय का दायरा बहुत बड़ा है। इसमें सबकी परिस्थितियाँ अलग है। इसलिए जाहिर है कि उनकी समस्याएँ भी एक जैसी नहीं है। भारतीय समाज में उनका संघर्ष दोहरा है। उन्हें अपने अस्तित्व

की लड़ाई के लिए समाज के अन्दर भी जूझना पड़ रहा है और कानूनी रूप से भी। उनके आन्दोलन और साहित्यिक विमर्श की दशा और दिशा अभी बहुत स्पष्ट नहीं है। उनके अंदर भविष्य और वर्तमान का द्वंद्व भी है। जहाँ ट्रांसजेंडर को सामाजिक और कानूनी मान्यता मिल गयी है लेकिन उनको बराबरी का अधिकार नहीं मिला है। वहीँ समलैंगिकता भले अपराध की श्रेणी से बाहर हो गया है लेकिन उन्हें अन्य तमाम कानूनी अधिकार और सामाजिक स्वीकार्यता नहीं मिली है। साहित्य में और उसमें भी खास कर हिंदी कहानियों ने इस दिशा में एक विमर्श की शुरुआत जरुर की है लेकिन अभी भी इस समुदाय की आंतरिक जटिलता को और स्पष्ट किया जाना बाकी है। जब सारी जटिलता सुलझ जायेंगी तब ही विमर्श अपनी सही दिशा की और अग्रसर हो पायेगा।

संदर्भ

[1] डॉ. शैलेष गुप्त 'वीर', दस क्षणिकाएँ, अस्तित्व और पहचान, संपा. डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह, अमन प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ- 31

[2] मानोबी बंदोपाध्याय, झिमली मुखर्जी पांडे, पुरुष तन में फँसा मेरा नारी मन, अनुवाद- रचना भोला 'यामिनी', राजपाल एण्ड संज, दिल्ली, 2018, पृष्ठ-64

[3] कमल कुमार, कुकुज नैस्ट, हम भी इंसान हैं, संपा- डॉ.एम.फीरोज.खान, वांग्मय बुक्स, अलीगढ़, 2018, पृष्ठ- 3

[4]http://www.streekaal.com/2018/05/Dhananjay-The-Transgender-activist-and-student.html

[5] एस.आर.हारनोट, किन्नर कौन होते हैं?, जानकीपुल, संपा- प्रभात रंजन, 28 सितम्बर 2011, http://janakipul.blogspot.com/2011/09/blog-post_28.html

[6] महेंद्र भीष्म, किन्नर भी इंसान हैं, थर्ड जेंडर विमर्श, संपा. शरद सिंह, सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2109, पृष्ठ-45

[7] निर्मला भुराड़िया, किन्नरों की दुनिया में, थर्ड जेंडर विमर्श, संपा. शरद सिंह, सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2109, पृष्ठ-35

[8] संपा- डॉ. विजेन्द्र प्रताप सिंह और रवि कुमार गोंड, , विमर्श का तीसरा पक्ष, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृष्ठ-7

[9] मनीषा महंत से डॉ. फ़ीरोज़ और डॉ. शमीम की बातचीत, संपा-डॉ.एम.फ़ीरोज अहमद, वाङ्मय, पृष्ठ-246

[10] मनीषा महंत से डॉ. फ़ीरोज़ और डॉ. शमीम की बातचीत, संपा-डॉ.एम.फ़ीरोज अहमद, वाङ्मय, पृष्ठ-245-46

[11] हरीशचन्द्र पांडे, हिजड़े, अस्तित्व और पहचान, संपा. डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह, अमन प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ-149

[12] धारा 377 : क्यों इसका समाप्त होना ज्यादा तर्कसंगत है | सत्याग्रह, 26 अप्रैल 2019, 6.36 अपराहन https://satyagrah.scroll.in/article/119865/supreme-court-constitution-bench-section-377-decision-analysis

[13] धारा 377 : क्यों इसका समाप्त होना ज्यादा तर्कसंगत है | सत्याग्रह, 26 अप्रैल 2019, 6.36 अपराहन https://satyagrah.scroll.in/article/119865/supreme-court-constitution-bench-section-377-decision-analysis

[14]धारा 377 : क्यों इसका समाप्त होना ज्यादा तर्कसंगत है | सत्याग्रह, 26 अप्रैल 2019, 6.36 अपराहन https://satyagrah.scroll.in/article/119865/supreme-court-constitution-bench-section-377-decision-analysis

[15] मानोबी बंदोपाध्याय, झिमली मुखर्जी पांडे, पुरुष तन में फँसा मेरा नारी मन, अनुवाद- रचना भोला 'यामिनी', राजपाल एण्ड संज, दिल्ली, 2018, पृष्ठ-85

[16] लीना हाशिर, मृत्यु के बाद किन्नर का अपनी माँ को ख़त, अनुवाद-नीलम शर्मा 'अंशु', हम भी इन्सान हैं, संपादक- डॉ. एम.फिरोज खान, वांग्मय बुक, अलीगढ़, 2018, पृष्ठ-120

[17] संगीता गांधी, मैंने दुनिया जीत ली, संपा- पुरोबी ए. भण्डारी, दास्तान-ए-किन्नर, विकास प्रकाशन, कानपुर, 2018, पृष्ठ- 162

[18] डॉ. सूरज बड़त्या, कबीरन, हम भी इन्सान हैं, संपादक- डॉ. एम.फिरोज खान, वांग्मय बुक, अलीगढ़, 2018, पृष्ठ-18

[19] विजेंद्र प्रताप सिंह, संकल्प, संपा-डॉ.एम.फ़ीरोज अहमद, वाङ्मय, जनवरी-मार्च 2017,पृष्ठ-130

[20] डॉ. सूरज बड़त्या, कबीरन, हम भी इन्सान हैं, संपादक- डॉ. एम.फिरोज खान, वांग्मय बुक, अलीगढ़, 2018, पृष्ठ-17

[21] सोमा भारती, गली आगे मुड़ती है, हम भी इन्सान हैं, संपादक- डॉ. एम.फिरोज खान, वांग्मय बुक, अलीगढ़, 2018, पृष्ठ-26

[22] सोमा भारती, गली आगे मुड़ती है, हम भी इन्सान हैं, संपादक- डॉ. एम.फिरोज खान, वांग्मय बुक, अलीगढ़, 2018, पृष्ठ-28

[23] डॉ. लवलेश दत्त, बददुआ, थर्ड जेंडर की चर्चित कहानियाँ, संपा- डॉ. विमल ग्यानोबाराव सूर्यवंशी, रोशनी पब्लिकेशंस, कानपुर,2018, पृष्ठ-86

[24] प्रो.मेराज अहमद, तीसरे विमर्श की कहानियाँ, किन्नर विमर्श साहित्य के आईने में, संपा- डॉ. इकरार अहमद, वांगमय बुक्स, अलीगढ़, पृष्ठ-13
[25] शिवप्रसाद सिंह, बिंदा महराज, वांगमय, संपा- डॉ. एम.फ़ीरोज़ अहमद, अलीगढ़, जनवरी- मार्च 2017, पृष्ठ-28
[26] शिवप्रसाद सिंह, बिंदा महराज, वांगमय, संपा- डॉ. एम.फ़ीरोज़ अहमद, अलीगढ़, जनवरी- मार्च 2017, पृष्ठ-22-23
[27] राघवेन्द्र अवस्थी फेसबुक पर(8/5/2018)11.00 pm
https://www.facebook.com/raghvendra.awasthi
"कंधे पर ले जा रहा था भाई का शव, किन्नरों ने पैसे जमा कर बुलाई एम्बुलेंस" देहरादून ऑनलाइन हिंदुस्तान की खबर को शेयर करते हुए लिखा |
[28] श्रीकृष्ण सैनी, हिजड़ा, वाङ्मय, संपा- डॉ. एम.फ़ीरोज अहमद, जनवरी-मार्च 2017, अलीगढ़, पृष्ठ-126
[29] पूनम पाठक, किन्नर, संपा-डॉ.एम.फ़ीरोज अहमद, वाङ्मय, जनवरी-मार्च 2017, पृष्ठ-149
[30] किरण सिंह, संझा, वाङ्मय, संपा- डॉ. एम.फ़ीरोज अहमद, जनवरी-मार्च 2017, अलीगढ़, पृष्ठ-79
[31] डॉ. मृणालिका ओझा, एक मोड़ यह भी, संपा- पुरोबी ए. भण्डारी, दास्तान-ए-किन्नर, विकास प्रकाशन, कानपुर, 2018, पृष्ठ- 90
[32] अश्विनी कुमार आलोक, मोहब्बत वाले गाने, संपा- पुरोबी ए. भण्डारी, दास्तान-ए-किन्नर, विकास प्रकाशन, कानपुर, 2018, पृष्ठ-75
[33] अश्विनी कुमार आलोक, मोहब्बत वाले गाने, संपा- पुरोबी ए. भण्डारी, दास्तान-ए-किन्नर, विकास प्रकाशन, कानपुर, 2018, पृष्ठ-77
[34] अश्विनी कुमार आलोक, मोहब्बत वाले गाने, संपा- पुरोबी ए. भण्डारी, दास्तान-ए-किन्नर, विकास प्रकाशन, कानपुर, 2018, पृष्ठ-83
[35] अश्विनी कुमार आलोक, मोहब्बत वाले गाने, संपा- पुरोबी ए. भण्डारी, दास्तान-ए-किन्नर, विकास प्रकाशन, कानपुर, 2018, पृष्ठ-83
[36] नरेंद्र सैनी, उसका प्रेमी, अनुवाद और सम्पादन – नरेंद्र सैनी, संवाद प्रकाशन, मेरठ, पृष्ठ-7
[37] विजेंद्र प्रताप सिंह, संकल्प, संपा-डॉ.एम.फ़ीरोज अहमद, वाङ्मय, जनवरी-मार्च 2017,पृष्ठ-131
[38] विनोद कुमार दवे, पद्मश्री थर्डजेंडर, हम भी इन्सान हैं, संपादक- डॉ. एम.फिरोज खान, वांग्मय बुक, अलीगढ़, 2018, पृष्ठ-107
[39] डॉ. लता अग्रवाल, लैंगिक विकलांग, अस्तित्व और पहचान, संपा. डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह, अमन प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ-115
[40] डॉ. एम. फ़ीरोज़ खान, दो बात, हमख़्याल, संपा- डॉ. एम. फ़ीरोज़ खान, विकास प्रकाशन, कानपुर, 2018
[41] अतुल कुमार सिंह का जैनेन्द्र कुमार द्वारा 7 जुलाई 2018 को लिया गया साक्षात्कार (परिशिष्ट में शामिल)
[42] https://video-bom1-2.xx.fbcdn.net/v/t42.9040-2/50325768_2537178912989649_5213261368655872_n.mp4?_nc_cat=101&efg=eyJ2ZW5jb2RlX3RhZyI6InN2ZV9zZCJ9&_nc_ht=video-bom1-2.xx&oh=ea11f9a60b19e92ccd606edde9ada0d0&oe=5CC397A1
[43] https://video-bom1-2.xx.fbcdn.net/v/t42.9040-2/50325768_2537178912989649_5213261368655872_n.mp4?_nc_cat=101&efg=eyJ2ZW5jb2RlX3RhZyI6InN2ZV9zZCJ9&_nc_ht=video-bom1-2.xx&oh=ea11f9a60b19e92ccd606edde9ada0d0&oe=5CC397A1
[44] राजेश रंजन उर्फ पप्पू यादव, जेल, सान्निध्य बुक, दिल्ली, 2018, पृष्ठ- 37
[45] समलैंगिकता के मसले पर भिड़े बाबा-बेबी
https://aajtak.intoday.in/story/-1-15787.html
[46] समलैंगिकता का भी इलाज होता है रामदेव के चिकित्सालय में

https://hindi.thequint.com/news/india/quints-sting-on-baba-ramdevs-claim-of-treatment-of-homosexuality

[47] समलैंगिकता का भी इलाज होता है रामदेव के चिकित्सालय में
https://hindi.thequint.com/news/india/quints-sting-on-baba-ramdevs-claim-of-treatment-of-homosexuality

[48] समलैंगिकता का भी इलाज होता है रामदेव के चिकित्सालय में
https://hindi.thequint.com/news/india/quints-sting-on-baba-ramdevs-claim-of-treatment-of-homosexuality

[49] स्वाति तिवारी, 'वो जो भी है, मुझे पसंद है', हमख्याल, संपा- डॉ. एम. फ़ीरोज़ खान, विकास प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ-135

[50] नरेंद्र सैनी, एक लड़की अनजानी-सी, हमख्याल, संपा- डॉ. एम. फ़ीरोज़ खान, विकास प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ-120

[51] डॉ. लवलेश दत्त, स्पर्श, हमख्याल, संपा- डॉ. एम. फ़ीरोज़ खान, विकास प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ-123

[52] अनिलप्रभा कुमार, क़तार से कटा घर, कतार से कटा घर, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2018, पृष्ठ-28

[53] राजेन्द्र यादव, प्रतीक्षा, हमख्याल, संपा- डॉ. एम. फ़ीरोज़ खान, विकास प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ-14

[54] सूरज प्रकाश, ये जो देश है मेरा..., हमख्याल, संपा- डॉ. एम. फ़ीरोज़ खान, विकास प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ-49

[55] शाहिद अख्तर, टकला नवाब, हमख़्याल,संपा- डॉ.एम.फ़ीरोज़ खान, विकास प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ-145

[56] तारीख असलम 'तस्नीम', ओवरकोट, हमख़्याल, संपा- डॉ.एम.फ़ीरोज़ खान, विकास प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ-107

[57] अनिलप्रभा कुमार, दीवार के पार, संपा- डॉ.एम.फ़ीरोज़ खान, विकास प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ-75

[58] अनिलप्रभा कुमार, दीवार के पार, संपा- डॉ.एम.फ़ीरोज़ खान, विकास प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ-77

[59] पंकज सुबीर, अँधेरे का गणित, संपा- डॉ.एम.फ़ीरोज़ खान, विकास प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ-61

[60] सुधा ओम ढींगरा, आग में गर्मी कम क्यों है ?, हमख्याल, संपा- डॉ. एम. फ़ीरोज़ खान, विकास प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ-88

3. हिंदी कहानियों में वृद्ध जीवन

3.1 मानव जाति का विकासक्रम और वृद्ध

3.2 आधुनिकता और सामाजिक परिवर्तन के दौर में वृद्ध

3.3 भारतीय समाज में वृद्ध

3.4 हिंदी कहानियों में वृद्ध जीवन

हरेक मनुष्य को अपने जीवन में क्रमशः बाल्यावस्था, किशोरावस्था, युवावस्था, अधेड़ावस्था एवं वृद्धावस्था से गुजरना पड़ता है। यह प्रकृति का शाश्वत नियम है। इसमें वृद्धावस्था को जीवन की संध्या माना गया है। एक तरह से यह जीवन का अंतिम पड़ाव भी होता है। यह वह समय होता है जब इंसान शारीरिक और मानसिक रूप से सबसे कमजोर महसूस करता है। सभ्यता के विकासक्रम से ही वृद्ध को लेकर समाज का नजरिया अलग रहा है। आज भी वृद्धों को लेकर समाज बहुत सहज स्थिति में नहीं है। वृद्ध का जीवन एक कठिन मानवीय अवस्था है। आधुनिक समय में भी वृद्धों की स्थिति पूर्ववर्ती परिस्थितियों से बेहतर नहीं है | हालाँकि जैसे-जैसे समाज शिक्षित होता जा रहा है वैसे-वैसे वृद्धों के प्रति भी जिम्मेदार होता जा रहा है | इस मामले में अपवादों की भी कमी नहीं है | इसका एक दूसरा पक्ष यह है कि सभी जगहों पर एक सी स्थिति नहीं है | लेकिन फिर भी समाज अब खुद को बदलने की चाहत रखता है और इस दिशा में प्रयास भी कर रहा है। उनकी बेहतर जिन्दगी के प्रति समाज आज अपनी जिम्मेदारी समझता है। हिंदी कहानी में वृद्धों को लेकर हर दौर में गंभीर रचना सामने आई है | हिंदी कहानी में हर दौर के वृद्ध की समस्याओं को देखा जा सकता है | इसलिए इस अध्याय में हिंदी कहानियों की सहायता से वृद्ध जीवन के विविध पक्षों पर चर्चा होगी |

3.1 मानव जाति का विकासक्रम और वृद्ध

फ्रांस की अस्तित्ववादी चिन्तक सिमोन द बोउआर ने वृद्धों की समस्याओं पर गहराई से सोचा और लिखा है। इन्होंने उस समय इस विषय पर लिखा जब लोग इसे कोई पृथक विषय नहीं मानते थे। उन्होंने मूल रूप से फ्रेंच में 'ला विएलेस्से' लिखा जिसका पैट्रिक ओ ब्रैन ने अंग्रेजी में 'ओल्ड एज' नाम से अनुवाद किया। सिमोन द बोउआर ने अपनी पुस्तक 'ओल्ड एज' में' इस बात का जिक्र किया है कि सभी प्राणियों में वृद्धों का विशेष स्थान रहा है यहाँ तक पशुओं में भी। "गौर करने वाली बात यह है कि प्रायः हर जाति के जीवों में पुरुष का प्रमुख स्थान रहा है। जहाँ वृद्धों की मुख्य भूमिका रही, वहाँ लड़ाई-झगड़े नहीं होते थे क्योंकि वे अनुभवी और शांत होते हैं। वानर जाति के अध्ययन में यह पाया गया कि उनके बच्चे वृद्धों की करनी का अनुसरण करते हैं जबकि हमउम्र की करतूतों को अनदेखा कर देते हैं। यह भी देखा गया है कि जब कोई बंदर समझ जाता है कि नेता बूढ़ा हो गया है और उसमें अब उतनी शक्ति नहीं रह गई है कि वह अपने झुंड को संभाल सके तो वह सत्ता प्राप्त करने के लिए उस वृद्ध की हत्या कर देता। मानव जातियों के इतिहास में भी इस प्रकार की प्रवृत्ति देखी जा सकती है"|[1]

पुरानी आदिम जनजातियों में वृद्ध को लेकर दो तरह के व्यवहार देखने को मिलते हैं। कुछ प्रजातियाँ अंधविश्वासों की वजह से वृद्धों की हत्या कर देती थी तो कुछ प्रजातियाँ वृद्धों का सम्मान करती थी। दोनों परिस्थितयों में बुजुर्गों के प्रति अज्ञात भय उन्हें आतंकित करता था। "1945 में साइमंस ने 39 जातियों का एक सर्वेक्षण किया था। इन 39 जातियों में से 18 ऐसी हैं जिनमें बूढ़ों को तिरस्कृत करके उनके हाल पर छोड़ दिया जाता है |"[2] अफ्रीका के कोंगों क्षेत्र की चिटुमे जाति के लोग अपने मुख्य पुरोहित को बूढ़े होने पर मार देते हैं। उन्हें डर होता है कि वह स्वाभाविक मौत होने पर परंपरागत दैविक

शक्ति अपने साथ ले जाएगा। सूडान की डिंका जाति में वृद्ध खुद को ही जिंदा दफना दिये जाने का आदेश देते हैं। ऐसा इसलिए कि उनको भी लगता है कि उनकी स्वाभाविक मृत्यु से समस्त जाति ही खत्म हो जाएगी। फ़िजी के वृद्धों के बारे में यह मान्यता है कि वह बुढ़ापा आने से पहले ही आत्महत्या कर लेते थे क्योंकि उनको लगता है शेष आयु आगे उनके काम आएगी और वे स्थायी तौर पर बुढ़ापे से मुक्त हो जाएंगे। साइबेरिया की जनजातियों में पितृसत्तात्मक व्यवस्था है, इसलिए पिता को बहुत सारे अधिकार होते हैं। वह अपने संतान को आज्ञा न मानने पर संपत्ति से बेदखल कर सकता है। वह अपनी संतान को मारने या बेचने के लिए भी स्वतंत्र है। उसकी इस तरह की सख्ती की वजह से बुढ़ापे में उसकी हालत बहुत खराब हो जाती है। उसकी सन्तानें उन्हें ठंड और भूख में अकेला छोड़ देते हैं। वह तड़प-तड़प कर मर जाता है। इसी तरह की प्रथा जापान की 'ऐनु' जनजाति में भी है। बोलीविया के जंगलों में रहने वाली गरीब जनजाति 'सिरियोनो' अपने वृद्धों को आदर और सम्मान के साथ देखती है। जबकि गबून में रहने वाली फेंग जाति पुरुष वृद्ध को तो सम्मान देती है लेकिन महिलाओं को वहाँ कोई इज्जत नहीं है। ईसाई धर्म ग्रहण करने के बाद भी स्थिति जस की तस है। बुढ़ापे में महिलाओं को जंगल में छोड़ दिया जाता है। दक्षिण अफ्रीका की थोंगा जाति में पुरुषों का वर्चस्व है। पत्नी गुलाम की तरह काम करती है। पुरुष कई पत्नी रखने का अधिकारी होता है। यह संपन्नता का भी प्रतीक है। भारत की तरह ही महिलाएं पहले पति को खाना खिलाती है तब बच्चों को और अंत में खुद खाती है। इस समाज में वृद्धों को आदर नहीं दिया जाता। यहाँ तो पोता भी दादा को चिढ़ाता रहता है। उत्तर साइबेरिया में तो बाकायदा एक समारोह में बूढ़ों को मार दिया जाता है। यहाँ की 'चुक्ची' जाति में भी वृद्ध का बेटा या भाई गला रेत कर उसे मार देता है। दक्षिण अफ्रीका के 'होपी', 'क्रीक', 'बुशमैन' जाति के लोग वृद्ध लोगों को गाँव के बाहर एक झोपड़ी में उनकी मौत तक छोड़ देते हैं।

भारतीय समाज में भी गंगा के किनारे इस तरह की झोपड़ी में वृद्धों को छोड़ दिया जाता था। इसे गंगा यात्री कहा जाता था। बंगाली रचनाकार 'शरदचन्द्र' की रचनाओं में इस तरह के दृश्य बार-बार आते हैं। 'एस्किमो' जाति अपने बुजुर्गों को बर्फ के नीचे दफना कर मार देती है। ग्रीनलैंड के वृद्धों को जैसे ही एहसास होता है कि वे अब समाज के लिए अनुपयोगी हो गए हैं तो वे तुरंत आत्महत्या कर लेते हैं। मिस्र के दार्शनिक 'प्ताह-होटेप' ने 2500 ईस्वी पूर्व कहा था "कितना कठिन और कष्टदायक होता है बुढ़ापा- बीनाई मद्धिम, कान बहरे, शक्ति क्षीण, दिल बेचैन, मुँह से बोल बंद, कल की बात याद नहीं, हड्डियाँ चरमराती है...कितना दुर्भाग्य ले आता है बुढ़ापा।"[3] जो लोग बुढ़ापे को एक अवस्था न मानकर एक समस्या मानते थे, उन्होंने वृद्धों की हत्या को ही अंतिम विकल्प माना।

अल्यूशन टापू पर 'अल्यूट' जाति के मंगोलों का जीवन आधुनिक समाज से मिलता-जुलता है। वृद्ध, महिला और बच्चों में एक दूसरे के प्रति प्यार और सम्मान है। यह मेहनतकश जाति है। विन्निपेग के उत्तरी ओजिववे के लोगों पर यूरोपियनों का प्रभाव है। इस वजह से वहाँ वृद्धों का सम्मान बढ़ा। सब लोग मिलकर एक परिवार की तरह रहते हैं और एक दूसरे का सम्मान करते हैं। सूडान की जेन्डे, चाको,

चोरटी, मटाको, टोबा, अरोजोना इत्यादि जातियों में जादू को विशेष निगाह से देखा जाता है। यहाँ वृद्ध और बीमार लोगों के प्रति सेवा का भाव होता है। "जिन बच्चों को प्रेमपूर्वक पाला-पोसा गया, वे बड़े होने पर अपने बुजुर्गों का आदर-सम्मान करते हैं; जबकि ऐसी जातियों में वृद्धों के प्रति तिरस्कार भाव होता है जिन्होंने अपने बच्चों को तिरस्कृत किया। जिन बच्चों का जीवन भय और भूख में बीता, वे बड़े होकर आक्रामक और क्रूर निकले और अपने वृद्धों की हत्या से भी नहीं हिचकिचाए।"[4]

प्राचीन आदिवासियों के जीवन और उनकी सामाजिक संरचना के आधार पर ऐसा लगता है कि समाज में ऐसे बुजुर्गों का सम्मान होता था जो समाज के लिए उपयोगी थे। जिनको जादू आता था, जिनसे भय होता था। भविष्य की चिंता उनको मजबूर करती थी कि वृद्धों का सम्मान किया जाए। सुरक्षा की भावना वाले समाज में वृद्धों को आदर दिया जाता रहा है। "बूढ़ों का आदर उन जातियों में भी होता है जहाँ ज्ञान और जादू का घालमेल है। यहाँ भय के कारण वृद्धों का आदर होता है ताकि उनकी संपत्ति का लाभ मिले या फिर मरने के बाद वे भूतप्रेत बनकर जाति को हानि न पहुँचाएँ। इसे हृदय से किया सम्मान नहीं बल्कि स्वार्थपूर्ण ही माना जाएगा "[5]

आधुनिक समाज में जादू-टोना का प्रभाव कम हो गया है। लोग शिक्षित हो गए हैं। वृद्धों के सम्मान की वजह बदल गयी है। जैसे हिमालय की 'लेपचा' जाति शिक्षित हो गयी है। वे लामावाद के प्रति आस्था रखते हैं। वे लोग बच्चों की परवरिश अच्छे से करते हैं और बड़े-बुजुर्गों का सम्मान भी करते हैं। बाली एक धार्मिक देश है। उस पर भारत, चीन और जावा का प्रभाव अधिक है। वहाँ एक पुरानी लोककथा है "बहुत समय पहले एक पहाड़ी गाँव में यह प्रथा थी कि रोज एक वृद्ध की बलि दी जाती थी। अंत में स्थिति यह हो गयी कि कोई वृद्ध ही नहीं बचा। उन्हें कठिनाई का सामना उस समय करना पड़ा जब सभागृह के लिए लकड़ी काटी गई। सभी युवा थे और वे यह नहीं बता पा रहे थे कि पेड़ का ऊपरी भाग कौन सा है और निचला कौन सा! तब एक युवक ने इस समस्या का समाधान इस शर्त पर देने का वादा लिया कि भविष्य में किसी वृद्ध की बलि नहीं दी जाएगी। सब ने हामी भरी तो युवक एक वृद्ध को ले आया जिसे उसने छुपा कर रखा था। कहते हैं कि उस रोज से बूढ़ों को आदर से देखा जाने लगा।"[6]

3.2 आधुनिकता और सामाजिक परिवर्तन के दौर में वृद्ध

21वीं सदी का समाज बाकी सदी की तुलना में विविध प्रकार की समस्याओं से जूझ रहा है। तकनीक की वजह से मानव श्रम का जोर कम हुआ है। समाज के मूल्यों में परिवर्तन हुआ है। आपा-धापी बढ़ी है। कम मेहनत में ज्यादा पा लेने की शाश्वत मानवीय इच्छा और बढ़ी है। उपयोगितावाद हावी हुआ है। जब से 'पूंजीवाद का प्रकोप' इस समाज में बढ़ा है तब से शहरीकरण की गति भी तेज हुई है। यही समय है जब भारत के समाज में संयुक्त परिवार के टूटने की गति तेज हो गयी और एकल परिवार बनते चले गए। शहर में महंगाई बढ़ी, भागदौड़ बढ़ी। पति-पत्नी दोनों घर से बाहर निकलकर नौकरी करने लगे ताकि

शहर की जरूरतों के साथ तालमेल बैठाने के लिए आर्थिक रूप से सक्षम हुआ जा सके। पूरा वातावरण प्रतिस्पर्धा का बन गया। इस पूरी प्रक्रिया में सबसे ज्यादा वृद्ध प्रभावित रहे। वे अनुपयोगी थे। जो व्यवस्था बन रही थी उसमें अनुपयोगी लोगों की कोई जगह नहीं थी। घर के एकांत में उनकी सेवा टहल के लिए कोई नहीं था। बच्चे स्कूल में और उनके माँ-बाप ऑफिस में रहने लगे। वृद्ध सिमटकर एक कोने में रह गए ।

भारत का समाज एक साथ परम्परा और आधुनिकता दोनों के द्वंद्व में जी रहा है । एक तरफ हमारा समाज बाजारवाद के चंगुल में है और पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव बहुत तेजी से भारतीय समाज पर पड़ रहा है। वहीं दूसरी तरफ भारतीय समाज को अपनी परम्परा से भी अगाध मोह है । पश्चिमी देशों में वहाँ की जीवनशैली को ध्यान में रख कर वहाँ की सरकारों ने वृद्धों के कल्याण के लिए विशेष काम किए। उनके लिए परिवार से अलग एक व्यवस्था कायम करने की कोशिश की, जो सरकार के नियंत्रण में थी। जबकि भारतीय समाज ने वृद्धाश्रम को सहज रूप से स्वीकार नहीं किया। भले ही वृद्धों की परिवार में कद्र नहीं हो रही हो, उनको सही समय पर स्वास्थ्य सुविधा न मिल रही हो लेकिन तब भी लोग अपने बुजुर्ग को वृद्धाश्रम में भेजने से परहेज करते हैं। यहाँ के समाज में बुजुर्ग को वृद्धाश्रम में भेजना गलत माना जाता है। भारत में यह नैतिकता से जुड़ा मामला होता है|

कन्फ़्यूशियस और प्लेटो ने बुजुर्गों की सेवा और उसके आज्ञा पालन पर ज़ोर दिया जबकि अरस्तू ने उन्हें सत्ता से बाहर कर दिए जाने की बात की। रोम के इतिहास से पता चलता है कि रोम की सीनेट में वृद्धों का आदर होता था। समाज और परिवार में उसकी महत्ता थी। युद्ध की परिस्थिति उत्पन्न होने के बाद स्वाभाविक तौर पर नेतृत्व युवाओं के हाथ में आ गया और वृद्ध हाशिये पर चले गए। रोम में वृद्धों को पानी में डूबाकर मारने का भी रिवाज था। दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दी में इंग्लैंड में अराजकता की वजह से लोग शहर छोड़ कर गाँव की तरफ पलायन कर गए। इस भाग-दौड़ में बुजुर्ग पिछड़ गए और हाशिये पर चले गए। युवाओं ने सब कुछ अपने कब्जे में ले लिया। उनका अधिकार और क्षेत्र एक कमरे तक सीमित कर दिया गया। निराश्रित बुजुर्ग को सामाजिक सहायता देकर उनका संरक्षण किया गया। सत्रहवीं शताब्दी में इंग्लैंड की रानी एलिजाबेथ ने वृद्धों के लिए वृद्धाश्रम और अस्पताल बनवाया। सरकारी स्तर पर कानून बना कर उनकी देखभाल की ज़िम्मेदारी सुनिश्चित की। उन्नीसवीं शताब्दी में फ्रांस ने भी वृद्धों के लिए अलग से एक संस्था 'होस्पाइस द मोंट्रिशार्ड' बनाया। लोगों का अपने बुजुर्गों के प्रति ऐसा ख़राब रवैया रहा कि उन्होंने उनको बिना कपड़ों के ही वहाँ भेज दिया। सरकार ने जब कानून बनाया कि माता-पिता ने जिस संतान को संपत्ति दी है उसे एक वार्षिक राशि उनको देनी होगी। संतानों ने इससे बचने के लिए अपने बुजुर्गों की हत्या शुरू कर दी। बीसवीं शताब्दी में शहरीकरण का प्रभाव इतना बढ़ गया कि संयुक्त परिवार टूटने लगा। उसके बदले छोटे-छोटे परिवार का प्रचलन बढ़ा। बूढ़े इस बदलाव में भी उपेक्षित ही रहे। हाँ, इतना जरूर हुआ कि उनकी हत्या बंद होने लगी। लेकिन उनको उनके हाल पर ही छोड़ दिया जाने लगा। संयुक्त परिवार से लेकर 'लिव इन रिलेशनशिप' तक की यात्रा

ने रिश्तों के लिए तो नए दरवाजे खोले लेकिन बुजर्गों के लिए बहुत से दरवाजे बंद कर दिए। जिस तेजी से समाज और खासकर उसका युवा वर्ग बदला उस तेजी के साथ सामंजस्य बिठाना बुजुर्गों के लिए मुश्किल हो गया। "बुढ़ापे का जीवन कष्टदायी और अर्थहीन लगता है और इसलिए वह मरने की कामना करता है। एक बूढ़ा प्रेमी यौन जीवन भी नहीं जी सकता है, तो फिर कैसे वह प्रसन्न रह सकता है और क्यों वह मृत्यु की कामना नहीं करेगा।"[7]

जो अपना जीवन अपना सारा समय परिवार और समाज के लिए समर्पित कर देते हैं लेकिन एक वक्त के बाद वह कुछ भी कर सकने में असमर्थ हो जाते हैं। समस्याओं की शुरुआत वही से होती है। इस पूंजीवाद के दौर में आदमी का अनुपयोगी हो जाना सबसे बड़ा संकट है। बाजार में वही बना रह सकता है जो बाजार को कुछ दे सकता है, बिक सकता है। वृद्ध यहीं पर बाजार के लिए अनुपयोगी हो जाते हैं। बाजार का प्रभाव इतना है कि समाज और परिवार में भी उनकी पकड़ खत्म होती चली जाती है। इसके अलावा वृद्धों का नयी पीढ़ी से टकराव भी एक महत्वपूर्ण बिंदु है। वैसे दो पीढ़ियों के बीच होने वाले स्वाभाविक अंतर (जेनरेशन गैप) की वजह से कई बार विचार बिलकुल अलग होते हैं लेकिन ऐसा भी नहीं है कि यह अंतर कोई पहली बार आया है। दो पीढ़ियों का टकराव मानव विकास के सामानांतर चलता रहा है। वृद्ध अपने विचारों और अधिकारों के प्रति सचेत रहता है जबकि युवा पीढ़ी उनके विचारों को गंभीरता से लेना बंद कर देती है। चूँकि आर्थिक सत्ता युवाओं के हाथ में होती है इसलिए नियंत्रण भी उसके हाथ में ही आ जाता है। इसमें वृद्धों के लिए चुनौतियाँ लगातार बढ़ती जाती हैं।

सिमोन द बोउआर ने 'द ओल्ड एज' में पश्चिमी समाज में वृद्धाश्रम की संकल्पना पर गहराई से शोधपूर्वक लिखा है। उसने वृद्धाश्रम की वकालत तो की लेकिन उनकी नजर में यह वृद्धों के लिए बहुत उपयोगी साबित नहीं हुआ। इंग्लैंड में स्वस्थ वृद्धों की देखभाल परिवार करता था। जो वृद्ध बीमार होते थे उनको अस्पताल भेजा जाता था और बाकी बचे असक्षम वृद्धों को वृद्धाश्रम में रखा जाता था। अमेरिका ने भी यही नीति अपनाई। "आजकल अमेरिका और फ्रांस जैसे देशों में भी वृद्धों का आवास एक व्यवसाय बन गया है। नर्सिंग होम, रेस्ट हाउस, रेसिडेंसी, विलेज जैसे नामों से अनेक संस्थान खुल गए हैं जहाँ वृद्धों को पैसा लेकर रखा जाता है। यहाँ आकर ये वृद्ध ठगा महसूस करते हैं। पहले तो रंगीन ख़्वाब दिखा कर उनकी जमा पूँजी ऐंठ ली जाती है। फिर कुछ समय की सुख-सुविधाओं के बाद ऐसा दौर शुरू होता है जिसमें वृद्ध अपमानित महसूस करने लगता है। उसका जीर्ण शरीर और थका मस्तिष्क इस आघात को सहन नहीं कर पाता है। धीरे-धीरे वह निराशा की मानसिकता में चला जाता है और मौत की प्रतीक्षा करता रहता है। जैसे ही वह मरा नहीं कि दूसरा वृद्ध इस रिक्त स्थान को भर देता है। इस प्रकार, वृद्धों की सेवा के नाम पर ये संस्थाएँ उन्हें मृत्यु के अधिक निकट ला खड़ा करती हैं।"[8] वैसे इस तरह की संस्थाओं को सरकारी सहायता भी मिली लेकिन शिकायत मिलने पर 1895 ईस्वी में सहायता बंद कर दी गयी। इसके बदले सरकार ने खुद वृद्धों के लिए सहायता गृह खोले लेकिन वृद्धों की समस्याएँ कम नहीं हुई।

एक वृद्ध के लिहाज से भी गाँव की जीवन प्रणाली शहर से बिल्कुल अलग होती है। वृद्ध परिवार का मुखिया होता है। जमीन का वह स्वभाविक स्वामी होता है। जमीन ही ग्रामीण जीवन का मूल आधार होता है इसलिए वृद्ध की प्रासंगिकता अंतिम समय तक होती है। जमीन का मालिकाना हक़ और उसका आर्थिक रूप से सक्षम होना उसको उपेक्षित होने से बचाता है। शहर में जमीन जीवन का आधार नहीं होता। जीवन जीने के बहुत सारे विकल्प होते हैं। आदमी अपनी हर महत्वकांक्षा पूरी करने की कोशिश में मशीन बन जाता है। शहर में स्त्रियाँ भी कामकाजी होती है इसलिए वृद्धों की देख-रेख के लिए घर में कोई नहीं बचता। एक कामकाजी दंपत्ति के पास अपने बच्चों के लिए ही समय नहीं होता तो वो अपने बुजुर्गों के लिए कहाँ से समय निकालेंगे ? दंपत्ति किसी भी मामले में वृद्धों पर निर्भर नहीं होते। यहाँ तक कि बच्चे पालने के लिए भी बेबी केयर सेंटर का विकल्प उनके पास होता है। इसलिए इस भौतिकवादी समय की दृष्टि से वृद्ध हर तरफ से उनके लिए अनुपयोगी हो जाते हैं। शहर में नौकरी के बाद वृद्धों की जिन्दगी अचानक बदल जाती है। व्यवस्थित चल रहा जीवन झटके में ठहर जाता है। उनका संपर्क-सूत्र सीमित हो जाता है। घर के अन्दर उनके बच्चों का प्रभाव बढ़ता चला जाता है। जहाँ एक समय उनको केंद्र में रख कर निर्णय लिए जाते थे, अब वहाँ उनका दिशा निर्देश प्रभावी नहीं रह जाता है। घर का नेतृत्व स्वभाविक रूप से नई पीढ़ी के हाथों में हस्तांतरित हो जाता है। "घर का ड्राइंग रूम सिर्फ युवा वर्ग के मिलने वाले यार दोस्तों के बैठने की जगह में बदल जाता है। अब उसके (वृद्धों) मिलने वाले वहाँ नहीं बैठाए जाते। ढालान, बरामदा या बाहर ही बैठाकर उपेक्षा की जाती है। कई बार तो वे चाय के प्याले से भी उपेक्षित हो जाते हैं। उपेक्षा व तिरस्कार का यह सिलसिला इतना बढ़ जाता है कि उन्हें जीवन की अपाहिजता का अहसास करवाने लगता है।"[9] जीवन के अंतिम समय में वृद्ध अपने अन्दर के अनुभवों के जरिये अपनी महत्ता जताना चाहता है लेकिन नई पीढ़ी समय की कमी की वजह से उनके लिए यह अवसर उपलब्ध नहीं करा पाती। ऐसे समय में वृद्ध चारों तरफ से हताशा का अनुभव करता है। "बहुत बार यह निराशा इतनी अधिक बढ़ जाती है कि वृद्ध लोग आत्महत्या तक का निर्णय ले लेते हैं। यह आत्मघाती प्रवृति इस कारण भी उभरती है, क्योंकि उनका शरीर काम नहीं करता और वे दवाइयों पर निर्भर हो जाते हैं उन्हें तरह-तरह की बीमारियाँ जकड़ लेती हैं और ये बीमारियाँ उनके मनोबल को भी इतना गिरा देती हैं कि जीने का उत्साह उनके भीतर मंद पड़ने लगता है। उन्हें स्वयं अपने ऊपर दया आने लगती है और लगने लगता है कि ऐसे जीवन से तो मृत्यु ही अधिक अच्छी है। इस प्रकार वृद्धावस्था अपने साथ निराशा, चिड़चिड़ापन तथा आत्मघाती प्रवृति साथ लाती है।"[10]

3.3 भारतीय समाज में वृद्ध

भारतीय संस्कृति में जीवन को ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम और संन्यास आश्रम में विभाजित किया गया है। इस व्यवस्था में लगभग पचास साल की आयु के बाद वृद्ध घर का त्याग कर देते थे। वे परिवार से अपना मोह त्याग कर, अपने वारिसों को सब कुछ सौंप परिवार से दूर हो जाते थे। वानप्रस्थ अवस्था में पचास साल की उम्र के बाद बुजुर्ग परिवार से अलग होकर सामाजिक

कार्यों में स्वयं को शामिल कर लेते थे । इस प्रकार वह बुढ़ापे में अपनी नयी पीढ़ी के साथ किसी भी तरह की टकराहट से बच जाते थे। वर्तमान समय में चिकित्सा सुविधा की वजह से लोगों की औसत उम्र बढ़ रही है। लेकिन हमारे पास एक खास उम्र के बाद जीवन जीने का प्रबंधन नहीं है। इस वजह से शहरों में वृद्ध अकेले पड़ते जा रहे हैं। पुरानी परंपरा के वानप्रस्थ अवस्था की तरह आज भी बुजुर्गों को एक समय के बाद जीने के तरीके बदलने होंगे। परिवार की संरचना जिस तरह से बदल रही है उस दशा में बुजुर्गों को भी अपनी भूमिका नए सिरे से परिभाषित करनी होगी।

हमारे समाज में अक्सर लम्बी उम्र की कामना की जाती है। लोग 100-1000 साल जीने की कामना करते हैं। बुढ़ापे में यह कामना उल्टी पड़ जाती है। कई बार यह देखा गया है कि जिनकी उम्र जितनी लम्बी होती जाती है उनके लिए जीवन जीना उतना ही कठिन होता चला जाता है। समय के साथ सारे परिजन छूटते चले जाते हैं और आदमी अकेला हो जाता है। अकेलापन का यह गम आदमी को अवसादग्रस्त कर देता है। समय के साथ भारत में वृद्धों की औसत आयु तो बढ़ती गयी लेकिन उसके साथ समस्याएँ भी बढ़ती गयी। "भारत में 1947 में औसत आयु मात्र 29 वर्ष थी, जो अब बढ़कर 63 वर्ष हो गयी है। माना जा रहा था कि वर्ष 2005 में विश्व की जनसंख्या लगभग 1351.80 करोड़ हो जाएगी, जिसमें 60 वर्ष से अधिक उम्र के लोगों की संख्या 168.50 करोड़ होगी। यह पूरी आबादी का 12.5 प्रतिशत होगा। वर्ष 2050 में यह अनुपात स्वभावतः कहीं अधिक होगा। जनसंख्या विशेषज्ञ बताते हैं कि उक्त वर्ष विश्व की आबादी 1572 करोड़ हो जाएगी, जिसमें 60 वर्ष से अधिक आयु के लोगों की संख्या 324.30 करोड़ हो जाएगी, जो कुल जनसंख्या का 20.6 प्रतिशत होगा। मतलब हर 5 व्यक्तियों में एक व्यक्ति 60 से अधिक आयु का होगा। अपने देश भारत के सन्दर्भ में देखें, तो यहाँ 1951 में 60 वर्ष से अधिक उम्र वालों की संख्या लगभग 2 करोड़ थी, जो 2001 की जनसंख्या में 7.60 करोड़ तक पहुँच गयी। 2013 तक यह संख्या 10 करोड़ हो जाने की सम्भावना है। यही संख्या 2025 में 17.30 करोड़ के पार चली जाएगी, तो 2030 तक यह संख्या 20 करोड़ तक पहुँच सकती है।"[11]

समय-समय पर सरकार भी वृद्धों के लिए कई योजनाएं लेकर आती है। 01 अप्रैल 2017 को केन्द्रीय सामाजिक अधिकारिता एवं न्याय मंत्री थावरचंद गहलोत ने आंध्रप्रदेश के नेल्लोर में 'राष्ट्रीय वयोश्री योजना' की शुरुआत की। इसमें बुजुर्गों को चलने की छड़ियाँ, कोहनी बैसाखियाँ, वाकर/ वैसाखी, तिपाई/क्वाडपोड, सुनने की मशीन, पहिए वाली कुर्सी(व्हीलचेयर), कृत्रिम दांत एवं जबड़ा और चश्मा जैसे जीवन सहायक उपकरण मुफ्त में देने का प्रावधान किया गया है। मंत्री थावरचंद गहलोत ने कहा कि "गरीब बुजुर्गों को सुखमय जीवन जीने के लिए केंद्र सरकार ने इस योजना की शुरुआत की है। हरियाणा के छह जिलों में इस योजना की शुरुआत की जा रही है। पहले चरण में प्रत्येक जिले में 2000 बुजुर्गों को योजना का लाभ देने का लक्ष्य है।"[12] इस योजना में एक बात खास तौर पर रेखांकित करने वाली है। इसमें प्रावधान है कि अगर किसी व्यक्ति में अनेक विकलांगता-दुर्बलता है तो उसे प्रत्येक विकलांगता-दुर्बलता के लिए अलग- अलग उपकरण दिए जायेंगे। इसी तरह बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश

कुमार ने 14 जून 2019 से बिहार में 60 साल की आयु से अधिक सभी व्यक्तियों को पेंशन देने की शुरूआत की |

आधुनिक समय में नौकरी और करियर की तलाश ने नयी पीढ़ी को अपने बुजुर्गों से दूर कर दिया है। संसाधनों पर पूरी तरह से बड़े शहरों का कब्ज़ा है इसलिए बेहतर जिन्दगी की तलाश के लिए बड़ी संख्या में लोगों का पलायन होता है। छोटे शहरों में मजदूरों तक के लिए सम्मानजनक काम नहीं है। इसलिए युवा और वृद्ध दोनों तरह के श्रमिकों के सामने पलायन ही अंतिम विकल्प है। "बिहार के सासाराम के एक बुजुर्ग अपनी व्यथा को कुछ यूँ व्यक्त करते हैं- औलाद नहीं पढ़ी तो दुःख, और ज्यादा पढ़ गयी तो भी दुःख। नहीं पढ़ी तो उसकी जिन्दगी कैसे गुजरेगी, उसका दुःख सताता है और ज्यादा पढ़ जाती है तो साथ नहीं रह पाती |"[13]

आधुनिक समय में तकनीकी विकास तीव्र गति से हो रहा है। इस तेजी में ज्ञान के पुराने साधन की उपयोगिता सीमित होती जा रही है। ज्ञान और सूचनाओं के विस्फोट में वृद्धों का पुराना अनुभव फीका पड़ता जा रहा है। इसलिए उपयोगिता पर आधारित समाज में वृद्धों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण नहीं रह गयी है। कई बार खुद वृद्ध के लिए अपना जीवन भी बोझ प्रतीत होने लगता है। वैसे शहर में रहने वाले वृद्धों की स्थिति अलग है। खास कर जो लोग अच्छी नौकरी से सेवानिवृत्त हैं। इस श्रेणी के बुजुर्ग जिनके बच्चे बाहर हैं उन्होंने मन बहलाने के नए उपाय ढूँढ लिए हैं। बुजुर्गों की इस पीढ़ी ने बदलाव को स्वीकार कर लिया है। इसी विषय पर अवधेश प्रीत ने हिंदुस्तान अखबार में 11 मार्च 2018 को 'फुरसत' के पृष्ठ नं- 1 पर प्रकाशित एक लेख लिखा 'उम्र के चढ़ाव का उतार देखते रहे'। इस लेख में प्रीत जी ने बताया कि कैसे दो प्रोफ़ेसर दंपत्ति सेवानिवृत होने के बाद अपनी बाकी की जिन्दगी गुजारते हैं। दोनों के बच्चे विदेश में रह रहे हैं। पत्नी अपने विद्यार्थी से जुड़ी हैं और उनक घर आना जाना लगा रहता है। जबकि पति नौकरी के दिनों से गरीब बच्चों को ट्यूशन देते हैं। इससे उनका भी उन बच्चों और उनके माता-पिता से सम्बन्ध बना रहता है, जो अकेलापन दूर करने में सहायक होता है । साथ ही उन्होंने व्हाट्सएप और फेसबुक चलाना भी सीख लिया है, जिससे अपने बच्चों से सीधा संपर्क हो गया है। "जरावैज्ञानिक (जेरेंटोलोजिस्ट) इस बात पर एक मत हैं कि जीवन के अंतिम बीस वर्षों में स्वस्थ व्यक्ति भी मानसिक एवं सामाजिक दृष्टि से असहज हो जाता है जबकि कोई व्यस्ता नहीं रहती। उसे जीने का उद्देश्य ही दिखाई नहीं देता और यह परिस्थिति मृत्यु से अधिक कष्टदायी दिखाई देती है । इसलिए जरावैज्ञानिकों का मानना है कि सेवानिवृति के बाद भी व्यक्ति को व्यस्त रहना चाहिए अन्यथा वह आलस्य व उदासी के घेरे में आ जाएगा और उसका स्वास्थ्य गिरता जाएगा |"[14]

वृद्धावस्था में एक पुरुष के लिए भारतीय समाज में जीना स्त्रियों की अपेक्षा ज्यादा चुनौतीपूर्ण है। पुरुष के जीवन में जीविका के साधनों से सेवानिवृति की अवस्था भी आती है। सेवानिवृति के बाद पुरुष की जिन्दगी बदल जाती है। घर-परिवार चलाने की जिम्मेदारी अगली पीढ़ी के हाथों में आ जाती है। पारिवारिक सत्ता का हस्तांतरण हो जाता है। ऐसे समय में पुरुष पूरी तरह से अकेले पड़ जाते हैं। उनके

अन्दर की उर्जा भी सीमित हो चुकी होती है। लेकिन एक स्त्री के उत्तरदायित्व में कोई विशेष बदलाव नहीं आता। बेटे-बहू के घर में भी उसकी भूमिका परिवर्तित नहीं होती। पहले उसका पति घर का मालिक होता था तो बाद में यही भूमिका उसका पुत्र निभाता है। पुरुष अपने लिए बदलाव के साथ नए दायित्व को स्वीकारने में सहज नहीं होता जबकि उसकी पत्नी पारिवारिक व्यवस्था के प्रति इतनी सहज हो चुकी होती है कि बहुत आसनी से नए बदलाव, नई चुनौतियों और नए दायित्व के साथ तालमेल बैठा लेती है। पुरुष परिवार और पत्नी दोनों से उपेक्षित हो जाता है। "यहाँ तक कि अब पत्नी द्वारा भी उसे उपेक्षा का सामना करना पड़ता है, क्योंकि पत्नी भी आर्थिक रूप से बच्चों पर निर्भर होती है और वह बच्चों द्वारा प्रदत्त सुविधाओं को छोड़ना नहीं चाहती। इस प्रकार एक पुरुष इस अवस्था में अपनी पत्नी की तुलना में अधिक एकाकीपन का अनुभव करता है।"[15] सेवानिवृति से पहले पुरुष की उपस्थिति घर में कम होती है लेकिन सेवानिवृति के बाद वह लगातर घर में रहता है। उसकी दिन भर की उपस्थिति पत्नी के लिए कई बार ऊब का कारण बन जाती है। वह उसके प्रति बेपरवाह होने लगती है। पत्नी को पति की अत्यधिक उपस्थिति से सामंजस्य बिठाने का अभ्यास नहीं होता है। ठीक इसी स्थिति को लेकर उषा प्रियंवदा ने एक कहानी लिखी है 'वापसी'। इस कहानी में गजाधर बाबू अपना पूरा जीवन अपने बच्चों के बेहतर जीवन के लिए रेलवे में नौकरी करते हुए एक छोटे से क्वाटर में गुजार देते हैं। लेकिन जब वे सेवानिवृति के बाद अपने घर वापस लौटते हैं तब कोई भी उनकी उपस्थिति से खुश नहीं है। सबके लिए वह एक अवांछित तत्त्व से बन जाते हैं। यहाँ तक कि उनकी पत्नी भी उनका साहचर्य स्वीकार नहीं कर पाती है। परिवार में उनकी कोई भी भूमिका स्वीकार नहीं की जाती। निराश होकर गजाधर बाबू एक पुराने चीनी मील में नौकरी की तलाश में निकल पड़ते हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों के वृद्धों की स्थिति शहरी वृद्धों की अपेक्षा बेहतर होती है। गाँव की सामाजिक संरचना में वृद्धों के लिए अपने घर के बाहर भी समय काटने के बहुत सारे साधन उपलब्ध होते हैं। वहाँ आज भी परिवार घर के अंतर सीमित नहीं है। घर एक खुली जगह जैसी होती है। जहाँ सारे घर एक दूसरे से जुड़े होते हैं। संरचना ही ऐसी होती है कि सबलोग एक दूसरे से मुखातिब होते रहते हैं। शहर में यही संरचना निजी हो जाती है। जहाँ बिना सहमति के लोग एक दूसरे के जीवन में दखल नहीं देते हैं। इसलिए ग्रामीण वृद्ध अकेलपन की समस्या से कुछ हद तक बच जाते हैं।

आजकल की युवा पीढ़ी और बदलते समाज पर यह आरोप लगातार लगाया जाता है कि इसमें वृद्धों को वह सम्मान नहीं मिल रहा है जो मिलना चाहिए। लोग वृद्धों को लेकर संवेदनशील नहीं है। पश्चिमी सभ्यता का असर भारतीय समाज पर भी पड़ गया है। मूल्यों का पतन हो गया है। आदि आदि। यह आरोप लगाना बहुत आसान है और कई अर्थों में इस तरह के आरोप निराधार नहीं है। लेकिन इस बदलाव को समझने के लिए हमें इस बदलाव के कारकों पर गौर करना होगा। यह बात बिल्कुल सही है कि भारतीय समाज पर पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव है परन्तु इस प्रभाव से भारतीय जीवन में बहुत सारे सकारात्मक बदलाव भी आए हैं।

पूंजीवाद के आगमन के बाद भारतीय समाज की संरचना भी पूर्ववत नहीं रही। संयुक्त परिवार बिखर गया और उसका स्थान एकल परिवार ने ले लिया। इस प्रक्रिया में वृद्धों को सामंजस्य बैठाने में सबसे ज्यादा दिक्कत हुई। संयुक्त परिवार को वृद्धों के अनुकूल माना जाता था। परिवार में संतति की संख्या ज्यादा होने की वजह से बुजुर्गों की देख-भाल अच्छी प्रकार हो जाती थी और उनका समय भी आसानी से व्यतीत हो जाता था। बदलाव के बाद परिवार में बच्चे सीमित हो गए और बच्चों की निर्भरता भी बुजुर्गों के प्रति घट गयी। आज शहरों में बच्चे स्कूल के बाद भी नृत्य, तैराकी , योग इत्यादि की कक्षाएँ अलग से लेते हैं इसलिए उनके पास भी किसी के लिए समय नहीं होता। लगातर बदल रही तकनीक और नए उपकरणों से बिल्कुल अनभिज्ञ होने के कारण बच्चों को आकर्षित करने की कोई वजह उनके पास नहीं होती। आजकल के बच्चे पुरानी दादी-नानी की कहानियाँ भी अपने दादा-नाना के बजाय यूट्यूब और नेटफ्लिक्स पर देखना पसंद करते हैं।

पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी के बीच बढ़ते इस दूरी को स्वीकार करना होगा। इसलिए सब बड़े शहरों में 'बुजुर्ग क्लब' बनने लगे हैं जहाँ एक जैसे विचार और अवस्था वाले लोग इकठ्ठा होते हैं। बुजुर्गों की एक अलग दुनिया होती है जिसे उनके हम-उम्र ज्यादा बेहतर तरीके से समझ सकते हैं। बच्चों के लिए जिस तरीके से हमने केयर सेंटर को स्वीकार कर लिया है, उसी तरह बड़े स्तर पर हमें वृद्धों के सम्पूर्ण जीवन का प्रबंधन करने के नए रास्ते ढूंढने होंगे और उन्हें स्वीकार करने होंगे। आज भले वृद्धाश्रम के रूप में उनका विकल्प है लेकिन वह असक्षम साबित हो रहा है । वृद्धाश्रम को लेकर भारतीय लोग नकारात्मक विचार रखते हैं। इसकी वजह यह है कि वृद्धाश्रम का वर्तमान स्वरूप वृद्धों की हालत को सुधारने में सक्षम साबित नहीं हो पा रहा है। इनके लिए विकल्प तलाशने की अभी भी जरुरत है। हालाँकि पत्रकार रवीश कुमार ने एनडीटीवी पर वृद्धों को लेकर एक कार्यक्रम किया था जिसमें उन्होंने वृद्धाश्रम में रह रहे बुजुर्गों से बात की थी। अधिकतर बुजुर्गों ने यह माना कि यहाँ यानि वृद्धाश्रम में उनकी ज्यादा अच्छे से देखभाल की जाती है और सही समय पर खाना भी मिलता है। जबकि उन्हें घर पर उपेक्षित किया जाता था और उनके साथ मारपीट की जाती थी।

भारत में भी वृद्धों के बेहतर जीवन को संरक्षित करने के लिए कठोर कानून बनाए गए हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 24 की सूची 3 एवं धारा 6 में वृद्ध लोगों के अधिकारों की चर्चा है। इसमें कार्य की दशाओं, भविष्यनिधि, अशक्तता तथा वृद्धावस्था पेंशन का भी जिक्र है। इसके अतिरिक्त राजसूची के मद संख्या 9 एवं समवर्ती सूची की मद संख्या 20, 23 एवं 24 में पेंशन, सामाजिक सुरक्षा तथा सामाजिक बीमा के अधिकार दिए गए हैं। राज्य के नीति-निदेशक सिद्धांत के अनुच्छेद 41 के अनुसार राज्य अपनी आर्थिक क्षमता एवं विकास की सीमाओं के भीतर वृद्धजनों के रोजगार, शिक्षा, बीमारी एवं विकलांगता की स्थिति में सार्वजनिक सहायता के अधिकार को सुरक्षित करेगा एवं इसके लिए कारगर प्रावधान बनाएगा। माता-पिता की देखभाल करना हर व्यक्ति की नैतिक जिम्मेदारी है किंतु विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं में इसके लिए अलग-अलग जिम्मेदारियां कानून ने निर्धारित की हैं

। भारतीय संसद ने 'अभिभावक और वरिष्ठ नागरिक देखभाल व कल्याण विधेयक-2007' के द्वारा भी बुजुर्गों की देखभाल न करने पर 3 मास तक कैद का प्रावधान किया है तथा इसके विरुद्ध अपील भी नहीं की जा सकती है। 11 जून 2019 को बिहार सरकार ने भी माता-पिता की देखभाल नहीं करने पर जेल की सजा दिए जाने का प्रावधान किया है। आपराधिक प्रक्रिया संहिता 1973 एक धर्मनिरपेक्ष कानून है तथा ये सभी धर्मों एवं समुदायों पर लागू होता है। इस संहिता के तहत धारा 125 (1) में प्रावधान है कि जो माता-पिता अपने भरण-पोषण में असमर्थ हैं, यदि उनके पुत्र या पुत्रियां उनके भरण-पोषण से इंकार करते हैं तो प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट उस व्यक्ति को अपने माता-पिता के भरण-पोषण के इंकार के प्रमाण के आधार पर मासिक भत्ता देने के आदेश दे सकता है।

3.4 हिंदी कहानियों में वृद्ध जीवन

हिंदी कहानियों ने समाज में वृद्धों की विविध समस्या को बारीकी से उकेरा है। समाज में जैसे-जैसे बदलाव हुए उसका असर हिंदी कहानी पर भी पड़ा। प्रेमचंद से पहले माधवराव सप्रे की कहानी 'टोकरी भर मिट्टी' सहित कुछ अन्य कहानियों में भी वृद्ध जीवन आया है। हिंदी कहानी का उत्कर्ष रूप प्रेमचंद युग की रचनाओं में देखा जा सकता है। 'बूढ़ी काकी' जैसी कहानी में वृद्धावस्था के बदलाव और उसकी परिस्थिति का प्रेमचंद ने बहुत जीवंत वर्णन किया है। "बूढ़ी काकी में जिह्वा-स्वाद के सिवा और कोई चेष्टा शेष न थीं और न अपने कष्टों की ओर आकर्षित करने का रोने के अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा ही। समस्त इन्द्रियाँ, नेत्र, हाथ और पैर जवाब दे चुके थे। पृथ्वी पर पड़ी रहतीं और घरवाले कोई बात उनकी इच्छा के प्रतिकूल करते, भोजन का समय टल जाता या उसका परिणाम पूर्ण न होता अथवा बाजार से कोई वस्तु आती और न मिलती तो ये रोने लगती थीं। उनका रोना-सिसकना साधारण रोना न था, वे गला फाड़-फाड़कर रोती थीं।"[16] प्रेमचंद ने बुढ़ापे को बचपन का ही दुहराव भी माना है। हिंदी कहानी में 'बूढ़ी काकी' जैसी कहानी तात्कालीन समाज में बुजुर्गों की सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डालती है। आज के समय भी इसमें खास बदलाव नहीं आया है। 'मुक्ति' कहानी में बुजुर्गों के साथ मार-पीट की घटना देखी जा सकती है। बूढ़ी काकी का भतीजा भी उसके साथ खाने के नाम पर दुर्व्यवहार करता है। "इन लोगों को इतनी दया भी नहीं आती कि न जाने बुढ़िया कब मर जाए ? उसका जी क्यों दुखावें? मैं पेट की रोटियाँ ही खाती हूँ कि और कुछ ? इस पर यह हाल। मैं अंधी, अपाहिज ठहरी, न कुछ सुनूँ, न बुझूँ। यदि आँगन में चली गई तो क्या बुद्धिराम से इतना कहते न बनता था कि काकी अभी लोग खाना खा रहे हैं फिर आना। मुझे घसीटा, पटका। उन्हीं पूड़ियों के लिए रूपा ने सबके सामने गालियाँ दीं। उन्हीं पूड़ियों के लिए इतनी दुर्गति करने पर भी उनका पत्थर का कलेजा न पसीजा।"[17] जिस बूढ़ी काकी' की संपत्ति पर भतीजा बुद्धिराम सुखमय जीवन जी रहा है उसी बूढ़ी काकी की बुढ़ापे में देखभाल नहीं करता। हालाँकि उसकी छोटी बेटी लाडली ने हर वक्त अपनी दादी का ख्याल रखा। बेटे के तिलक समारोह में वह और उसकी पत्नी उसे रात भर भूखा रखते हैं। यह अलग बात है कि प्रेमचंद ने कहानी का अंत रूपा का हृदय परिवर्तन करवाकर किया है। लेकिन इससे समस्या का तो अंत नहीं होता।

बुजुर्गों के साथ बच्चों का खासा लगाव होता है। प्रेमचंद की कहानी 'बूढी काकी' में लाडली और जगदीश नारायण चौबे की कहानी 'दादी का कम्बल' में रतन, दोनों अपनी दादी से बहुत गहरे जुड़े हैं । रतन अपने माता-पिता को विधवा दादी के साथ बुरा व्यवहार करते लगातार देखता है। वह उसका अपने स्तर से विरोध भी करता है। नौबत तो यहाँ तक आ जाती है वे दादी के साथ नौकर जैसा बर्ताव करने लगते हैं। उनसे खाने का बर्तन टूट जाने पर उनको नौकरों के बर्तन में खाना-पानी देने लगते हैं। रतन का धैर्य इसी बात पर टूट जाता है और वह उन पुराने सामानों को एक बैग में सहेज लेता है। वह बैग में उस पुराने फट चुके कम्बल को भी सुरक्षित रख लेता है जिसे दादी पिछले 50 साल से ओढ़ रही है। पापा-मम्मी जब इसका कारण पूछते हैं तो वह सिर्फ इतना कहता है कि "आपके लिए दादी वाला पुराना कम्बल बक्से में रख दिया है। जब आप बूढी हो जाएँगी तो मैं यही आपको ओढ़ने के लिए दूँगा। यह थाली और गिलास हैं। आपके हाथ जब काँपने लगेंगे तो इसी में आपको खाना दूंगा। प्लेटें नहीं टूटेंगी हमारी। और पापा! आपके लिए यह दादा वाला कोट रख दिया है। जब आप बूढ़े हो जाएँगे तो मैं दूँगा। आप इसे ही पहनिएगा। पचास साल से ज्यादा पुराना है। मगर तासीर नहीं गयी है। पसीना छूट जाएगा।"[18] रतन नयी पीढ़ी का प्रतिनिधि है। वह अपने दादी के प्रति संवेदनशील है। वह बहुत नाटकीय तरीके से अपने माता-पिता को यह समझाने में सफल हो जाता है कि जैसा आप अपने बुजुर्ग के साथ कर रहे हैं वैसा ही व्यवहार आपके साथ भी हो सकता है।

प्रेमचंद की 'बूढी काकी' से लेकर उदय प्रकाश की 'छप्पन तौले का करधन' तक की यात्रा में बहुत सारे बदलाव समाज में भी हुए और कहानियों में भी। जहाँ बूढी काकी अपना जमीन अपने भतीजे के नाम लिख देती है और बाद में उपेक्षित कर दी जाती है। ऐसा लगता है जैसे छप्पन तौले की करधन की दादी उसी काकी के अनुभव से सीख लेती है और मरते दम तक करधन किसी को नहीं देती है। इसलिए खास मौके पर ही सही उसकी पूछ परिवार में बनी रहती है। 'छप्पन तौले का करधन' संबंधों के पीछे की उपयोगितावाद को व्याख्यायित करती है। दादी की महत्ता सिर्फ इस बात के लिए बची थी कि उनके पास छप्पन तोले का करधन है, जो पूरे घर का कायाकल्प कर सकता है। बाकी दादी से किसी को भी कोई खास लगाव नहीं था। "हम सब दादी को अक्सर भूल जाते थे और कभी-कभी तो महीनों उन्हें नहीं देखते थे। न वे हमारी आँखों के सामने कहीं होतीं, न हमारी स्मृति में उनका कोई अस्तित्व रहता।"[19] करधन पूरे घर के लिए एक उम्मीद की तरह थी। यह बात दादी भी बहुत अच्छे से समझती थी। उन्हें पता था कि इसी उम्मीद की वजह से उनकी थोड़ी बहुत परवाह कर ली जाती है वर्ना उसको अँधेरे कमरे में मरने के लिए छोड़ ही दिया जाता। "अभी तो बेटा, बहू दाल-भात ड्योढ़ी पर रख जाती है, करधन मैंने दे दिया तो फिर कौन-सी आस रह जाएगी? करधन हो कि न हो, वह मेरे लिए और तुम सबकी आस के लिए जरुरी है बेटा।"[20] इसलिए जब करधन मिलने की उम्मीद धूमिल होने लगती तो उसकी छोटी बहू गुस्से में खाने की थाली में धूल-मिट्टी दाल आती। दादी द्वारा करधन ना दिए जाने पर पूरे परिवार ने उसे डायन घोषित कर रखा था, जो पूरे परिवार को तबाह कर देना चाहती थी। पूरी कहानी पारिवारिक संबंधों के खोखले आधार का पर्दाफाश करती है। दादी का वजूद सिर्फ एक करधन तक

सीमित करके रख दिया गया था। एक अँधेरी कोठरी में बंद उसका जीवन किसी कैदखाने से कम नहीं था। गाहे-बगाहे उसकी खुदाई भी की जाने लगती। करधन सम्पति का ऐसा प्रतीक बना गया कि उसके सामने सारे रिश्ते बेबस नजर आते हैं।

बदलते समय में हर कुछ 'स्टेटस सिम्बल' बनता जा रहा है | जो भी चीज सम्मान दिलाने में असक्षम है वह अनुपयोगी माना जाने लगा है | भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' कहानी भी छप्पन तोले की करधन की तरह समाज में बुजुर्ग की प्रासंगिकता पर सवाल खड़ा करती है। बूढ़ी माँ इस लायक नहीं है कि उसको मेहमानों से मिलवाया जा सके | समाज में सिर्फ खून से बाहर के रिश्ते ही जरूरत के हिसाब से और आर्थिक क्षमता से संचालित नहीं होते बल्कि खून के रिश्ते भी आपके उपयोगिता से प्रभावित होते हैं। जो सुलूक वहाँ दादी के साथ है लगभग वही सुलूक यहाँ माँ के साथ है। जब मिस्टर शामनाथ के घर चीफ आने वाले हैं तब माँ का वजूद एक फ़ालतू सामान के बराबर हो जाता है जिसे घर के किसी कोने में ढँक कर नजर से दूर कर दिया जाता है। "माँ का क्या होगा ?[21] लेकिन जब जाने-अनजाने में ही माँ उसके लिए उपयोगी बन जाती है, उसके प्रमोशन का साधन बन जाती है तब उसका व्यवहार माँ के प्रति बदल जाता है। "माँ, तुम मुझे धोखा देकर यूँ चली जाओगी ? मेरा बनता काम बिगाड़ोगी ? जानती नहीं, साहब खुश होगा, तो मुझे तरक्की मिलेगी !"[22] जबकि उसी माँ को शामनाथ अपनी पत्नी के साथ मिलकर कहीं छुपा देना चाहते थे ताकि वह मेहमानों के सामने ना आ जाए। शहरी तौर-तरीके से अनजान एक माँ जिसने अपने बेटे को पढ़ाने के लिए अपने हाथ के कंगन तक बेच दिए, वह अब बेटे-बहू की नजर में गँवार है। उसका खर्राटा लेना भी शामनाथ के लिए असहज स्थिति है। हालाँकि भीष्म साहनी ने इस कहानी में कहानी का सुखद अंत किया है। माँ को अंततः उपयोगी बना दिया है। इसलिए अब माँ की इज्जत बढ़ गयी है। लेकिन तब भी यह सवाल खत्म नहीं होता कि अगर चीफ माँ के गायन और फुलकारी में रूचि नहीं लेता तब भी क्या शामनाथ का व्यवहार बदलता ? अगर माँ उसके प्रमोशन का जरिया न हो जाती तब भी क्या शामनाथ का उनके प्रति प्रेम उमड़ता ?

वृद्धाश्रम की संरचना को भारतीय समाज में स्वीकार करने की हिचक अभी भी बनी हुई है | रामदरश मिश्र की कहानी 'भविष्य' हिंदी की उन गिनी-चुनी कहानियों में है जो वृद्धाश्रम व्यवस्था को सकारात्मक तरीके से देखती है। कहानी में एक भविष्य है जिसकी अंतिम परिणति झकझोरती है। भारतीय समाज के अनुसार किसी बुजुर्ग का वृद्धाश्रम जाना शर्म की बात है। कहानी का शीर्षक 'भविष्य' है जो शिव भाई के बेटे का नाम है। बेटा भी ऐसा जो मन्नतों, पूजा पाठ और डॉक्टरों की मेहनत से पैदा हुआ था। जिस भविष्य में शिव भाई ने अपना भविष्य देखा वह उनके हार्ट-अटैक को भी गंभीरता से नहीं लेता। चाय मांगने पर कहता है कि "अब सुबह-सुबह चैन से कॉफ़ी पीने भी नहीं देते हो। मेरी अपनी जिन्दगी है। इसे अपने मन से जिऊँगा। तुम तो अपनी जिन्दगी जी चुके, मेरा जीना क्यों हराम किये हुए हो ?"[23] आमतौर पर भारतीय वृद्ध अपना अंतिम समय वृद्धाश्रम के बजाय घर में ही बिताने को प्राथमिकता देते हैं। घर में भले कम सुविधा मिले, बेटे-पोते भले परेशान करे फिर भी लोग घर में ही रहना ज्यादा पसंद

करते हैं। शिव भाई ने लेकिन इसके उलट फैसला लिया। "मैं अब किसी वृद्धाश्रम में जाना चाहता हूँ- अपने जैसे दुखी लोगों के परिवार के बीच, जहाँ लोग एक-दूसरे के सुख-दुःख से जुड़कर एक बड़े परिवार की तरह रहते हैं।"[24] कहानी का अंत बहुत मार्मिक है। जिस बेटे के व्यवहार से तंग आकर शिव भाई ने मुँह मोड़ लिया है फोन पर अपनी मुंहबोली बहन से उसी का हालचाल पूछने लगते हैं। और जब उनको इस बात का एहसास होता है तो वो तुरंत खुद फ़ोन रख देते हैं। कहानी में एक तरफ नयेपन का स्वीकार भी है तो दूसरी तरफ पीड़ादायक अतीत से मोह भी है। यही भारतीय समाज का अंतर्द्वंद हैं।

भारतीय समाज में वृद्ध जीवन का सबसे क्रूर पक्ष यह है कि नयी पीढ़ी के कुछ लोग अपने माँ-बाप की उपस्थिति मात्र को बोझ समझते हैं | अपनी कुंठा निकालने के लिए वह अपने जन्मदाताओं के साथ मार-पीट पर भी उतर आते हैं | भगवतीशरण मिश्र की कहानी 'मुक्ति' समाज के इसी स्याह पक्ष को सामने रखती है। देश के एक प्रतिष्ठित केंद्रीय विश्वविद्यालय से स्नातक एक बुजुर्ग इंसान अपने घर में छोटे बहू-बेटे द्वारा पिटा जाता है। वह यह बात किसी से साझा करने से भी डर रहा था। "वे मुझ पर निगरानी रखते हैं। कोई आस-पास का भी सुनकर उन तक हमारी बातों को पहुँचा देगा तो वे मेरी पिटाई करेंगे...जो हो, मैं इस सम्बन्ध में यहाँ और कोई बात नहीं करना चाहता, मैं अन्दर और बाहर दोनों से पूरी तरह टूट चुका हूँ। पिटाई सहने की शक्ति मुझमें नहीं रही। पिटाई सह भी लूँ तो अपमान का घूँट गरल के सदृश ही लगता है, उसे कैसे पी सकूँ....?"[25] वृद्धाश्रम में अपना जीवन काट रहे कई बुजुर्गों का जीवन इसी तरह की यातना से गुजरा हुआ होता है। यह भारतीय समाज का ऐसा यथार्थ है, जिसकी सच्चाई से हम मुँह मोड़ना चाहते हैं।

बलराम की कहानी 'कलम हुए हाथ' बूढ़े होते एक बाप की व्यथा कथा है। कहानी में जो परिवार है वह बाहरी दवाब में टूट रहा है। मंझले बेटे की दोस्ती जमींदार के लड़के से हो जाती है और वह शराब पीने लगता है। शराब की लत उसे बँटवारा करवा देती है जिससे वह बे-रोक-टोक पैसे खर्च कर सके। बाप इस पूरी प्रकिया में पिसता है। दोनों बड़े बेटे उससे नाराज हैं। "जो लड़के बँटवारे के बाद बाप से बोलते तक नहीं, उसके मरने-जीने का हाल तक नहीं पूछते, बाप उनसे क्या उम्मीद कर सकता है !"[26] घर की ख़ुशी गायब है। वह बीमार हो गया है। नयी आफत है कि कर्ज बहुत बढ़ गया है कि जमींदार उसके बदले खेत मांग रहा है। ढ़लती उम्र का एक किसान चारों तरफ से समस्याओं से घिरा हुआ है। अंत में इस गम में वह लगभग मर जाता है। उसकी सांस धीमी चलने लगती है। वह एक मजबूर बूढ़े की तरह सब कुछ हार चुका है |

1984 का दंगा भारतीय समाज के चेहरे पर एक दाग है | राधेश्याम तिवारी की कहानी 'टुडे कॉलम' इसी दंगे से प्रभावित एक बुजुर्ग की कहानी है | इस कहानी में कई परतें हैं। 1984 के दंगे में मारे गए परिवार की टीस है, बुढ़ापा है और बुढ़ापे को जीने के रास्ते हैं। कुलवंत ने बुढ़ापे को काटने का अलग तरीका खोज रखा है। वह रोज अखबार मँगाता है ताकि प्रतिदिन यह देख सके कि शहर में कहाँ क्या कार्यक्रम है | फिर दस-ग्यारह बजे निकल जाता और उस कार्यक्रम में शामिल हो जाता। खाने-पीने

को भी मिल जाता और समय भी कट जाता। ऐसे बुढ़ापा काटने वालों का एक ऐसा ग्रुप भी था। कुलवंत ने अपने जीवन में दो दंगे का सामना किया और उसे अपनी मातृभूमि से दूर भी होना पड़ा। जब भारत का विभाजन हुआ तो उसके माँ-बाप उस दंगे में मारे गए। तब वह 12-13 साल का था। 1984 के दंगे में उसका खुद का पूरा परिवार खत्म कर दिया गया। "सब मार दिए गए चौरासी के दंगे में। मैं ही बच गया जीवन ढ़ोने के लिए। अपना भी एक मकान था पहाड़गंज में। जब घर ही नहीं रहा तो मकान का क्या करते सो उसे भी बेचकर पी-खा गया।"[27]

जब कोई व्यक्ति जीवन भर मेहनत करके अपने परिवार को पालता-पोषता है तब जाहिर सी बात है कि वह बुढ़ापे में उसी परिवार से बहुत उम्मीद भी लगा लेता है। 'बांधो न नाव इस ठाँव, बंधु' उर्मिला शिरीष की लम्बी कहानी है। इस कहानी में बुढ़ापा का यही भावुक पक्ष उभरकर सामने आया है। एक पिता है जो सेवानिवृत होने के बाद एक सुकून की जिन्दगी चाह रहा है। "रिटायरमेंट के बाद उन्होंने अपना सब कुछ-प्रिय बेटों के बीच बाँट दिया था, ये सोचकर कि उन्हीं के साथ स्वयं को जोड़कर काम करते रहेंगे। बेटे बाहर का काम देखेंगे, वे अन्दर की व्यवस्था संभाल लेंगे। लेकिन कुछ समय बाद ही उन्होंने महसूस किया कि वे वहाँ कहीं नहीं है। उनका काम करने का ढंग किसी को पसंद नहीं आता था। उन जगहों पर वे नहीं जा सकते थे जो कभी उन्होंने खरीदी थीं। उन चीजों को वो नहीं छू सकते थे जिनको उन्होंने स्वयं बनाया था। हर बात में तनातनी। हर बात में बहस। बेइन्तिहा तनाव। सो एक बार फिर उन्हें अलग होना पड़ा था। शेष जीवन को चलाये रखने की मज़बूरी थी।"[28] पिता के मन में एक उलझन है। इस उलझन को सिर्फ उसका बड़ा बेटा समझ पाता है। उनकी एक अंतिम इच्छा है जो बड़ा बेटा पूरा नहीं कर पाता है। एक बार वह कोशिश भी करता है लेकिन रास्ते में ही बीमार पड़ जाता है। इसी तरह की एक और कहानी है सविता मिश्र की कहानी 'धूप में झरता अकेला मन'। हमारे यहाँ बुजुर्ग लोगों के साथ नयी पीढ़ी का सहज साहचर्य सम्बन्ध बहुत कम विकसित हो पाया है। यह कहानी इस बात की पुष्टि करती है। एक साधारण पारम्परिक भारतीय परिवार है। पति शिक्षक है और पत्नी घरेलू महिला है। दोनों 25-26 की उम्र होते-होते शादी के मात्र 8 साल में ही 6 बच्चों के माता-पिता बन चुके है। जीवन में संघर्ष तो है ही ऊपर से दिन भर की मेहनत उसे और गहरा बना देती है। बच्चे बड़े हो जाते हैं लेकिन वह भी कोई समाधान लेकर नहीं आते। सबसे बड़ा बेटा नौकरी मिलने के बाद अपनी पत्नी सहित परिवार से दूरी बना लेता है। एक घर से भाग जाता है। एक की नौकरी मुंबई में लग जाती है। बाकी बच्चे भी जीवन संघर्ष में हैं। एक बेटी थी गोमती जो उनकी सेवा करती थी उसकी भी शादी हो जाती है। गृहस्थ श्रीपति काका और गृहणी विद्यावती ने जहाँ से 50 साल पहले जिन्दगी शुरू की थी आज फिर से वहीं पहुँच गए। कोई भी पास नहीं, किसी को भी उनकी परवाह नहीं। सब अपने हिस्से की सम्पति को लेकर भले चिंतित हों, लेकिन इन दोनों को लेकर कोई भी गंभीर नहीं है। "जितनी आसानी से बच्चे सारे अधिकार छीन लेते हैं, कर्तव्य के नाम पर उतनी ही उदासीनता अपना लेते हैं।"[29]

नयी पीढ़ी को अपने जड़ों से कोई लगाव नहीं है । वह उसे पिछड़ा मानता है और उससे कट जाना चाहता है । शरद सिंह की 'बंद घड़ी' कहानी इस युग की प्रतिनिधि कहानी है । इस कहानी में भी विधवा माता के सामने बेटा यह प्रस्ताव रखता है कि पुराना घर बेच कर अच्छी जगह पर नया घर ले लो । लेकिन वृद्ध माता जी यह प्रस्ताव नहीं मानती है | इसी तरह ज्ञानरंजन की 'पिता'कहानी में पिता खुद को नयी-नयी भौतिक सुविधाओं से दूर रखना चाहता है | जबकि उनकी संतानों को लगता है कि वह उनका पिछड़ापन है | "साहब लो, मैंने कलकत्ते के 'हाल एंडरसन' के सिले कोट पहने हैं अपने जमाने में, जिनके यहाँ अच्छे-खासे यूरोपियन लोग कपड़े सिलवाते थे | ये फैशन-वैशन, जिसके आगे आप लोग चक्कर लगाया करते हैं, उसके आगे पाँव की धूल है | मुझे व्यर्थ पैसा नहीं खर्च करना है |"[30] भारतीय समाज में संचय की प्रवृत्ति ज्यादा रही है | भारतीय समाज की भौगोलिक और सामजिक संरचना ऐसी रही है लोग भविष्य के प्रति आशान्वित नहीं हो पाते | इसलिए विविध क्षेत्र में संयम की साधना करके भविष्य में किसी भी चुनौती के लिए तैयार रहते हैं | वह अपनी उम्मीदों और इच्छाओं को इतना संतुलित रखना चाहते हैं जिससे खराब से खराब स्थिति में भी जीवन अबाध गति से चलता रहे | जबकि आधुनिक समाज में पश्चिम के प्रभाव से वर्तमान में जीने की प्रवृत्ति बढ़ी है | जिस वजह से कई बार लोग भविष्य के प्रति लापरवाह हो जाते हैं | अपनी भोगवादी आदतों की वजह से कई बार वह मुश्किल में फँस जाते हैं | इस कहानी में पिता इसलिए अपने पुराने दर्शन पर कायम है जबकि उनकी संतानें चाहती हैं कि वे उनके दिए सुविधा का उपयोग करें | जब पिता ऐसा नहीं करते हैं तो उन्हें चिढ़ होती है | दोनों पीढ़ी के जीवन दर्शन का द्वंद्व इस कहानी में देखने को मिलता है |

भारतीय समाज को समझने के लिए परिवार को जानना बेहद जरुरी है । यहाँ परिवार एक चक्र का नाम है जिसका नियंता एक समय के बाद बदलता रहता है । बदलाव की इस प्रक्रिया को स्वीकार करना नयी और पुरानी पीढ़ी दोनों पीढ़ी के लिए बहुत मुश्किल काम है | कृष्णा सोबती की एक कहानी है 'दादी-अम्मा' । दादी-अम्मा एक जमाने में घर की मालकिन थी । आज बुढ़ापे में उनकी बहू उनका रौब नहीं मान रही जो एक जमाने में उनके सामने सर नहीं उठाती थी । खीझ कर वह उन्हें बद्दुआ देती है कि तेरी भी हालत मेरे जैसी होगी । वह लड़ाई करती है, अपने रौब की स्थापना करना चाहती है । लेकिन वक्त बीत गया है वह बेबस हो जाती है । इसी गम में अतीत को याद करते-करते बीमार हो जाती है और देह त्याग कर देती है । जो बहू अब उसकी कदर नहीं करती थी अंतिम समय वह बूढ़ी सास के लिए रो रही है । बहू को रोता देख अम्मा को संतोष मिलता है । परिवार के सत्ता संघर्ष को यह कहानी बहुत बारीकी से सामने रखती है । आम तौर पर यह संघर्ष पुरुषों में होता दिखाई देता है लेकिन इस कहानी में यह सास-बहू के माध्यम से स्त्रियों के बीच होता दिखाया गया है ।

समाज में एक धारणा बना दी गयी है कि शहर में बुजुर्गों की हालत ज्यादा ख़राब है । गाँव में उनकी हालत अच्छी है । रूपलाल बेदिया की कहानी 'पीले पत्ते' इस धारणा को तोड़ती है । यह एक साथ ग्रामीण जीवन और शहरी जीवन के बुजुर्गों की कहानी है । कहानी ग्रामीण और शहरी बुजुर्ग दोनों

को बिना किसी पूर्वाग्रह के देखने की कोशिश करती है। कहानी के अन्दर दो बुजुर्गों की कहानी चल रही है। एक का सम्बन्ध शहर से है तो एक का सम्बन्ध ठेठ गाँव से। प्रतापनारायण जी का बेटा शहर में जाकर बस गया है। पत्नी के गुजर जाने के बाद उनको अकेला महसूस होता है इसलिए वह भी बेटे के साथ रहना चाहते हैं। लेकिन बेटा उनको शहर की भागती-दौड़ती जिन्दगी में होने वाली विविध दिक्कतों का हवाला दे कर आने से मना करता है। नारायण जी अपने अकेलापन के साथ वृद्धाश्रम शिफ्ट कर जाते हैं। कहानी का जो दूसरा पात्र है वो ग्रामीण पृष्ठभूमि से है। जब तक उसके पास संपत्ति है दोनों बेटे उनका लिहाज करते हैं। एक दिन दोनों धूर्तता से जमीन लिखवा कर उन्हें उसी शहर में अकेला छोड़ कर चले आते हैं। जिनका बाद में नारायण जी से परिचय होता है और फिर वे उसे भी अपने पास ले आते हैं। प्रतापनारायण जी की पत्नी कल्याणी ने ही कभी कहा था कि एक बेटे के बजाय दो बेटे होने चाहिए ताकि अगर एक बुढ़ापे में सेवा ना करे तो दूसरा करे। नारायण जी को भी अफ़सोस होता था कि अगर एक बेटा और होता तो आज बुढ़ापा अकेलापन में नहीं कटता। लेकिन जब से उन्होंने अघना को देखा उनका ये भ्रम भी टूट गया। कल्याणी ने यह भी कहा था कि अंग्रेजी स्कूल में इंसान नहीं मशीन तैयार किये जाते हैं। प्रतापनारायण जी खुद भी यही सोचते थे कि क्या अंग्रजी शिक्षा के माध्यम से अच्छे संस्कार नहीं डाले जा सकते क्या ? लेकिन जब वह अघना की कहानी सुनते हैं तो उनकी यह धारणा बदल जाती है क्योंकि अघना के बेटों की शिक्षा-दीक्षा अंग्रेजी विद्यालय में नहीं हुई थी।

दो पीढ़ियों का टकराव इस समय की सबसे बड़ी समस्या है | आधुनिक समय में तेजी से होता परिवर्तन इतना अंतर पैदा कर देता है कि दो पीढ़ी के मूल्यों में इतना अंतर आ जाता है कि संतुलन बनाना मुश्किल हो जाता है | 'चलो, एक बूढ़े की कथा सुनते हैं' निरुपमा राय की ऐसी कहानी है जिसमें दो अलग पीढ़ी का टकराव है। कहानी में वृन्दावनलाल झा का भरा पूरा परिवार है। पुत्र इंजीनियर और पुत्रवधू बड़ी विदेशी कंपनी में अधिकारी। इसके बावजूद उसके अन्दर ख़ुशी नहीं है। "भीतर की रिक्तता और बाहर का एकाकीपन हृदय में तीक्ष्ण बाण-सा चुभता है। आत्मा एक दंश से कभी उबर नहीं पाती। क्या सुख का अर्थ केवल भौतिक सुविधा और अच्छा सुस्वादु भोजन मात्र है? कदापि नहीं। वृद्धावस्था में जीवन की हलचलों से विरत होकर एकाकी चिंतन करने वाला व्यक्ति प्रायः यह अनुभव करता है कि उसने बहुत कुछ खो दिया है। मुझे भी धीरे-धीरे यही अनुभव हो रहा है।"[31] झा जी दादी-नानी की कहानी सुन-सुन कर बड़े हुए हैं। वह उम्मीद करते हैं है कि उनके पोते-पोतियाँ भी उनसे पुरानी कहानियाँ सुने लेकिन बच्चे वीडियो गेम और टीवी में उलझे रहते हैं। वह इस बात से दुखी रहते हैं। "इस नयी पीढ़ी को रामायण की कथा सुनाना चाहता हूँ...पुराणों में वर्णित नीतिपरक कहानियों और हितोपदेश, पंचतंत्र की बाल प्रबोधिनी कथाएँ, महाराणा प्रताप, लक्ष्मीबाई की कथा सुनाकर उनकी आँखों में भी वही कौतूहल देखकर हर्षित होना चाहता हूँ जो कभी शैशव और बालपन में हमारी आँखों में वर्त्तमान था।"[32] झा जी की पीढ़ी और उनके बेटे की पीढ़ी में बहुत अंतर आ गया है। बेटे की जेनरेशन में बहुत कुछ तेजी से बदल रहा है। उसके पास समय की बेहद कमी है। वह जल्द से जल्द बहुत कुछ पाना चाहता है और उसके लिए दिन-रात उलझा रहता है। जबकि झा जी के समय में सुकून था। इतनी मारामारी नहीं थी।

"दिन-रात कोल्हू के बैल की भाँति क्यों काम में जुटे रहते हो? कभी तो दो क्षण चैन की साँस लो बेटा। पत्नी-बच्चों से हँसो-बोलो , बूढ़े बाप का हाल-चाल पूछो। कुछ अपनी सुनाओ...कुछ हमारी सुनो। ये क्या कि सुबह से शाम तक चकरघिन्नी की तरह नाचते रहते हो ? आखिर मैंने भी चालीस वर्ष तक नौकरी की है|"[33] बेटा बाप के संघर्ष से तादात्म्य तो रखता है लेकिन उससे संतुष्ट नहीं है। "बाबूजी,आप अपनी बात तो मत ही करिए। पूरा बचपन और जवानी मैंने अभाव में काटा है...अपना बुढ़ापा तो सुरक्षित बनाने दीजिए। मैं अपने बच्चों को किसी चीज के लिए तरसता नहीं देख सकता |"[34] पिता का अपना अपना तर्क है। उनके देखने का नजरिया अलग है। दोनों बाप-बेटे दो छोड़ पर खड़े हैं |"अरे अभागे! तू किस चीज के लिए तरसा है ? जो जब भी माँगा, उधार करके भी लाकर दिया था तुझे। हाँ, तरसा तो मैं हूँ..पूरी जिन्दगी..कभी बढ़िया भोजन के लिए, कभी अच्छे कीमती वस्त्रों के लिए|.. कितनी चाह थी सिल्क का कुरता और ब्रेसलेट की धोती पहनने की जिसमें नाग वाले वाले बटन जड़े हों, अपनी कमी से तो कभी खरीद नहीं पाया...सोचा था जब तू कमाएगा...! पर...क्या कभी मैंने तुझसे कहा, मुझे सिल्क का कुरता और ब्रेसलेट की धोती...?|"[35]

वृद्ध एक समय बाद परिवार के लिए अनुपयोगी हो जाते हैं | पंकज मित्र की कहानी 'पड़ताल' इसी तरह परिवार के लिए संकट बन चुके एक वृद्ध की कहानी है। बदलते समय, मूल्यों के ह्रास और शहरों के छोटे घरों की वजह से मध्यमवर्गीय परिवार में एक बुजुर्ग की हालत बद से बदतर होती चली जा रही है। कहानी की शुरूआत ही इन पंक्तियों के साथ होती है कि "...और किशोरीरमण बाबू यानी मेरे पड़ोस के घर के बड़े ताऊ जी घर में रंगीन टी.वी. सेट आने के आठ दिनों के बाद ही मर गए |"[36] टीवी कोई भी अपने कमरे में रखने को तैयार नहीं था, इसलिए किशोरीरमण बाबू के कमरे रखा गया। तर्क यह गढ़ा गया कि यहाँ से सबको बराबर दिखाई भी देगा। रमण बाबू के अपने सोने और जागने का वक्त था। देर रात तक टीवी चलने की वजह से वह गड़बड़ हो गया। वह टीवी चलने के वक्त खुद घर आने से कतराने लगे। उनके सोने-जागने के समय में देरी होने लगी। "किशोरी बाबू मन-ही-मन खुश होते हुए, आँखों में प्यारी नींद का सपना लेकर हनुमान जी की स्तुति गुनगुनाते हुए अभी अपने घर से चार मकान पीछे ही थे कि बिजली आ गई। सभी पी.टी. उषा की स्पीड में गोल कमरा, जिसे अब टी.वी. रूम कहा जाता था, की ओर दौड़े। उलटे पाँवो किशोरी बाबू लौट पड़े। 'एक घंटा और हनुमान मंदिर में काट लेंगे, लेकिन साढ़े दस बजे से पुजारी जी दरवाजा बंद कर देते हैं...तब लौट आएंगे...' सोचा उन्होंने"[37]। रात को सोते समय उनकी टाँगें टीवी देखने वालों को बाधा पहुँचाने लगी। बेटे-बहुओं ने उनकी नींद और अपने मनोरंजन दोनों का खयाल रखते हुए उनके सोने का इंतजाम कमरे के बाहर बरसाती में कर दिया। "देर रात तक अमिताभ बच्चन चीखता रहा। असामाजिक तत्वों को पीटता रहा। सभी ने निश्चित होकर चीखें सुनीं। पिटाई देखी। दाँत पीस-पीसकर दुनिया को जलाकर राख़ कर देनेवाले डायलॉग सुने और परमतृप्ति के साथ सोए और सुबह ही किशोरी बाबू मरे हुए पाए गए, बरसाती में चौकी पर... सीने पर हाथ धरे |"[38] लेखक बार-बार यह दावा करता है कि यह साधारण मौत नहीं बल्कि हत्या है। वह इस मौत पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं "जरूरत क्या है मरने के बाद मिट्टी की फजीहत कराने की। न आग में जलकर

मरे, न जहर खाया, न गर्दन में रस्सी का फंडा डालकर झूले, न छत से गिरे, न किसी गाड़ी से एक्सीडेंट हुआ, न किसी ने छुरा मारा, न गोली लगी तो पोस्टमार्टम किस बात के लिए होगा !"[39] अपने संतानों द्वारा दी गयी धीमी मौत किस पोस्टमार्टम में पकड़ आ सकती है ? जहाँ आधुनिकीकरण ने हमें जीवन जीने के विभिन्न भौतिक साधन उपलब्ध करवाए वहीं हमसे हमारा सार्वजनिक स्पेस छिन लिया । इस परिवेश में हमारा दायरा सीमित हो चला है । परिवार का दायरा सीमित हो चला है । बुजुर्ग इस परिवेश से गायब कर दिए जा रहे हैं । इस कहानी के किशोरीरमण बाबू के साथ भी यही हुआ ।

हमारा समाज एक समय के बाद बुजुर्गों की इच्छाओं की परवाह करना भूल जाता है | नयी पीढ़ी के लिए अपनी छोटी-छोटी कामनाएं और खुशियाँ मायने रखती है लेकिन क्या यही चाहत एक वृद्ध भी रख सकते हैं ? कविता की कहानी 'उलटबांसी' में अप्पू की माँ बुढ़ापे में शादी करना चाहती है । अप्पू के पिता गुजर चुके हैं और उनके चार संतानों में से कोई भी उसके पास नहीं है । वह अकेलेपन से गुजर कर विवाह करने का फैसला लेती है । उसका होने वाला पति उसका डॉक्टर है जिसने उसके टूटे पैरों का ईलाज किया था । अप्पू माँ की एकमात्र बेटी है और उसे माँ की परवाह है । अप्पू की शादी भी माँ की वजह से ही संभव हो पायी थी जबकि सबलोग अनुज जैसे लड़के से शादी के खिलाफ थे । "माँ ने ही तब कहा था जिसे आना हो आए, न आना हो न आए । जो जिसके समझ में आए वही सोचे । मैंने तो अपने सारे बच्चों की इच्छाओं और सपनों की कद्र की है, मेरे बेटों की तरह अपूर्वा को भी अपनी ज़िंदगी चुनने का हक है और मैं उसका साथ जरूर दूँगी |"[40] अप्पू अपने माँ की भावनाओं को समझती है । उसे माँ की परिस्थितियों का एहसास है । वह अपने भाइयों को समझाने का प्रयास भी करती है । "अगर माँ शादी कर रही है तो वह अपने अकेलेपन से ऊबकर, देह की भूख से हारकर नहीं भैया । फिर सिर उठाकर जी न सकने की बात कहाँ से आई ? जो स्वप्न हम सबने पाले, माँ ने सबका सपना पूरा किया । हमारे हर निर्णय में वह हमारे साथ खड़ी रही और आज जब वह बिलकुल अकेली पड़ गयी हैं हमसे कोई शिकायत न करते हुए उन्होंने बस एक छोटी-सी इच्छा जाहिर की है और हम सब इसी में उबले हुए हैं । कितने दिन और जी सकेंगी माँ...दस साल, पंद्रह... इससे हद से हद बीस साल । इतने दिन अगर वह खुशी-खुशी जीए, हमें भी रह-रहकर यह चिंता न हो कि वह अकेली कैसी होगी तो इसमें बुरा क्या है ?"[41] माँ जब अकेलेपन में थी तब उनके बेटे-बहुओं को उनकी परवाह नहीं थी लेकिन माँ की शादी उनके लिए प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया । उनको अपने इज्जत की परवाह होने लगी । सिमोन द बोउआर ने भी अपनी किताब 'द ओल्ड एज' में लिखा है "अगर कोई प्रौढ़ अपना एकाकीपन मिटाने के लिए पुनर्विवाह करना चाहे तो युवा पीढ़ी इसका विरोध करती है । विशेष रूप से महिलाओं के लिए यह बड़ी समस्या बन जाती है । इस समस्या के बारे में सिमोन बताती है कि पुत्रियाँ भी माँ के पुनर्विवाह का विरोध उसी प्रकार करती है जिस प्रकार पुत्र अपने पिता का, और यदि ये वृद्ध विवाह कर भी लेते हैं तो उनकी संतानें उनसे ऐसा ठंडा व्यवहार करती हैं कि ये वृद्ध गलती करने के अपराधबोध में दिन बिताते हैं |"[42] हालाँकि इस कहानी में बेटी अप्पू, छोटा बेटा और बड़े बेटे की बेटी निशा ने माँ के दर्द को समझा और उनको खुशी-खुशी डॉक्टर साहब के घर विदा किया । हमारे यहाँ आधुनिकता बहुत आधी अधूरी आई है । न हम ठीक से

आधुनिकता को अपना पा रहे हैं और न ही परंपरा को बचा पा रहे हैं। इस कहानी में ही हम देख सकते हैं कि बड़ा भाई और मँझला भाई सिर्फ इस बात के लिए माँ के पास अपने बीबी बच्चों के साथ आ पहुंचे हैं, क्योंकि उनको पता चला है कि माँ शादी करना चाहती है। इससे पहले जब माँ पिता की मौत के बाद अकेलापन की जिन्दगी गुजार रही थी तब कोई पास नहीं आया। घर में चोरी हो गयी जिसमें उसके पति की यादस्वरूप रखी घड़ी भी चोर चुरा कर ले गया, तब कोई रिपोर्ट तक लिखवाने वाला नहीं था। एक स्त्री बुढ़ापे में परिवार की इज्जत के लिए सबकी उपेक्षा सहकर घुटती रहे लेकिन शादी न करे। उसकी अपनी कोई ज़िंदगी नहीं बल्कि परिवार की प्रतिष्ठा उसकी प्राथमिकता में होनी चाहिए। हम अपनी माँ के अकेलापन को लेकर पारंपरिक तौर पर भी गंभीर नहीं हैं लेकिन अगर माँ अपने अकेलापन का कोई विकल्प ढूँढती है तो सब लोग उसके खिलाफ जरूर हो जाते हैं। मदन मोहन की 'बूढ़ा' कहानी में एक बूढ़ा परिवार और शहर के बीच खुद को फँसा महसूस करता है। उसे शोर पसंद नहीं है, वह शांति चाहता है। शहर के पार्कों में उसे शांति नहीं मिलती, सड़कों की भीड़ उसे परेशान करती है। घर के मामलों को लेकर वह संजीदा है लेकिन उनका बेटा उनकी बातों को पूरी अहमियत नहीं देता है |

अमृत राय की कहानी 'आँखमिचौनी' वृद्धावस्था के अंतिम दौर की हकीकत बयान करती है। भारतीय समाज में अस्सी वर्ष की अवस्था में वृद्ध आमतौर पर मरने की बाट जोहने लगते हैं। वे अपने जीवन का उद्देश्य खत्म हुआ मान चुके होते हैं। उनके पास एक 'शानदार' अतीत होता है जिसे वह हर किसी के साथ बाँटना चाहता है। उसे 'सेवा' की प्रबल चाह होती है। अमृत राय ने बुढ़ापे की इस अवस्था को आकार दिया है। "खून कब का सूख गया, अब तो हड्डियाँ भी सिकुड़ चलीं। पीठ पर बड़ी-सी एक कूबड़ निकल आयी है। जाने कितने वर्षों से मौत दरवाजे पर दस्तक दे रही है मगर आती नहीं। चेहरे पर झुर्रियों का एक जाल है, और हर झुर्री की अपनी अलग एक कहानी है। अस्सी साल एक लम्बी उम्र है और समय ने बेदर्दी से हल चलाया है। कितने-कितने झटके और कैसी-कैसी सर्दी-गर्मी। जमाना हुआ कि दिये सब एक-एक करके बुझ गये, आंखों की नींद जाती रही और रात एक अंधेरे सन्नाटे में बदल गयी, जिसका कहीं ओर-छोर नहीं। बस एक सर्द बिस्तर अपना और उस पर करवट होकर निढाल पड़ा हुआ, मैले कपड़े की गठरी जैसा एवं सूखा-सूखा मिरगुल्ला शरीर। सारी रात यों बीत जाती है। कभी जरा-सी कुनमुनायी तो मालूम हुआ कि अभी जान बाकी है |"[43] भले आँखों की रोशनी कम हो गयी हो, कम सुनाई देता हो लेकिन उस अस्सी वर्षीय बुढ़िया के पास कहने को बहुत कुछ है। दबंग बाप के किस्से उसके जीने का सहारा है। बाप भले दबंग था लेकिन उसके आगे बाप की भी नहीं चलती थी |

काशीनाथ सिंह की कहानी 'अपना रास्ता लो बाबा' आधुनिक समय के द्वंद्व को और गहरा करती है। गाँव छोड़ कर शहर में बसे देवनाथ अपने जमीन से पूरी तरह कट नहीं पाए हैं लेकिन उनकी जीवन शैली पूरी तरह शहरी हो चुकी है। उनकी पत्नी और बच्चे ग्रामीण परिवेश से पूरी तरह अनजान हैं। इसलिए जब देवनाथ को बेंचू बाबा के आने का एहसास होता है तो वह बहाना बनाकर उनको भटकाना चाहते हैं लेकिन उनकी पत्नी इस बात को समझ नहीं पाती। ताऊ ग्रामीण परिवेश के आदमी हैं इसलिए

उनके घर में अजीब से प्रतीत हो रहे हैं। "बेंचू बाबा के सर पर गगरा था। उन्होंने हाँफते हुए उसे उतारा, हाथ में उठाए 'ड्राईंगरूम' में दाखिल हुए और लाठी एक कोने में खड़ी की। फिर भेड़ के उनवाला कम्बल सोफे की बाँह पर रखा, पगड़ी खोली और चेहरे को छिपाए दाढ़ी-मूंछों के झाड़ को उसके एक किनारे से रगड़ा और कमरे के चारों तरफ ऊपर-निचे नजर डाली।"[44] देवनाथ को बाबा से लगाव है क्योंकि उन्होंने उनको अपनी गोद में खिलाया है। उनके साथ देवनाथ के बचपन की याद जुड़ी हुई है। लेकिन उनके बच्चे और पत्नी बाबा के प्रति उपेक्षा का भाव रखते हैं। बाबा अपने ईलाज के सिलसिले में शहर आए हैं। चारों तरफ से निराश बाबा के लिए देवनाथ ही अंतिम विकल्प थे। देवनाथ चाहते हुए भी न तो पूरी तरीके से बाबा की उपेक्षा कर पा रहे हैं और न ही बाबा की भावनाओं से जुड़ पा रहे हैं। बीच-बीच में वे उनके लिए भावुक भी हो जा रहे हैं। "वे वहाँ कुछ देर खड़े रहे। किचन दिखाई पड़ रहा था, लेकिन उन्हें भूख नहीं थी। उनकी नजर उस गगरे पर चली गई जो बाबा के सिर पर बस और पैदल साठ-सत्तर मील का फासला तय करके मोरी के पास पहुँचा था। वे भावुक हो गए और उनकी आँखें भीग आईं।"[45] आज के समय में जिस तरीके से शहर का विस्तार हुआ है, उसी तरीके से नयी समस्याओं का भी जन्म हुआ है। संसाधन सीमित होने की वजह से किसी अतिथि और उसका अतिरिक्त भार सहना बहुत आसान नहीं रह गया है। हम क्षय होती संवेदनाओं के ऊपर ठीकरा फोड़ कर मूल समस्या से मुँह भले ही चुरा सकते हैं लेकिन अगर वाकई हम इसके मूल जड़ तक पहुँचना चाहते हैं तो हमें इसको सम्पूर्णता में देखना होगा।

भारतीय समाज में वृद्धों की दयनीय अवस्था के लिए नयी पीढ़ी को जिम्मेदार माना गया है। उस पर पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव आरोपित किया जाता है। जबकि यह बहुत सरलीकृत व्याख्या है। हम बदलाव और उससे उत्पन्न परिस्थितियों को समझने में असमर्थ रहे हैं। बात सिर्फ इतनी भर नहीं है। समय के साथ परिवर्तन स्वाभाविक प्रक्रिया है। हर दौर में यह होता आया है। किसी भी नयी पीढ़ी के लिए तमाम पुराने मूल्यबोध के साथ जीना सहज नहीं रहा है। इसलिए नयी पीढ़ी ने अपनी पीढ़ी का अनुसरण अपनी सुविधानुसार ही किया है। नयी सदी में बदलाव की गति इतनी तेज हो गयी है कि पुराने मूल्यों का ह्रास और और उसकी उपेक्षा होने लगी। इससे समाज में एक बदलाव तो आया लेकिन वृद्ध हाशिये पर जाने लगे। नयी पीढ़ी के लिए यह बहुत बड़ी चुनौती है। हमें वृद्धों को जिम्मेदारी ना मानकर आवश्यकता मानना होगा। हमें अपनी मानसकिता बदलनी होगी। यह प्रक्रिया दोनों तरफ से हों बेहद जरुरी है। प्राचीन समय भी जो वृद्ध सक्षम थे उनके प्रति समाज का नजरिया सकारात्मक था। बदलते समय के साथ वृद्धों को खुद को शारीरिक और मानसिक रूप से बदली हुई स्थितियों के अनुरूप खुद को तैयार करना होगा। यह बदलाव आज से पूर्व भी जरुरी था, आज भी जरुरी है और आगे भी जरुरी होगा। वेनिस के कोर्नेरो तो अपनी वृद्धावस्था को लेकर इतने सकारात्मक थे कि उन्होंने कहा कि "मैं अपने दोस्तों, पुत्रों, पौत्रों से घिरा रहता हूँ, सुन-पढ़-लिख सकता हूँ, घुड़सवारी और शिकार कर सकता हूँ तो मेरा बुढ़ापा मज़े में गुज़र रहा है; मैं इस बुढ़ापे को अपनी जवानी के बदले भी नहीं बदलना चाहूँगा।"[46]

ऐसी ही सकारात्मक उर्जा आज के वृद्धों की जिन्दगी को बदल सकती है। वृद्धों और युवाओं का आपसी तालमेल ही इस समाज को बेहतर बना सकता है।

संदर्भ

[1] चंद्रमौलेश्वर प्रसाद, वृद्धावस्था विमर्श, संपा- ऋषभदेव शर्मा, परिलेख प्रकाशन, नजीबाबाद, 2016, पृष्ठ -25

[2] चन्द्रमौलेश्वर प्रसाद, वृद्धावस्था विमर्श, संपा- ऋषभदेव शर्मा, परिलेख प्रकाशन, नजीबाबाद,2016, पृष्ठ -28

[3] चन्द्रमौलेश्वर प्रसाद, वृद्धावस्था विमर्श, संपा- ऋषभदेव शर्मा, परिलेख प्रकाशन, नजीबाबाद,2016, पृष्ठ -34

[4] चन्द्रमौलेश्वर प्रसाद, वृद्धावस्था विमर्श, संपा- ऋषभदेव शर्मा, परिलेख प्रकाशन, नजीबाबाद,2016, पृष्ठ-29 -30

[5] चन्द्रमौलेश्वर प्रसाद, वृद्धावस्था विमर्श, संपा- ऋषभदेव शर्मा, परिलेख प्रकाशन, नजीबाबाद,2016, पृष्ठ-30

[6] चन्द्रमौलेश्वर प्रसाद, वृद्धावस्था विमर्श, संपा- ऋषभदेव शर्मा, परिलेख प्रकाशन, नजीबाबाद,2016, पृष्ठ-29

[7] चन्द्रमौलेश्वर प्रसाद, वृद्धावस्था विमर्श, संपा- ऋषभदेव शर्मा, परिलेख प्रकाशन, नजीबाबाद,2016, पृष्ठ-35

[8] चन्द्रमौलेश्वर प्रसाद, वृद्धावस्था विमर्श, संपा- ऋषभदेव शर्मा, परिलेख प्रकाशन, नजीबाबाद,2016, पृष्ठ -46

[9] डॉ.स्वाति तिवारी, अकेले होते लोग, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2011, पृष्ठ-8

[10] संपा- डॉ. श्रीमती प्रेम सिंह और डॉ. रिम्पी खिल्लन, समकालीन कहानी और विकलांग पात्रों की उपेक्षा, समकालीन कहानी और उपेक्षित समाज, श्री नटराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ-133

[11] संपा- डॉ. शिवनारायण, वृद्ध जीवन की कहानियाँ, साहित्य भारती,दिल्ली, 2012, पृष्ठ -9-10

[12] संवाददाता- भोला पांडेय, संपा-आनंद पांडे, दैनिक भास्कर, दिल्ली संस्करण, पृष्ठ-7

[13] संपा.- शशि शेखर, फुरसत, रविवासरीय हिन्दुस्तान, 11 मार्च 2018, नयी दिल्ली, पृष्ठ-1

[14] चंद्रमौलेश्वर प्रसाद, वृद्धावस्था विमर्श, संपा- ऋषभदेव शर्मा, परिलेख प्रकाशन, नजीबाबाद, 2016, पृष्ठ-52

[15] संपा- डॉ. श्रीमती प्रेम सिंह और डॉ. रिम्पी खिल्लन, समकालीन कहानी और विकलांग पात्रों की उपेक्षा, समकालीन कहानी और उपेक्षित समाज, श्री नटराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ-135

[16] प्रेमचंद, बूढी काकी, बड़े-बुजुर्ग,श्रृंखला संपादक- अखिलेश, संपादक- प्रियदर्शन, राजकमल पेपरबैक्स, दिल्ली, 2004, पृष्ठ-15

[17] प्रेमचंद, बूढी काकी, बड़े-बुजुर्ग,श्रृंखला संपादक- अखिलेश, संपादक- प्रियदर्शन, राजकमल पेपरबैक्स, दिल्ली, 2004, पृष्ठ-21

[18] जगदीश नारायण चौबे, दादी का कम्बल, वृद्ध जीवन की कहानियाँ, संपा- डॉ. शिवनारायण, साहित्य भारती, दिल्ली, 2012, पृष्ठ-32

[19] उदय प्रकाश, छप्पन तोले का करधन, तिरिछ, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2010, पृष्ठ-48

[20] उदय प्रकाश, छप्पन तोले का करधन, तिरिछ, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2010, पृष्ठ-59

[21] भीष्म साहनी, चीफ की दावत, संपा- राजेन्द्र यादव, एक दुनिया: समानान्तर, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2009, पृष्ठ- 223

[22] भीष्म साहनी, चीफ की दावत, संपा- राजेन्द्र यादव, एक दुनिया: समानान्तर, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2009, पृष्ठ- 229

[23] रामदरश मिश्र, भविष्य, वृद्ध जीवन की कहानियाँ, संपा- डॉ. शिवनारायण, साहित्य भारती, दिल्ली, 2012, पृष्ठ- 23

[24] रामदरश मिश्र, भविष्य, वृद्ध जीवन की कहानियाँ, संपा- डॉ. शिवनारायण, साहित्य भारती, दिल्ली, 2012, पृष्ठ- 22

[25] भगवतीशरण मिश्र, मुक्ति, वृद्ध जीवन की कहानियाँ, संपा- डॉ. शिवनारायण, साहित्य भारती, दिल्ली, 2012, पृष्ठ-36

[26] बलराम, कलम हुए हाथ, वृद्ध जीवन की कहानियाँ, संपा- डॉ. शिवनारायण, साहित्य भारती, दिल्ली, 2012, पृष्ठ- 41

[27] राधेश्याम तिवारी, टुडे कॉलम, वृद्ध जीवन की कहानियाँ, संपा- डॉ. शिवनारायण, साहित्य भारती, दिल्ली, 2012, पृष्ठ-53

[28]उर्मिला शिरीष, 'बांधो न नाव इस ठाँव, बंधु', वृद्ध जीवन की कहानियाँ, संपा- डॉ. शिवनारायण, साहित्य भारती, दिल्ली, 2012, पृष्ठ-58

[29] सविता मिश्र, धूप में झरता अकेला मन, वृद्ध जीवन की कहानियाँ, संपा- डॉ. शिवनारायण, साहित्य भारती, दिल्ली, 2012, पृष्ठ-156

[30] ज्ञानरंजन, पिता, पिता, संपा- राजू शर्मा, श्रंखला संपा- अखिलेश, राजकमल पेपरबैक्स, नयी दिल्ली, 2014, पृष्ठ- 30

[31] निरुपमा राय, चलो, एक बूढ़े की कथा सुनते हैं!, वृद्ध जीवन की कहानियाँ, संपा- डॉ. शिवनारायण, साहित्य भारती, दिल्ली, 2012, पृष्ठ-94

[32] निरुपमा राय, चलो, एक बूढ़े की कथा सुनते हैं!, वृद्ध जीवन की कहानियाँ, संपा- डॉ. शिवनारायण, साहित्य भारती, दिल्ली, 2012, पृष्ठ-97

[33] निरुपमा राय, चलो, एक बूढ़े की कथा सुनते हैं!, वृद्ध जीवन की कहानियाँ, संपा- डॉ. शिवनारायण, साहित्य भारती, दिल्ली, 2012, पृष्ठ-99

[34] निरुपमा राय, चलो, एक बूढ़े की कथा सुनते हैं!, वृद्ध जीवन की कहानियाँ, संपा- डॉ. शिवनारायण, साहित्य भारती, दिल्ली, 2012, पृष्ठ-99

[35]निरुपमा राय, चलो, एक बूढ़े की कथा सुनते हैं!, वृद्ध जीवन की कहानियाँ, संपा- डॉ. शिवनारायण, साहित्य भारती, दिल्ली, 2012, पृष्ठ-99

[36] पंकज मित्र, पड़ताल, बड़े-बुजुर्ग,श्रृंखला संपादक- अखिलेश, संपादक- प्रियदर्शन, राजकमल पेपरबैक्स, दिल्ली, 2004, पृष्ठ-105

[37] पंकज मित्र, पड़ताल, बड़े-बुजुर्ग,श्रृंखला संपादक- अखिलेश, संपादक- प्रियदर्शन, राजकमल पेपरबैक्स, दिल्ली, 2004, पृष्ठ-113

[38] पंकज मित्र, पड़ताल, बड़े-बुजुर्ग,श्रृंखला संपादक- अखिलेश, संपादक- प्रियदर्शन, राजकमल पेपरबैक्स, दिल्ली, 2004, पृष्ठ-115

[39] पंकज मित्र, पड़ताल, बड़े-बुजुर्ग,श्रृंखला संपादक- अखिलेश, संपादक- प्रियदर्शन, राजकमल पेपरबैक्स, दिल्ली, 2004, पृष्ठ-105

[40] उलटबाँसी, कविता, बड़े-बुजुर्ग,श्रृंखला संपादक- अखिलेश, संपादक- प्रियदर्शन, राजकमल पेपरबैक्स, दिल्ली, 2004, पृष्ठ-132

[41] उलटबाँसी, कविता, बड़े-बुजुर्ग,श्रृंखला संपादक- अखिलेश, संपादक- प्रियदर्शन, राजकमल पेपरबैक्स, दिल्ली, 2004, पृष्ठ-136

[42] चन्द्रमौलेश्वर प्रसाद, वृद्धावस्था विमर्श, संपा- ऋषभदेव शर्मा, परिलेख प्रकाशन, नजीबाबाद,2016, पृष्ठ-46

[43] अमृत राय, आँखमिचौनी, वृद्धावस्था की कहानियाँ, संपा- गिरिराज शरण, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2010, पृष्ठ-11

[44] काशीनाथ सिंह, अपना रास्ता लो बाबा!, बड़े-बुजुर्ग, श्रृंखला संपादक- अखिलेश, संपादक- प्रियदर्शन, राजकमल पेपरबैक्स, दिल्ली, 2004, पृष्ठ-37

[45] काशीनाथ सिंह, अपना रास्ता लो बाबा!, बड़े-बुजुर्ग, श्रृंखला संपादक- अखिलेश, संपादक- प्रियदर्शन, राजकमल पेपरबैक्स, दिल्ली, 2004, पृष्ठ- 47-48

[46] चंद्रमौलेश्वर प्रसाद, वृद्धावस्था विमर्श, संपा- ऋषभदेव शर्मा, परिलेख प्रकाशन, नजीबाबाद, 2016, पृष्ठ-60

4. हिंदी कहानियों में विकलांग जीवन

4.1 विकलांगता और हमारा समाज

4.2 प्राचीन समाज और साहित्य में विकलांग

4.2.1 भारतीय समाज और साहित्य में विकलांग

4.2.2 पश्चिमी समाज और साहित्य में विकलांग

4.3 आधिकारिक आंकड़ों में विकलांग

4.4 हिंदी कहानियों में विकलांग जीवन

4.4.1 शारीरिक विकलांगता

4.4.2 एसिड अटैक से पीड़ित

4.4.3 मानसिक विकलांगता

विकलांग भारतीय समाज में हमेशा से हाशिये पर रखे गए हैं। लोग विकलांगता को अभिशाप मानते थे। इसे पूर्वजन्म का पाप माना जाता था। विकलांग लोगों को समाज में सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता है। कई बार समाज उन्हें समाज से बहिष्कृत भी कर दिया करता था। उनको वह सब अधिकार प्राप्त नहीं थे जो बाकी लोगों को थे | सिर्फ अंग विशेष के 'असामान्य' होने की वजह से उनको तमाम चीजों से महरूम कर दिया जाता था | उनकी शिक्षा-दीक्षा का कोई विशेष प्रबंध नहीं था | उनके रोजगार के साधन सीमित थे | इस अध्याय में विकलांग जीवन के जुड़े तमाम पहलुओं पर विस्तार से विचार किया जाएगा |

4.1 विकलांगता और हमारा समाज

विकलांगता का शाब्दिक अर्थ हुआ जिसका अंग विकल हो, कमजोर हो। किसी अंग विशेष की क्षति विकलांगता कही जा सकती है। विकलांगता के चार प्रकार होते हैं - अस्थि विकलांगता, दृष्टि बाधित विकलांगता, मानसिक विकलांगता और श्रुति बाधित विकलांगता। विकलांगता उसी तरह स्वाभाविक है जिस तरह सकलांगता। हर मनुष्य के अंदर सकलांगता भी है और विकलांगता भी। अपने जीवन में सभी मनुष्य का हर समय पूर्णतः स्वस्थ होना संभव ही नहीं है। समय के साथ उसके अंग शिथिल पड़ते जाते हैं। कम सुनाई देना, कम दिखाई देना, हाथ-पैरों में कंपन, कमर झुक जाना, आवाज अस्पष्ट निकलना इत्यादि सामान्य सी बात है। हालाँकि यह बुढ़ापा में ज्यादा होता है, लेकिन बहुत सारे लोग ऐसे हैं जिनका शरीर समय से बहुत पहले बीमार हो जाता है। उनके शरीर का कोई खास अंग अन्य की तुलना में बहुत कमजोर पड़ जाता है। कई बच्चों को बचपन में ही चश्मे की जरूरत पड़ जाती है। एक वक़्त के बाद ऐसा भी होता है कि बिना चश्मे के उनको ठीक से दिखाई भी नहीं देता। कुछ लोग बचपन से ही विकलांग होते हैं तो कुछ लोग यातायात दुर्घटना, युद्ध, प्राकृतिक आपदा, कुपोषण, चिकित्सा का अभाव, बीमारी इत्यादि वजहों से विकलांग हो जाते हैं। शरीर का कौन सा अंग कब कमजोर पड़ जाये या कब दुर्घटना का शिकार हो जाये कहा नहीं जा सकता। इसलिए कोई भी कभी भी विकलांग की हो सकता है।

युद्ध भी विकलांगता का एक बड़ा कारण है। महाभारत और रामायण की कथाओं में युद्ध के बाद की स्थिति बेहद भयानक होती है। अमेरिका ने 6 और 9 अगस्त 1945 इस्वी को जापान के हिरोशिमा और नागासाकी पर परमाणु बम गिराया । उसके प्रभाव से कई पीढियां में विकलांगता और विविध रोग का शिकार रही। आज भी जापान उसके प्रभाव से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाया है। बाकी युद्धों में भी काफी संख्या में लोग विकलांग होते रहे हैं। दुर्घटना, बीमारी, अनुवांशिक रोग, चिकित्सा का अभाव आदि वजहों से शारीरिक विकलांगता होती है। इसके अलावा मानसिक रूप से आघात करने वाले कारकों से मानसिक विकलांगता उत्पन्न होती है।

27 दिसम्बर 2015 (रविवार) को अपने 'मन की बात' कार्यक्रम में भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने विकलांग की जगह 'दिव्यांग' शब्द प्रयोग किए जाने का आग्रह किया। हालाँकि प्रधानमंत्री ने

सकारात्मक रूप से विकलांगों के प्रति लोगों की धारणा बदलने के लिए ऐसा प्रस्ताव रखा। लेकिन विकलांग समुदाय के लोग इस नए नामकरण से बहुत संतुष्ट नहीं हैं। इस संबंध में एक शोध छात्र से जब उनका मत पूछा तो उन्होंने विकलांग शब्द को ही सबसे उपयुक्त बताया। महात्मा गांधी ने भी इसी तरह दलितों के लिए 'हरिजन' शब्द का प्रयोग किया था। इस तरह के नाम का अर्थ तो बहुत उज्ज्वल होता है लेकिन कई बार इससे व्यंग्य की ध्वनि भी आती है। मानो जैसे किसी दृष्टिबाधित व्यक्ति का नाम 'नयनसुख' रख दिया गया हो। हिन्दी में कहावत भी है – 'आँख का अंधा नाम नयनसुख'। यह कहावत भी व्यंग्यवश ही कहा जाता है। इसलिए बहुधा इस तरह के नामकरण की स्वीकार्यता संदिग्ध रहती है। इसी कारण इस शोध ग्रंथ में मैंने 'दिव्यांग' की जगह विकलांग का ही प्रयोग किया है।

यूनान के जगत प्रसिद्ध कवि होमर का मूल नाम मेलसिग्नी था। जिसका मतलब था मेल नदी का पुत्र। लेकिन उनके दृष्टिबाधितता की वजह से लोगों ने उनका नाम होमर रख दिया। जिसका यूनानी भाषा में अर्थ हुआ 'अंधा'। आज भी यह मानसिकता कायम है। लोग नाम की बजाय विकलांग की शारीरिक दशा को आधार बना कर उसका नाम रख देते हैं। मसलन 'अंधा', 'लंगड़ा', 'लूला', 'बौना', 'काना', 'बौका', 'बहरा', 'पगलवा', 'कुबड़ा' इत्यादि। अगर कोई स्त्री विकलांग है तो उसके लिए भी इन शब्दों का स्त्रीलिंग रूप का प्रयोग करते हैं। हमारी भाषा, उसके शब्द और उनके मुहावरे भी विकलांगों के प्रति दुर्भावना से ग्रसित हैं। जाहिर है कि इनका निर्माण मनुष्यों ने किया। इसलिए इस तरह की भाषा समाज का ही अक्स है। "Twisted mind in the twisted body" – यानि जिसका शरीर विकृत या विकलांग होगा उसका मस्तिष्क भी विकलांग होगा।"[1] तुलसीदास लिखते हैं "काणे खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानी"[2] अर्थात कानों, लंगड़ों और कुबड़ों को कुटिल और कुचाली जानना चाहिए। उसमें भी स्त्री और खासकर दासी।

तुलसीराम ने अपनी आत्मकथा 'मुर्दहिया' में इस बात का जिक्र किया है कि उनके एक आँख में कुछ दिक्कत थी इसलिए लोग उसको 'कनवा' कहकर पुकारते थे। "पिता जी के बीच वाले भाई जो वरीयता क्रम में तीसरे नंबर पर थे, अत्यंत क्रोधी एवं क्रूर पुरुष थे। अकारण कोई भी व्यक्ति उनकी भद्दी-भद्दी गालियों का शिकार बन जाता। उनके दो बेटे एकदम उन्हीं जैसे क्रूर थे। वे सभी मुझे अक्सर 'कनवा-कनवा' कहकर पुकारते थे। घर में कई अन्य भी कभी-कभी ऐसा ही कहते थे, इसके अलावा यह कि कभी भी कोई वैसा कहने से मना नहीं कर पाता। यहाँ तक कि मेरी माँ भी सिसकियाँ भरते हुए चुप रह जाया करती थी, जिसका कारण था उन व्यक्तियों का क्रूर व्यवहार।"[3] जिसकी आँखें नहीं है उनके लिए दृष्टिबाधित और जो बोल नहीं सकते उनके लिए गूँगा-बहरा शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह प्रयोग अनुपयुक्त और अपमानजनक है । मिल्टन, हेलन केलर, होमर, लुई ब्रेल, रवीन्द्र जैन जैसे महापुरुषों के पास भले ही आँखें नहीं थीं लेकिन उनके पास दूरदृष्टि थी। वे दृष्टि से हीन कतई नहीं थे। इसलिए इनके लिए दृष्टिहीन की जगह दृष्टिबाधित शब्द ज्यादा उपयुक्त है। इसी तरह गूंगे बहरे की जगह

श्रुतिबाधित का प्रयोग होना चाहिए। "भारतवर्ष में अंधे आदमियों के लिए न नाम की जरूरत है न काम की। सूरदास उनका बना-बनाया नाम है और भीख माँगना बना-बनाया काम है।"[4]

विकलांगता व्यक्तिगत नहीं बल्कि सामूहिक समस्या है। आमतौर पर लोग विकलांगता को किसी व्यक्ति मात्र की समस्या बता कर अपना पल्ला झाड़ लेते हैं जबकि जब इस पर गहराई से विचार किया जाय तो यह समूह की समस्या है। विकलांगता की त्रासदी को कोई भले निजी तौर पर भोगता है परंतु उसकी अक्षमता समाज की संसाधन क्षमता को भी प्रभावित करती है। कई बार उसकी विकलांगता भी समाज की ही देन होती है। किसी बच्चे को जन्म के साथ पोलियो का टीका नहीं लगा तो उसके लिए क्या वह बच्चा जिम्मेदार है ? अगर इस वजह से उसका कोई अंग अविकसित रह गया तो क्या वह उस बच्चे की व्यक्तिगत समस्या है ? जबकि अगर समाज सबके लिए समान चिकित्सा व्यवस्था रखे तो विकलांगता की समस्या अनियंत्रित नहीं रहेगी। ऐसे बहुत सारे सवाल हैं जो हमें सोचने होंगे। विकलांगता प्राकृतिक भी होती है और दुर्घटनावश भी। इंसान अगर अपनी संतति के प्रति सजग रहे तो अधिकतर मामलों में बचा जा सकता है। यूरोपीय देशों में चिकित्सा सुविधा उच्च स्तरीय है इसलिए वहाँ विकलांगता के मामले कम हैं, जबकि इसके उलट भारत में विकलांगता ज्यादा हैं, तो क्या यह भारत के विकलांगों की व्यक्तिगत दिक्कत है ? अगर इंसान का जीवन स्तर सुधरता है तो इसके लिए पूरा समाज सहयोगी होता है। कई बार तो लोग अपनी सफलता के लिए खुद की मेहनत को श्रेय देते हैं लेकिन उसमें भी समाज की उतनी ही सहभागिता होती है। अगर यूरोप के विकलांग तकनीक की मदद से आमतौर पर हर वह काम कर सकते हैं जो एक सकलांग कर सकता है तो उस तकनीक के विकास लिए वहाँ का समाज जिम्मेदार है। हम अपने समाज में भी उस तकनीक के जरिये विकलांगों की ज़िंदगी बदल सकते हैं। अगर हम आज भी विकलांगता को अपनी समस्या नहीं मान रहे तो हम बहाना बना रहे हैं। एक सकलांग भी विकलांग के प्रति सामान रूप से जिम्मेदार है। समाज का प्रोत्साहन उनको फर्श से अर्श तक पहुँचा सकता है तो वहीं हतोत्साहित करके उसका मनोबल तोड़ भी सकता है। अगर समाज यह करने में सक्षम नहीं है तो कम से कम उनके प्रति अपनी दुर्भावना पर भी रोक लगा कर उनकी मदद कर सकता है। विनोद कुमार मिश्र ने इस विषय पर गहन अध्ययन किया है, वे कहते हैं कि "वस्तुतः विकलांग व्यक्ति में जन्म लेने वाले निराशा भाव के लिए स्वस्थ लोग उत्तरदायी हैं। जो एक अपंग को यह एहसास दिलाने के लिए अपराधी हैं कि वह शारीरिक या मानसिक तौर पर विकृत है। सहानुभूति में व्यक्त किए गए सुंदर शब्दों के माध्यम से भी वह उनमें हीनता भाव जागृत करते हैं।"[5]

एक सवाल यह भी उठता है कि किसे विकलांग माना जाय ? शारीरिक तौर पर असक्षम व्यक्ति को आमतौर पर विकलांग कहा जाता है। इसके लिए इंग्लिश में 'हैंडीकेप्ट','फिजिकली चैलैंज्ड' इत्यादि शब्द प्रयोग किया जाता रहा है। वैसे बाद में यह शब्द अस्वीकार हो गया। उसके बदले 'पर्सन विथ अ डिसेबिलिटी' प्रचलन में है। शारीरिक अक्षमता की बात की जाय तो एक मोटापा से ग्रस्त आदमी भी इसकी परिधि में आ जाएगा। वह भी बहुत सारे कामों को करने में सक्षम नहीं होता है। एक

बहुत लंबा आदमी भी कई जगह खुद को व्यवस्थित करने में एक विकलांग व्यक्ति की तरह ही असहज होता है। जबकि इनको विकलांग नहीं माना जाता। जब इनके साथ सामान्य व्यवहार हो सकता है तो बाकी विकलांग भी इसके हकदार हैं।

समाज निर्माण में विकलांगों का भी समान योगदान है। कल्पना कीजिये अगर बिजली न हो तो हमारी जिन्दगी ठप्प हो जाएगी। हमारे रात का जीवन तो बिजली के बिना बिल्कुल ही ठहर जाएगा। बिजली के आविष्कारक थॉमस अल्वा एडिसन भी विकलांग की श्रेणी में ही आते हैं। उनको बहरेपन की समस्या थी। बड़े वैज्ञानिक अलबर्ट आइन्स्टीन मानसिक विकलांग की श्रेणी में रखे जा सकते हैं। उनके सीखने की क्षमता कम थी। लेकिन उन्होंने सापेक्षता का सिद्धांत दिया। इस सिद्धांत की वजह से लोगों ने दुनिया को नए नजरिये से देखना शुरू किया। विकालांगों के जीवन को और बेहतर बनाने के लिए लुई ब्रेल के ब्रेल लिपि को याद किया जा सकता है। जिसने दृष्टिबाधित लोगों की दुनिया को अक्षरों से भर दिया। उनके लिए ज्ञान के दरवाजे खोल दिए। इस आविष्कार की वजह से आज दृष्टिबाधित लोग भी पढ़-लिख रहे हैं और सकलांग लोगों की तरह समान क्षमता से नौकरी कर रहे हैं। इसके अलावा जयपुर फुट और व्हीलचेयर ने भी उनकी क्षमता को बढ़ा दिया। स्टीफन हॉकिन्स हो या कोटा के बंसल क्लासेज के संस्थापक वी.के. बंसल इन्होंने व्हीलचेयर के सहारे अपना जीवन जिया और समाज के लिए क्रांतिकारी योगदान दिया। समाज को बस उनके प्रति संवेदनशील होने की जरूरत है बाकी का रास्ता वो खुद तय कर लेंगे, जैसा कई लोगों ने किया भी। "विकलांगता कोई चेचक या खसरे जैसी बीमारी नहीं है, अपितु एक ऐसी असमर्थता है जिसका समाधान एक विकलांग व्यक्ति के प्रति बाकी समाज के रवैये व दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। यदि ऊँचे भवनों में उनकी सुविधा के अनुसार रास्ते बनाए जाएँ, पुस्तकालय की संरचना में कुछ उनके अनुसार भी फेरबदल किया जाए और समाज थोड़ा उनकी जरूरतों के अनुकूल परिस्थितियाँ निर्मित करें व अधिक संवेदनशील हो तो यह समस्या उतनी बड़ी नहीं रह जाएगी।"[6] भारत सरकार ने विकलागों को पढ़ने के लिए अलग स्कूल खोले। बाद में जब ज्यादा जागरूकता आई तो यह महसूस किया गया कि विशेष स्कूल सही विकल्प नहीं है। सबका एक साथ पढ़ना समावेशी विकास के लिए जरुरी है।

एक ओर जहाँ भारतीय संविधान समानता का दावा करता है और जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा, लिंग इत्यादि के आधार पर भेदभाव की इजाजत नहीं देता है वहीं लम्बे समय तक विकलांगता के आधार पर भेदभाव को संविधान में कोई स्थान नहीं मिला। 16 दिसम्बर 2016 को यू.एन.सी.आर.पी.डी. की तर्ज पर हमारे यहाँ भी एक विकलांग अधिनियम बना। 1981 को 'विश्व विकलांग वर्ष', 1983-92 के दशक को 'विश्व विकलांग दशक' और 1993-2002 के दशक को 'एशियाई तथा प्रशांत देशों का विकलांगता दशक' के रूप में मनाया गया। भारतीय संसद ने भी 1995 में विकलांगों के समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण तथा पूर्ण सहभागिता अधिनियम (जिसकी जगह अब विकलांगों के अधिकारों का अधिनियम 2016 ने ले लिया है) पारित किया है। "13 दिसंबर 2006 को संयुक्त राष्ट्र के द्वारा

विकलांगों के अधिकारों से संबन्धित अभिसमय (अंतर्राष्ट्रीय संधि) केपी पारित किया गया, जिसे दुनिया के लगभग सभी देशों (जिसमें भारत भी शामिल है) ने अनुसमर्थित किया है।"[7]

4.2 प्राचीन समाज और साहित्य में विकलांगता

4.2.1 भारतीय समाज और साहित्य में विकलांगता

भारतीय पौराणिक ग्रन्थों में विकलांग पात्रों का चित्रण आमतौर पर खल पात्र के रूप में किया गया है। महाभारत में दृष्टिबाधित धृतराष्ट्र और रामायण में कुबड़ी मंथरा की भूमिका इस रूप में दिखाई गयी, जिससे पाठक के मन में इनके प्रति नफरत पैदा होती है, सहानुभूति या लगाव उत्पन्न नहीं होता। रामायण के अनुसार तो यह विधि का विधान है कि राम को वन जाना है और अंत में रावण का संहार करना है। यहाँ सवाल यह उठता है कि राम को वन भेजने की पटकथा कुबड़ी दासी मंथरा के हाथों ही क्यों लिखवाई गयी ? इसके लिए दासियों में भी किसी अन्य दासी का सहारा क्यों नहीं लिया गया ? आम तौर पर भारतीय समाज में विकलांग लोगों को दुष्ट, कपटी, षड्यंत्रकारी इत्यादि समझा जाता है। उनके बारे में ऐसी धारणा बना दी गयी है कि वह किसी और का सुख नहीं देख सकते। इसी मानसिकता का प्रभाव रामायण के लेखक पर भी है। आज भी शादी-ब्याह या अन्य शुभ कामों में लोग किसी विकलांग की सहभागिता से परहेज रखते हैं। उनको खलनायक के तौर पर प्रस्तुत करना बहुत सहज लगता है। इस वजह से सामाजिक जीवन में भी यह धारणा रूढ़ होती चली आई है। महाभारत में भी धृतराष्ट्र को पुत्रमोह से ग्रसित एक खलनायक राजा के तौर पर प्रस्तुत किया गया है। जिसने बेटे की गलतियों को जान बूझ कर अनसुना किया जो एक राजा के कर्तव्यों के खिलाफ था। उसने द्रौपदी का चीरहरण होने दिया, महाभारत का युद्ध होने दिया और अंत में भीम को गले लगाने के बहाने मारने की कोशिश की। महाभारत में धृतराष्ट्र बेबस नजर आते हैं। जिसने अंत तक सारे नीति को ताक पर रख कर यह कोशिश की कि उनके पुत्रों को गद्दी मिल सके। भले ही कई जगह सकलांग लोगों को भी ऐसे नकारात्मक चरित्र के रूप में पेश किया गया है लेकिन विकलांगों लोगों के हिस्से यह बार-बार आता है और सायास आता है। पौराणिक ग्रन्थों में आठ अंगों में विकृति वाले अष्टावक्र का जिक्र भी आता है। राजा जनक के दरबार में उसको देख कर दरबारी सब हँसने लगे थे। उसके बाद उन्होंने सारे दरबारी को 'चमड़ी देख कर पहचान करने वाला चर्मकार' कहकर संबोधित किया। बाद में उनके आत्मविश्वास और जवाब से सारे दरबारी लज्जित हुए थे।

प्राचीन समय में विकलांगों के प्रति उपेक्षा के साथ-साथ उदारता और सहानुभूति का दृष्टिकोण भी रहा है। कुछ धार्मिक ग्रंथों ने उनके प्रति सद्भाव दिखाया है। ऋग्वेद के अनुसार

"याभि: शचिभिवृषणा परावृज प्रान्ध, श्रोणं चक्ष्यप्नवे कृथः।

याभिर्वर्तिका ग्रसिताम पवतं तां भिरुषु, अतिभिश्तिना गतम्॥ (1.2.2.8)

अर्थात सृष्टि में जो भी अपंग, अंधे, लूले-लंगड़े, बहरे आदि हैं, वे समाज में घृणा के पात्र नहीं हैं। हमें उनके साथ सहृदयतापूर्वक मानवता का व्यवहार करना चाहिए। समाज से अपेक्षा है कि वह विकलांगों

के प्रति सद्भाव रखकर उन्हें शिक्षित व पुरुषार्थी बनाए।"[8] मुख्यधारा विकलांगों के प्रति कुछ अर्थों में उदार रही लेकिन उसे समान भाव से अपना नहीं सकी। उनके लिए अलग संस्कार का प्रावधान था। "प्राचीन भारत में एक विशेष प्रकार का 'उपनयन' संस्कार होता था, जो दृष्टिबाधित, बधिर और विकलांग युवाओं के लिए किया जाता था।... दृष्टिहीनों, बधिरों और शारीरिक रूप से विकलांग युवाओं को भोजन, कपड़ा और आश्रय दिया जाता था।"[9] चन्द्रगुप्त और अशोक के शासन में विकलांगों के लिए उल्लेखनीय काम किये गए। अशोक ने तो उनके कल्याण के लिए बाकायदा एक संस्था बनायी। चन्द्रगुप्त के शासित समय पर प्रो. आर.पी.दत्त ने लिखा है कि "कुलीनों और मकान मालिकों ने पाटलिपुत्र शहर में एक अस्पताल का निर्माण किया था जिसमें देश भर के सभी आश्रितों और विकलांगों को आवश्यक मदद दी जाती थी।"[10] पाश्चात्य विद्वान 'माइल्स' ने भारत और श्रीलंका में विकलांगों के लिए पुनर्वास सेवाओं की ऐतिहासिकता का सर्वेक्षण किया है। उन्होंने लिखा है कि "बौद्ध सम्राट अशोक ने तीसरी सदी ईस्वी पूर्व में विकलांगों तथा वंचित लोगों की देख-रेख तथा सेवा-सुश्रुषा हेतु पाटलीपुत्र (वर्तमान पटना) में संस्थान/आश्रम खोला था। बाद में चौथी सदी ईस्वी में श्रीलंका के तत्कालीन शासक बुद्ध दासा के द्वारा इस परंपरा को आगे बढ़ाया गया।"[11]

अठारहवीं सदी में पण्डित शुक्राचार्य ने 'शुक्रनीति' के अंतर्गत विकलांगों के लिए सामाजिक सुरक्षा और सुविधाओं की व्यवस्था की। "शुक्राचार्य के द्वारा अस्वस्थता, रुग्णता तथा अक्षमता की स्थिति में कर्मचारियों को तनख़्वाह दिए जाने की भी परंपरा थी।"[12] समाज उनके ऊपर कृपाभाव रखता रहा। विकलांग का जीवन समाज और शासक पर ही पूरी तरह निर्भर रहा। मनु ने भी लिखा है "एक राजा को हमेशा उपकार कार्य करते हुए विद्वान ब्राह्मण, किसी बीमारी से पीड़ित विकलांग, अनाथ और जिसने कुलीन परिवार में जन्म लिया है, को दान देना चाहिए।"[13] उन पर दया दिखाते हुए उनको दैनिक उपयोग की चीजें सहायतार्थ दी जाती थी। "दृष्टिहीनों, बधिरों और शारीरिक रूप से विकलांग युवाओं को भोजन, कपड़ा और आश्रय दिया जाता था।"[14] मुग़ल काल में भी शासक वर्ग विकलांगों के प्रति उदार ही रहा। विशेष अवसर पर मुग़ल काल में भी असहाय और विकलांग जनों की आर्थिक मदद की जाती थी और उन्हें सामजिक सुरक्षा दी जाती थी। लेकिन इसके लिए कोई व्यवस्थित प्रक्रिया नहीं थी। "मुगल शासकों में अकबर और शाहजहाँ ने असहाय और विकलांगजनों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने में मदद की थी, लेकिन ये सारे कार्य किसी खास अवसर पर कभी-कभार ही किये जाते थे। इसके लिए कोई प्रक्रियाबद्ध योजना नहीं थी।"[15] डॉ.एस.एन. गजेंद्र गडकर ने इवान्स की किताब के हवाले से एक फ़क़ीर पीर शाहद्दौला के बारे में लिखा है जो 1600 ईस्वी के आस पास सियालकोट में रहता था "वह (पीर) मानसिक रूप से विकलांग व्यक्तियों को अपने घर में रखता था, जिसके कारण लोग मानसिक रोग से ग्रस्त विकलांगों को शाहद्दौला का चूहा(Shah Daulas Mice) कहने लगे।"[16] अलग-अलग देशकाल में राजाओं ने विकलांगों के लिए राज्य की तरफ से सहायता प्रदान की। उनको राज्य की तरफ से सुविधा प्रदान की। उनके जीवन को संरक्षित करने की कोशिश की। उनको भी एक इंसान की तरह राज्य का हिस्सा समझा। "कालांतर में हिन्दू राजा काली शंकर घोषाल के द्वारा दृष्टिबाधितों तथा अन्य

वंचित तबके के लोगों के लिए बनारस (जिसे अब वाराणसी कहा जाता है) में 1826 ईस्वी में शरणगृह/आश्रम स्थल की स्थापना की गयी तथा नसीरुद्दीन हैदर नाम के व्यक्ति ने दृष्टि बाधितों तथा वंचित लोगों के लिए लखनऊ में 1831 ईस्वी में अनाथालय की स्थापना की ।"[17] प्राचीन समय में भले विकलांगों के प्रति सहानुभूति थी लेकिन उसमें सकारात्मकता नहीं नकारात्मकता थी । प्रसिद्ध चिकित्साशास्त्री चरक अपने ग्रन्थ 'चरक संहिता' में तो विकलांगता को पूर्व जन्म का पाप तक बतलाते हैं। विदेशी इतिहासकारों ने तो अलग ही रूप पेश किया है। हेनरी एव. केसलर ने लिखा कि "भारत में विकलांग बच्चों को गंगा में प्रवाहित कर दिया जाता था।"[18]

4.2.2 पश्चिमी समाज और साहित्य में विकलांगता

पश्चिम के यूनान और स्पार्टा में नवजात विकलांग बच्चों को मार दिया जाता था। प्राचीन रोम में पिता अपने त्रुटिग्रस्त बच्चों को पानी में डुबाकर या गला रेतकर मार सकता था। "हालाँकि भारत की टोडा जनजाति में भी बच्चियों की हत्या का चलन था, फिर भी कमजोर तथा विकलांग बच्चों को इससे मुक्त रखा जाता था।"[19] शिशु के असमान्य पैदा होने पर इस तरह की बाल हत्या समाज द्वारा जायज मानी जाती थी। इस हत्या का अधिकार सिर्फ पिता को था। "बेबिलोनियन्स ने विकलांगों को दरबार में प्रवेश पर पाबंदी लगा रखी थी।"[20] पूर्वी अफ्रीका के 'छग्गा' समुदाय में विकलांगों को भूत-प्रेत भगाने के काम में लगाया जाता था। "सूडान के 'जुकून' समुदाय में भी भूत-प्रेत को विकलांगता का कारण माना जाता था तथा ऐसे बच्चों को मरने के लिए छोड़ दिया जाता था।"[21] हालाँकि मध्यकालीन यूरोप में बहुत सारे विकलांगों ने खेतों में काम करके अपना गुजर-बसर किया। उनका पालन-पोषण पड़ोसियों के द्वारा किया जाता था। उनके साथ अच्छा व्यवहार होता था। उसी समय उनको शैतान का प्रतीक भी माना जाता था तथा उन्हें झाड़-फूँक करने वाले के पास ले जाया जाता था। "स्पार्टा में विकलांग बच्चों को पहाड़ों की गुफाओं से नीचे चट्टान पर गिराकर मार दिया जाता था।"[22] प्लेटो ने कहा "ऐसे व्यक्ति जो सामान्य ज़िंदगी नहीं व्यतीत कर सकता, उसके साथ मानव की तरह बर्ताव करना उचित नहीं, क्योंकि ऐसा व्यक्ति न तो अपने लिए तथा न ही राज्य के लिए उपयोगी होता है।"[23] अरस्तू ने भी कहा "अपूर्ण तथा अपाहिज का लालन-पालन नहीं होना चाहिए।"[24] प्लेटो विकलांग लोगों के हितों को लेकर भी सजग थे। "मानव समाज में विकलांगों का शोषण करना अथवा उन्हें जीवन जीने के समान अधिकार न देना, उनके प्रति घोर अन्याय है और यह असंवेदनशीलता का द्योतक है।[25]

4.3 अधिकारिक आंकड़ों में विकलांग

भारतीय जनसंख्या का 10 प्रतिशत विकलांग है। 2001 की जनगणना के अनुसार विकलांगों की संख्या 2.19 करोड़ थी जो 2011 में 22.4 प्रतिशत बढ़ कर 2.68 करोड़ हो गयी। इसमें 1.5 करोड़ पुरुष और 1.18 करोड़ महिलाएँ थीं। 2001 की जनगणना के अनुसार विकलांगता का 75 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में और 25 प्रतिशत शहर में पाया गया। कुल मिलाकर देश की 2.13 प्रतिशत जनता किसी न किसी प्रकार

की विकलांगता से पीड़ित थी। आंकड़ों के अनुसार अनुसूचित जाति में विकलांगता की दर सामान्य जनसंख्याँ की अपेक्षा अधिक थी।

2011 की जनगणना के अनुसार भारत देश में विकलांग लोगों की कुल संख्या 2 करोड़ 68 लाख है। यह देश की कुल आबादी का 2.21 प्रतिशत है। इसमें 2.41 प्रतिशत पुरुष और 2.01 प्रतिशत स्त्री है। इसमें 1 करोड़ 60 लाख लोग ग्रामीण क्षेत्र में जबकि 82 लाख लोग शहरी क्षेत्र में निवास करते हैं। (स्रोत- सेंसस ऑफ इंडिया ऑन डिसेबिलीटी, 2011) विश्व के अन्य देशों में विकलांगता को लेकर सरकार बहुत जागरूक है। वहाँ विकलांगता को विस्तृत फ़लक पर स्वीकार किया जाता है और उसी आधार पर उनकी गणना भी की जाती है। इसलिए वहाँ विकलांगता प्रतिशत भी ज्यादा है। जापान में 29 प्रतिशत, अमेरिका और इंग्लैंड में 19 प्रतिशत, कनाडा में 14 प्रतिशत, रूस में 9 प्रतिशत, चीन में लगभग साढ़े छह प्रतिशत विकलांग लोग रहते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन और विश्व बैंक के 'वर्ल्ड रिपोर्ट ऑन डिसेबिलीटी 2011[26] के अनुसार विश्व की कुल आबादी का 15 प्रतिशत हिस्सा किसी ना किसी तरह से विकलांगता से पीड़ित है।

भारत में विकलांगता के प्रकार और विकलांग

विकलांगता के प्रकार	व्यक्ति	पुरुष	महिलाएं
कुल	2,68,10,557	14986202	11824355
देखने में	5032 463	2638516	2393947
सुनने में	5071007	2677544	2393463
बोलने में	1998353	1122896	875639
गतिशीलता में	5436604	3370374	2066230
मानसिक विक्षिप्तता में	1505624	870708	634916
मानसिक कमजोरी	722826	415732	307094
अन्य	4927011	2727828	2199183
एकाधिक विकलांग	2116487	1162604	953883

स्रोत जनगणना 2011[27]

4.4 हिंदी कहानियों में विकलांग जीवन

विकलांगता को लेकर हिंदी कहानी में प्रचुर लेखन हुआ है | विकलांगता एक विस्तृत विषय है जो कई स्तरों पर विभाजित है | हिंदी कहानी में भी विकलांगता के विविध रूप देखने को मिलते हैं | भले विकलांगता से एक खास अर्थ ध्वनित होता है लेकिन शारीरक विकलांगता और मानसिक विकलांगता दोनों के बीच कई तरह के अंतर हैं | दोनों की परिस्थिति अलग-अलग है लेकिन दोनों का संघर्ष साझा है |

"कुष्ट रोग से पीड़ित हो या मंद बुद्धि लाचार,
सब को मिले बराबर अवसर और सभी अधिकार,
इसकी चिंता में, समाज के संग चले सरकार।
आओ साथी, करुणा का हम दुनिया में विस्तार करें।
नि:शक्तय हमारे ही परिजन है, इनका हम सम्मान करें।"[28]

साहित्य और समाज के अन्य विमर्श अपनी भिन्नता के परिचायक बिन्दुओं पर केन्द्रित रहते हैं जबकि विकलांग विमर्श किसी भी प्रकार की बिन्दुओं से रहित एक समाज का स्वप्न देखता है। इसी वजह से एक विकलांग जीवन भर समाज के लिए अपनी उपादेयता सिद्ध करने में लगा रहता है। हिंदी में विकलांग लोगों को केंद्र में रख कर साहित्य रचना की पुरानी परम्परा रही। हिंदी के दो बड़े रचनाकार 'जायसी' और 'सूरदास' खुद शारीरिक विकलांगता के शिकार थे। प्रेमचंद का उपन्यास रंगभूमि उन शुरुआती रचनाओं में है जिसने सूरदास के माध्यम से एक विकलांग को दया और सहानुभूति के बजाय संघर्ष का प्रतीक बनाया। हिंदी कहानियों में भी विकलांगों की समस्या को गंभीरता से उठाया गया है। पिछले कुछ सालों से विकलांग जीवन का दायरा इतना विस्तृत हो गया कि उसने एक विमर्श का रूप ले लिया। विमर्श के दायरे में विकलांगों पर विस्तार से चर्चा शुरू हुई। हिंदी कहानी उसी चर्चा को आगे बढ़ाती है।

4.4.1 हिंदी कहानियों में शारीरिक विकलांगता

समाज की उपेक्षा और चिकित्सा सुविधा का अभाव एक विकलांग की प्रकृति प्रदत्त समस्या को गंभीर बना सकती है। विकलांगता जब व्यक्तिगत समस्या न रह कर सामूहिक समस्या बन जाती है तब यह माना जा सकता है कि हम उससे लड़ने के प्रति गंभीर हैं। लेकिन भारतीय समाज में इस जागरूकता और व्यवहार का अभाव है। चन्द्रकिरण सौनरैक्सा की कहानी 'खुदा की देन' की नज्जो का शरीर छज्जा के नीचे दब जाने के कारण विकलांग हो गया। घर की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है इसलिए उसका ठीक से ईलाज भी नहीं हो पाया। जिस घर में उसका परिवार रहता है वह लाला राम भरोसे की पुरानी हवेली थी। मकान की हालत जर्जर थी। लाला को उस मकान से कोई फायदा नहीं था इसलिए उसकी मरम्मत नहीं करवाता था। इसलिए छज्जा गिरा और रज्जो उसमें दब गयी। उसके बाद एक खटोला पर उसका जीवन सिमट गया। उसने भी सब कुछ से खुद को काट लिया। वह पूरी तरह से अजनबीयत की

शिकार है। पूरी कहानी में वह लगभग संवादविहीन है। लोग उसके मरने की दुआ मांगने लगे। सेठ को उसका खटोला भी खटक गया तो उसे नीम के पेड़ के नीचे डाल दिया गया। उसकी दयनीयता देख कर लोग उसे भीख देने लगे। लोगों ने उसे भिखारी समझ लिया। एक दिन वह आँधी पानी में भींग कर वह बीमार पड़ी और मर गयी। विकलांगता भी कई प्रकार की होती है। रज्जो की विकलांगता कतई प्राकृतिक नहीं है। व्यवस्था द्वारा ना उसे मजबूत छत मिली ना ही सही ईलाज। उसका आजीवन खामोश रह जान ही उस व्यवस्था से विद्रोह है। तिस पर से उसकी माँ के लिए उसका मर जाना इसलिए पीड़ादायक है क्योंकि वह कमाऊ हो गयी थी। "अरे बाबू, हमारे लिए तो वो खुदा की देन थी। मरने वाले दिन भी, कटोरे में बारह आने पड़े थे। हाय! नज्जो...मेरी बच्ची..."[29] एस.जी.एस. सिसोदिया 'निसार' की कहानी 'नई राह' में एक स्वस्थ बच्चा चेचक की वजह से अपनी आँख की रोशनी खो बैठता है। उसके माँ-बाप निराश हो जाते हैं क्योंकि बेटा वर्षों बाद एक उम्मीद की तरह पैदा हुआ था। एक दिन उसके पिता की मुलाकात एक आत्मनिर्भर दृष्टिबाधित से हो जाती है। फिर उसके पिता भी उनकी प्रेरणा से उसका दाखिला दृष्टिबाधित स्कूल में करवा देते हैं और उसकी जिन्दगी बदल जाती है। माँ-बाप और समाज का सहयोग हो तो एक दृष्टिबाधित भी सामान्य जीवन जी सकता है। शिवानी की कहानी 'अपराजिता' में भी स्कूल डॉ. चंद्रा को दाखिला देने से मना कर देता है। स्कूल अपनी जिम्मेदारी से पल्ला झाड़ लेता है। लेकिन घर वालों के सहयोग से डॉ.चंद्रा सफलता प्राप्त करती है। सुनील कौशिक की कहानी 'अँधेरे का सैलाब' में भी एक बच्चा सड़क दुर्घटना में अपने आँखों की रोशनी गँवा बैठता है। एक हँसता मुस्कुराता बच्चा अचानक मुरझाये फूल में बदल जाता है। कहानी विकलांग जीवन के प्रारंभिक समस्या पर बात करती है। इस पूरी प्रक्रिया में उसका परिवार परेशान भी है और उसके साथ खड़ा भी है।

किसी विकलांग बच्चे या व्यक्ति के लिए सबसे महत्वपूर्ण होता है कि उसके करीबी लोग उसको किस प्रकार से देखते हैं ? उनके प्रति उनका व्यवहार कैसा रहता है ? अगर पारिवारिक सहयोग हो तो उनके लिए खुद से और बाहर से लड़ना आसान हो जाता है। पानू खोलिया की कहानी 'अन्ना' में पिता बसंत की पूरी ज़िंदगी अन्ना के इर्द-गिर्द ही घूमती है। हालाँकि माता उमा कई बार धैर्य खो बैठती है लेकिन बसंत ने अपनी पूरी ज़िंदगी अन्ना के लिए समर्पित कर रखी है। कई बार उसे अपने दूसरे बच्चों का खयाल आता है तो उसे लगता है कि वह अन्ना की वजह से वह उनके हिस्से की खुशी छीन रहा है जबकि उनकी कोई गलती नहीं है। "इस लड़की का मोह निकाल दो उमा, बिल्कुल निकाल दो। और भी दो बच्चे हैं, उनका भी ऋण हम पर है। फिर हम दोनों भी इंसान का जन्म लेकर आए हैं। इस घर में अन्ना ही तो सब कुछ नहीं है। इस लड़की ने पाई-पाई अपना कर्ज वसूल कर लिया है और अब यह दूसरों का हक मार रही है। कोई बात है ? मत अन्ना का जिक्र करना अब ! पड़ी रहने दो। ठीक होना होगा तो हो जायेगी, ना...सोच लेंगे..."[30]

कुसुमलता मलिक की लम्बी कहानी 'उपहार' समाज की उस मानसिकता पर चोट करती है जो यह मानती है कि विकलांगों का कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं होता बल्कि उसकी भूमिका रिक्त स्थान की पूर्ति भर है। एक दृष्टिबाधित लड़की सामाजिक व्यवस्था और उसके कुचक्र का बहुत शातिर तरीके से शिकार बन जाती है। व्यवस्था ऐसी बना दी जाती है कि विजया को कई बार यह एहसास भी होने लगता है कि उसके साथ अच्छा हो रहा है। विजया में सिर्फ एक तथाकथित कमी है कि वह जन्मांध है। इसके अलावा वह सभी कामों में सक्षम है। दिल्ली के एक अच्छे स्कूल से उसकी पढाई हुई है। उसने स्नातक भी किया है। उसके लिए आगे अपार संभावनाएं हैं। विजया की बड़ी बहन जया और उसके जीजा विक्रम को कोई संतान नहीं है जबकि शादी के सात साल हो चुके हैं। विक्रम के परिवार वाले दूसरी शादी करने को कह रहे हैं। जया का घर बसा रहे इस नियत से विजया और विक्रम की शादी कर दी जाती है। कुछ शंकित होकर भी विजया यह ब्याह कर लेती है। "यह अंधापन! जीवन के लिए कितना बड़ा अभिशाप है। मैं तो बस एक पत्थर की मूरत हूँ। यह कोई भी नहीं जानेगा कि यहाँ भी दिल धड़कता है। फिर इच्छा-अनिच्छा, पसंद- नापसंद की बात ही क्या ? जया दीदी से तो मैं अधिक खुबसूरत हूँ, ज्यादा पढ़ी-लिखी हूँ फिर भी मेरी दुर्दशा ? वे तो कभी बारहवीं तक की परीक्षा भी पास नहीं कर सकीं। साँवली भी हैं तब भी आँख भर होने से उनका महत्व है उनकी सब को चिंता है , इस घर की लाडली बेटी जो ठहरी। उनका मान- सम्मान है। विजया का क्या है ?"[31] बच्चे के नाम पर जुड़वाँ बच्चे हो जाते हैं। एक बेटा और एक बेटी। विजया की जीवन शैली और उसका समर्पण विक्रम को भा जाता है और वह धीरे-धीरे विजया के करीब खिंचता चला जाता है। भले इस शादी में जया की सहमति हो लेकिन वह यह सब कुछ बर्दास्त नहीं कर पाती। एक बार पति की अनुपस्थिति में उसने नंगा तार बाथरूम में रख दिया जिससे विजया को करेंट लग गया और वह मर गयी। सामाजिक व्यवस्था देखिये लोगों ने विजया की इस बात की सराहना करते हुए उसको याद किया कि जाने से पहले जया का गोद भर गयी। एक दृष्टिबाधित व्यक्ति की नियति सिर्फ खाली जगह भरने की होती है। उसका भी अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व हो सकता है इसकी परवाह समाज नहीं करता।

भीष्म साहनी की कहानी 'कण्ठहार' उस परिवार का यथार्थ बयान करती है जिसमें एक विकलांग बच्ची पल रही है। बच्ची सुषमा दोहरे भंवर में है। एक तो वह लड़की है और ऊपर से विकलांग। ऐसा नहीं है कि माँ-बाप उसको लेकर संवेदनशील नहीं है, लेकिन बार-बार उनका धैर्य भी टूट जाता है। माँ-बाप अपनी भी भरपूर जिन्दगी जीना चाहते हैं खास कर माँ। कई बार वह पार्टी में बन-ठन के जाना चाहती है, लोगों से प्रशंसा पाना चाहती है, अपना एश्वर्य प्रदर्शित करना चाहती है लेकिन सुषमा उसके लिए तथाकथित तौर से रुकावट बन जाती है। मेहमानों तक उसके चिल्लाने- रोने- कुछ तोड़ देने की आवाज पहुँचने का डर मालती और रमेश को सताता रहता है। इस वजह से वह कई बार वे लोग सुषमा के साथ आदर्श व्यवहार नहीं करते। "मालती के मन में यह विश्वास बैठ गया था कि किसी दैवी अभिशाप के रूप में सुषमा उसके जीवन में उतरी है, कि वह उस भयावह जन्तु की तरह उसे यातना पहुँचाने के लिए ही उसके जीवन में आई है। डर, घृणा और आतंक से वह छटपटाने लगी थी और उसकी

बेटी उसे सचमुच ही कोई अमानवीय जन्तु लगने लगी थी, जिसकी बड़ी-बड़ी आँखें सारा वक्त घूरती रहती थी।"[32] उसके इलाज की भी भरपूर कोशिश हुई। आखिरी वक्त पर एक तिब्बती महिला डॉक्टर ने जरुर उम्मीद जगाई लेकिन वह भी सकारात्मक परिणाम तक नहीं पहुँच पायी। कहानी समाज के एक कड़वे सच को सामने रखती है। हमारे यहाँ इस तरह की परिस्थितयों में सहज होने की जागरूकता नहीं है। कोई परिवार अपने विकलांग बच्चे को पार्टी से क्यों दूर रखना चाहता है ? उसे मेहमानों के सामने अपने बच्चे को ले जाने में क्या शर्म है ? मैंने कुछ दिन पहले एक व्हाट्सअप पर एक विडियो देखा जिसमें पति के कमर से नीचे का हिस्सा कटा हुआ है और पत्नी का एक हाथ ठूंठ है। पत्नी ने अपनी पीठ पर एक टोकरा रखा है और जहाँ जाती है अपने पति को साथ लेकर जाती है। पीठ के पीछे से पति अपने मजबूत हाथों से पत्नी का सहयोग भी करता है। कहने को तो इस वीडियो में विशेष कुछ नहीं है लेकिन उस मानसिकता को दर्शाता है जो अपनी कमजोरियों को छुपाने के बजाय उसे सहज रूप में प्रदर्शित करते हैं और उसे अपनी मजबूती बना लेते हैं। सुषमा भी बाहर की दुनिया देखना चाहती है, घूमना चाहती है लेकिन उसके माँ-बाप उसे बहार नहीं ले जाते। वह अन्दर- अन्दर कुढ़ती रहती है। वह गुस्से में कह भी देती है "तुम दोनों में से कोई रोगी होगा, जिससे मैं ऐसी पैदा हुई हूँ।"[33] माँ-बाप के व्यवहार में बदलाव भी आता रहता है। कभी प्यार तो कभी बोझ समझने वाली प्रवृतियां। जब उसकी हालत ख़राब हो जाती है तो वे लोग उसके नाम से दान करवाना चाहते हैं, अस्पताल में कमरा बनवा देना चाहते हैं और भी दान पुण्य करना चाहते हैं। अधिकतर भारतीय परिवार इसी तरह के द्वन्द में जीते हैं।

सूर्यबाला की कहानी 'फरिश्ते' एक साथ कई जगह प्रहार करती है। भारतीय समाज में फैले सामंतवाद का नंगा रूप इस कहानी में आया है। 'मटरूआ' कहानी का केंद्रीय पात्र है। उसके बाप ने अपने मालिक की खातिर हत्या का आरोप अपने ऊपर ले लिया। मालिक ने उसे आश्वासन दिया कि जल्द ही तुमको जेल से छुड़वा लूँगा लेकिन ऐसा हुआ नहीं। मटरुआ और उसकी माँ बाबू साहब के गुलाम बन कर रह जाते हैं। उसका काम सिर्फ बाबू साहब के बेटे कुन्नू के साथ खेलना और उसे खुश रखना था। जाहिर सी बात है उसे हर खेल में हर बार कुन्नू बाबू से हारना था। "..गेंद फेंकना आसन बात नहीं भईया जी। हमेशा संभालकर, चौकस होकर फेंकना पड़ता है कि कुन्नू बाबू के हाथ-पैर या माथे पर न लग जाये। बहुत तेजी से न मार दूँ। ज्यादा धीरे से भी नहीं। बस ऐसी कि गेंद जाकर कुन्नू बाबू के बल्ले से आपसे आप टकराये और ऐसे टकराये कि कुन्नू बाबू हुमककर बल्ला मारें तो दूर निकल जाये। जब दूर निकल जाती है तो कुन्नू बाबू खुश होकर चिल्लाते हैं...कुन्नू बाबू का खेल देखकर बीबी जी खुश होती हैं, और मेरा खेल देखकर माँ।"[34] गुलामी की घुटती जिन्दगी जी रहे मटरूआ का मन कभी-कभी उस एकरसता को तोड़ने के लालायित हो उठता है। "मेरा मन करता है कि एक बार, सिर्फ एक बार वह लाल गेंद हाथों की मुट्ठी में कसकर पूरी ताकत से फेंककर देखता- मेरी गेंद आखिर कहाँ तक जा सकती है- सिर्फ यह जानने के लिए कि मेरे हाथों में आखिर कितना दम है।"[35] सामन्ती पारिवारिक परिवेश में पल रहे कुन्नू बाबू के अन्दर इस बात की समझ नहीं है कि क्या गलत है क्या सही। एक तो बचपना ऊपर से संस्कार में मिला रौब। वह जामुन तोड़ने पेड़ पर चढ़े मटरूआ को डाली हिलाकर जमीन

पर गिरा देता है। गुलामी और मज़बूरी के बीच फँसा मटरूआ विकलांग हो जाने के बाद भी सीधे-सीधे किसी पर आरोप नहीं लगाता। वह जीवन किसी तरह काट लेने को अभिशप्त है। "..मैंने उसे समझाया कि एक आँख से भी उतना ही देख सकते हैं जितना दूसरी से...और पैर के लिए तो डॉक्टर लोगों ने कहा ही है कि हड्डी जुड़ जायेगी और एक पैर से भचक-भचक कर आराम से जिन्दगी बसर कर सकता हूँ।"[36] इस कहानी का सबसे मार्मिक पक्ष वह है जब कुन्नू बाबू सबके सामने मचक-मचककर मटरूआ के लंगड़ा होने का मजाक बनाता है। सब हँसते हैं, उसके साथ मटरू की माँ और खुद मटरूआ भी हँसता है। लेकिन यह हँसी मालिक के नाराजगी से बचने के लिए हैं। बाहर-बाहर वह गुलाम जरुर हैं लेकिन उनके अन्दर एक विद्रोह भी है जो बेबस है। "...लेकिन सबके जाने के बाद मैंने देखा कि माँ अपनी सूखी हथेलियों में लुगरी के छोर से चेहरा ढाँपे हिलक-हिलककर रोती जा रही थी..और...मैं समझता था, वह भी सबके साथ हँस रही थी।"[37]

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' की कहानी 'खितीन बाबू' एक निम्नमध्यवर्गीय विकलांग क्लर्क के जिजीविषा की कहानी है। कथावाचक ने जब उसे पहली बार देखा तो उसकी एक आँख और एक हाथ गायब था। आँख चेचक की वजह से ख़राब हो गयी तो पैर पेड़ पर से गिरने के कारण टूट गया था। लेखक जब अगली बार मिले तो रेल दुर्घटना में उनकी एक टांग भी गायब हो चुकी थी। फिर अगली मुलाकात में बाँह और फिर धीरे-धीरे सिर्फ धड़ बच गया। दोनों हाथ नहीं, दोनों टांग नहीं, एक आँख बची रही। नियति ने उनसे सब कुछ छीन लिया लेकिन जीने की जो ललक और उत्साह उनके अन्दर था वो बना रहा। "देखा आपने, कितना व्यर्थ बोझा आदमी ढोता चलता है ? मैंने टांसिल कटवाए थे, कोई कमी नहीं मालूम हुई, एपेन्डिक्स कटवाई, कुछ नहीं गया, केवल उसका दर्द गया। भगवान औघड़दानी है न, सब कुछ फालतू देते हैं- दो हाथ, दो कान, दो आखें। अब जीभ तो एक है, आप ही बताइए, आपको कभी स्वाद लेने के साधन की कमी मालूम है?"[38]

विष्णु प्रभाकर की कहानी 'दृष्टिबाधित' पूरी तरह विकलांगों पर केन्द्रित शुरुआती कहानी है। शुरूआती कहानीकारों ने विकलांग पात्रों को सहानुभूति की नजर से देखा है। उसे भी सामान्य इंसान बताने की कोशिश की। आज की विकलांग पीढ़ी इस सहानुभूति से चिढ़ती है। उन्हें बराबर का अधिकार चाहिए दया नहीं। बिष्णु प्रभाकर की कहानी दृष्टिबाधित विकलांगों के जीवन में किसी बदलाव की बात नहीं करती बस इतना करती है कि जो लोग उसे मात्र एक नौकर मानते थे उसे कथावाचक ने एक सामान्य इंसान सा सम्मान दिया। सूर्यबाला की कहानी 'फरिश्ते' में जिस तरह मटरूआ पूरी ताकत से कुन्नू बाबू को गेंद फेंककर उस एकरसता को तोड़ना चाहता है जिसमें वह उकता गया है उसी तरह के उकताने का भाव या उससे निकलने की हल्की चाह बिष्णु प्रभाकर की कहानी दृष्टिबाधित के मुख्य पात्र 'खेतिया' में है। "लोग कहते हैं देश आजाद हो गया है, पर बाबू बिसनु, मैं तो वही हूँ।"[39] खेतिया कथावाचक के मामा का मुफ्त का नौकर था। पेशे से वह मामा के ऑफिस में पंखा-कुली था। ऐसे लोग अपने मालिक को खुश रखने के लिए उनके घर जाकर मुफ्त में उनका काम कर दिया करते थे। इसका

उसको फायदा भी मिला जब अचानक से बिजली आ जाने के बाद उसकी नौकरी चली गयी। पंखे अब बिजली पर चलने लगे थे। लेकिन खेतिया को बाबू साहब की कृपा से पेंशन और घर का काम करने के एवज में पगार भी मिलने लगी। यों तो उसका जीवन कुछ विशेष नहीं था लेकिन एक दृष्टिबाधित के नजरिये से अगर इस कहानी को देखें तो परिदृश्य बदल जाता है।

मैत्रयी पुष्पा की कहानी 'सहचर' अंत-अंत तक पति-पत्नी के एक शानदार प्रेम कहानी में बदल जाती है। कहानी एक ऐसी लड़की की है जिसने अपनी छोटी जिन्दगी में बड़ी-बड़ी मुसीबतों का सामना किया। छोटी उम्र में माँ-बाप मर गए। पिता जिलाधीश थे। चाचा ने पाला-पोसा लेकिन जैसी जिंदगी उसकी पहले थी अब वैसी नहीं रही। अचानक से वह शहर के वातावरण से गाँव के वातावरण में आ गयी। गाँव के स्कूल से पढ़ी। कई बार जिलास्तरीय प्रतियोगिता में अपने पिछड़े गाँव का नाम रोशन किया। कम उम्र में शादी एक साधारण आदमी से हो गयी। ससुराल में बीमार पड़ी, पैर का जख्म पैर काटने पर जाके खत्म हुआ। लड़के के पिता ने विकलांग बहू को स्वीकार नहीं किया और बेटे की शादी दूसरे जगह तय कर दी। लड़का बारात से भाग कर अपनी बहू के पास पहुँच गया। एक दिन लड़के का पिता बेटे को सुनार के दुकान पर देखता है। नफरत के मारे वह उससे बात तो नहीं करता लेकिन बाद में सुनार से जाके पूछता है कि वह क्यों आया था ? सुनार ने जो कहा वही इस कहानी की सबसे मार्मिक पंक्ति है- "जाए बेंच गऔ बंशी, कह रऔ कें वौ छबीली कौ पाँउ बनवावे कें लाने पूना जारऔ।"[40] कहानी में जिस लड़के बंशी को बुद्धू बताया गया है उसके अन्दर अपनी पत्नी को लेकर अपार संवेदना है। माँ-बाप पत्नी के प्रति लगाव देखकर उसका मजाक उड़ाते हैं। जब बीमार पत्नी को डॉक्टर के पास ले जाना होता है तो उसे नहीं ले जाते। जब पत्नी का पैर कट जाता है तब उसकी मर्जी के बगैर उसकी शादी कर दी जाती है। लेकिन अंत-अंत तक वह विद्रोह कर देता है और अपनी पत्नी के पास भाग जाता है। वह अपनी पत्नी के लिए इतना समर्पित है कि वह अपनी आरसी को बेच कर उसका नकली पैर लगवाना चाहता है। समाज में जिस व्यवहारिकता की सबसे अपेक्षा की जाती है अगर वह किसी में कम है तो उससे काबिल नहीं माना जाता। पारम्परिक सोच यह है कि पत्नी के साथ ज्यादा वक्त बिताने वाला या पत्नी की देखभाल करने वाला मौगा है। कई बार इस तरह की असंवेदनशीलता जानलेवा भी हो जाती है। देखभाल के अभाव में ही बिजली का पैर ख़राब हो जाता है और उसे काटना पड़ता है। एक विकलांग पत्नी और एक संवेदनशील पति के प्रेम की यह कहानी एक उच्च मानवीय बोध को स्थापित करती है।

अरुण यादव की कहानी 'परफेक्शनिस्ट बाबू' एक ऐसे मध्यवर्गीय परिवार की कहानी है जिसमें अचानक एक विकलांग बच्चे का जन्म हो जाता है। जाहिर तौर पर ऐसे परिवार में इस तरह का जन्म अशुभ माना जाता है। पिता एक सरकारी विभाग में क्लर्क है जो किसी भी काम को आधे-अधूरे मन से नहीं करता। इसलिए ऑफिस में उसका नाम परफेक्शनिस्ट बाबू है। इसी वजह से वह अपनी इस 'अधूरी' संतान को देख कर भड़क जाता है- "उन्हें लगा कि संतान के लिए सात वर्ष की तड़प ने संध्या को पागल कर दिया है, तभी तो इस लंगड़े को जीवन दान दे रही है।"[41] वह इस हालत में पहुँच जाता है

कि वह अपने पुत्र का गला दबा देना चाहता है। लेकिन सोये हुए अपने पुत्र और पत्नी के चेहरे की संतुष्ट आभा उसे परफेक्ट होने का आभास देती है इसलिए वह रुक जाता है। फिर धीरे-धीरे बच्चे से उसकी आत्मीयता बढ़ती जाती है। अपने पसंदीदा डिस्कवरी चैनल पर एक दिन स्टीफन हॉकिन्स का जीवन संघर्ष और उसकी उपलब्धियाँ उनकी सोच को बदल देती है। अपने बच्चे को लेकर रात में जो उनको बुरे-बुरे सपने आते थे वह अब उम्मीद में बदल जाते हैं।

विकलांगों को लेकर हमने एक नकारात्मक छवि गढ़ी हुई है। उस उनकी योग्यता को स्वीकार नहीं कर पाते। उसके अक्षमता का मज़ाक बनाते हैं और उसकी सक्षमता पर शक करते हैं। सुधा की कहानी 'सकलांग' में लोग उसे लंगड़ा मास्टर कहते थे तो यदुनाथ सिंह उसे हिकारत से मस्टरवा कहते थे। मास्टर साहब अपने बच्चों को लेकर बहुत जागरूक रहे। अंततः उनके तीनों बच्चे सफल हुए। दो का चयन प्रशासनिक सेवा में हुआ तो एक डॉक्टर बना। यदुनाथ के सारे बच्चे अयोग्य निकल गए । यदुनाथ तब भी अकड़ में ही रहा उसने तब भी मास्टर साहब को इज्जत की नजर से नहीं देखा। उसने तो मास्टर साहब की बेटी के भारतीय प्रशासनिक सेवा में चयन होने पर भी मज़ाक में उड़ा दिया "बेचारी! अब सारी ज़िंदगी मंत्रियों की जी-हुज़ूरी करते बिताएगी।"[42]

उमाशंकर चौधरी की कहानी 'कंपनी राजेश्वर सिंह का दुख' सामंती समाज के कई परतों को खोलता है। बेटे की चाह ही इस कहानी की मूल समस्या है। बेटे की चाह में पैदा हुआ विकलांग बेटा भी कामेश्वर सिंह को मंजूर नहीं। उसे 'स्वस्थ' बेटा चाहिए। जब राजेश्वर का जन्म हो जाता है तब पिता की सारी मुराद पूरी हो जाती है। पहले से उपेक्षित विकलांग बेटा नर्मदेश्वर और लगातार उपेक्षित होता चला जाता है। सब उसे लंगड़ा बोलते हैं। यहाँ तक कि पिता भी। "लँगड़ा क लँगड़ा नांय त कि पहलवान बोलियै।"[43] विकलांग बेटे को भी बुरा नहीं लगता था क्योंकि उसने इसे अपनी नियति मान लिया था। बहन के सहयोग से उसने पढ़ाई जारी रखी और एक दिन शहर के कॉलेज में प्रोफेसर बन गया। राजेश्वर को सात बेटी के बाद भी कोई लड़का नहीं हुआ। तथाकथित रूप से वंश को बढ़ाने के लिए कोई नहीं था। पिता ने भी अपना ध्यान छोटे बेटे से ज्यादा अपने विकलांग बेटे पर देना शुरू किया। विकलांग बड़े भाई ने ही छोटे भाई की सभी बेटियों की शादी की। अंत समय में छोटे भाई ने अपने बड़े भाई से उसका एक बेटा मांग कर 'बेटा' की अपनी मुराद पूरी की। उसी बेटे ने उसको गंगाजल पिलाया और मुखाग्नि दी। पूरी कहानी में बेटे की चाहत और बेटी से नफरत भरी पड़ी है। दोनों पीढ़ी एक ही समस्या से जूझ रही है। विकलांग बेटा नर्मदेश्वर खुद को कमतर माने जाने और उपेक्षित किए जाने के बावजूद परिवार का मजबूत सहारा बनता है। एक जवां मर्द की जो छवि समाज ने गढ़ रखी है नर्मदेश्वर उसको तोड़ देता है। एक विकलांग भी सक्षमता से परिवार और समाज का नेतृत्व कर सकता है। इसी तरह जब 'मछुआरे की लड़की' कहानी में नर्मदा के बाढ़ में हजारों-लाखों लोग फँस जाते हैं तब सरस्वती अपने मछुआरे बाप से विद्रोह करके एक लड़की डोंगी लेकर जाती है और सब लोगों को सुरक्षित वापस ले आती है। इस वजह से गणतन्त्र दिवस पर उसे दिल्ली में राष्ट्रपति के हाथों सम्मानित किया जाता है। कहानी विकलांगों की

असीमित क्षमता को बताती है। लोग उस लड़की सरस्वती को उसके नाम से नहीं बल्कि 'लुलिया' नाम से बुलाते हैं। जबकि एक स्वामी जी ने उसे शांकरी सुता' नाम दिया था। वह चाहती है की दुनिया उसे इसी नाम से पुकारे। बचपन में उसके दाहिने पैर पर बड़ा सा पत्थर गिर गया था। पैर बुरी तरह कुचल गया। डॉक्टर ने पैर काटा तो नहीं लेकिन वह किसी काम के लायक भी नहीं रहा। तभी से वह लुलिया कहाने लगी। इसके बावजूद उस लड़की ने अकेले अपने दम पर पूरे परिवार का भरण-पोषण किया। अदम्य साहस के साथ जीवन जिया। सामजिक उपहासों की परवाह किये बिना अपने धुन में रमी रही। सरस्वती की खासियत यह रही कि उसने कभी एहसास ही नहीं होने दिया कि वह विकलांग है। जिस काम को करने से सकलांग लोग हिचक रहे थे उसको सरस्वती ने बिना डरे कर दिया। उमाशंकर चौधरी की कहानी 'कंपनी राजेश्वर सिंह का दुख' का नर्मदेश्वर और विनोद कुमार वर्मा की कहानी 'मछुआरे की लड़की' की सरस्वती दोनों इस बात को स्थापित करते हैं कि विकलांग भी वह सब करने में सक्षम है जो कोई और कर सकता है। सिर्फ अंग विशेष की 'अक्षमता' के आधार पर किसी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को ख़ारिज और उपेक्षित करना अमानवीय है।

मृदुला गर्ग की कहानी 'जिजीविषा' में पति आदित्य भण्डारी के दोनों गुर्दे फेल हो चुके हैं। वह बीमार और लाचार होकर अस्पताल में भर्ती है। उसकी पत्नी उसे किसी भी कीमत पर ठीक होते देखना चाहती है। लेकिन पति आदित्य भण्डारी अपनी दयनीयता की वजह से कुंठित हो गया है। उसे लगता है कि उसकी पत्नी उसको सिर्फ इसलिए ठीक होते देखना चाहती है क्योंकि वह विधवा कहलाने से डर रही है। उसे लगता है सब लोग आस-पास जवान हो रहे हैं वह ही बीमार पड़ा है। वह बहुत आंतरिक द्वंद्व में है। उसे अपनी पत्नी की सकारात्मकता से दिक्कत है। जब एक रिश्तेदार उससे मिलने आया है तो उसे उसकी खुशी और मुस्कुराहट से दिक्कत होने लगती है। उसको अपनी पत्नी पर शक होता है। उसको लगता है कि उस रिश्तेदार के मन में उसकी पत्नी के लिए प्रेम है। वह सिर्फ उसके मरने का इंतजार कर रहा है। "आह, तुम कितनी महान हो, और कितने मामूली आदमी के लिए बलिदान दिए जा रही हो। इस बेपनाह प्यार का असली सत्पात्र तो मैं हूँ। कैसा शुष्क बना लिया है तुमने अपना जीवन। तुम चाहो तो मैं तुम्हें छुटकारा दिला सकता हूँ, तुम्हारी ज़िंदगी में हँसी-खुशी ला सकता हूँ। साफ कह रहा है वह। मुझे उसका एक-एक शब्द सुनाई दे रहा है।"[44] कहानी एक विकलांग व्यक्ति के आन्तरिक असुरक्षा बोध से उपजी आशंकाग्रस्त मनोभाव को सामने रखती है। पूर्व से विकलांग होने का दंश झेल रहा कोई व्यक्ति जब दोहरी परेशानी में फँसता है तब वह इस तरह के द्वंद्व से घिरता चला जाता है। राजेन्द्र कौर की कहानी 'लुंज' में भी एक व्यक्ति के अन्दर चल रहे उतार-चढ़ाव और उससे उपजी कुंठा देखने को मिलती है। कैंसर की वजह से पिता की दायीं बाँह डॉक्टर को काटनी पड़ी। इस कहानी में एक बेटी और उसके विकलांग पिता की मनःस्थिति का वर्णन किया है। बेटी जो इस कहानी की सूत्रधार भी है ने अपने कैसर पीड़ित पिता के बदले व्यवहार की कहानी कही है। बाँह कट जाने के बाद उनका व्यवहार घर के लोगों के प्रति बदल गया। उनका स्वभाव चिड़चिड़ा हो गया। "सोचती हूँ, पहले तो बाबूजी यूँ नहीं थे। जबसे उनकी दाईं बाँह काटी गयी है, तब से बाबूजी वह रहे ही नहीं। कितने स्नेही थे। अब भी कभी-कभी खूब

स्नेह देते हैं और रो पड़ते हैं। अफसोस करते हैं कि उन्होंने यूँ ही बच्चों को डांट मारा परन्तु फिर न जाने कौन-सा भूत सवार हो जाता है....उनका स्वयं पर बस नहीं रहता।"[45]

जगदीश चंद्र की कहानी 'आधा टिकट' में बीरो एक विकलांग युवती है। बच्चे उसका मज़ाक उड़ाते हैं। "बीरो मौसी, क्या तेरा रेल में अब भी आधा टिकट लगता है ?..बीरो मौसी, तू बौनी क्यों रह गयी ? तू कुबड़ी क्यों है ? तेरे कूल्हों पर काठी-सी कैसे बन गई है ?"[46] वह सबके लिए मज़ाक की पात्र है। वह किसी से हँसी-ठट्ठा भी करने की कोशिश करती है तो लोग पलटकर 'करारा' जवाब देने की कोशिश करते हैं। "पोस्ती ने तो अपने सुंदर (बंदर) के लिए बीरो का रिश्ता माँगा था। सुना है बीरो तो तैयार थी, पर सुंदर ने इंकार कर दिया था।"[47] पूरी परिस्थिति बीरो के खिलाफ थी। उसके सामने उसके दोस्तों की शादी होती चली गई लेकिन विकलांगता की वजह से उसकी शादी कहीं नहीं हो सकी। वह समाज में हँसी की पात्र थी। शादी के बाद सबका व्यवहार उसके प्रति बादल गया। हालाँकि बीरो को इसकी आदत पड़ चुकी थी। उसने खुद को इस माहौल में ढाल लिया था। लेकिन जब लीला शादी के बाद अपने सुहागरात की कहानी सुनाने लगी तो बीरो के अंदर की ईर्ष्या और दबी हुई हसरत बाहर आ गई। उसके लिए लीला की खुशी असहनीय हो गई। "लीलो, तुम्हें शर्म नहीं आती ऐसी गंदी बातें करते हुए ! तेरी शादी क्या हुई, तू तो बहुत ही बेशर्म हो गई है।"[48] बीरो के अंदर शादी ना होने की कुंठा है। इसके बावजूद वह ज़िंदगी से भरोसा नहीं खोती। लीला ने उससे दूरी बना ली तो उसने ओमी को अपना दोस्त बना लिया। बीरो जिन्दगी में भरोसा नहीं खोती। उसके अन्दर दबी आकांक्षाएँ बार-बार बाहर आ जाती है। इसी वजह से कई रिश्ते ख़राब भी होते चले गए लेकिन वह विकल्प तलाशती रही और खुद को सँभालती रही।

आजादी के दशक में शेषनाथ शर्मा की कहानी 'पगली' कमजोर समझ ली गयी एक औरत के प्रतिशोध की कहानी है। बगीचे में ठाकुर रिपुदमन सिंह ने पगली का बलात्कार किया और विरोध करने पर एक हाथ मरोड़ कर लूली बना दिया। पंद्रह साल बाद जब उसी बगीचे में ठाकुर अपने साथियों के साथ मौज-मस्ती में डूबा हुआ तब लूली आम के टिकोरो और पत्थर से आक्रमण करती है और ठाकुर को मार-मार मुँह से खून निकाल देती है। इसी तरह ममता कालिया की कहानी 'मुन्नी' एक विद्रोही लड़की की कहानी है जो अपने स्वाभिमान से समझौता नहीं करती है। जन्म से ही कई बीमारियों से लड़ती आई। डॉक्टर ने चिकित्सा जाँच के बाद कहा कि वह चेचक की वजह से वह विकलांग हो सकती है। बाद में वाकई घसीट कर चलना उसकी नियति बन गयी लेकिन विकलांगता उसकी ज़िंदगी का निर्धारक नहीं बन सकी। मुन्नी बहुत अच्छे से कबड्डी भी खेल लेती थी। पिता के सहयोग से वह कान्वेंट स्कूल में दाखिला भी पा गयी। स्कूल में चेचक का टीका लगाया जा रहा रहा था, मुन्नी भी वहाँ पहुँच गयी। सहपाठियों ने उसका मज़ाक बनाया। उसने डस्टर चला कर मज़ाक बनाने वाली लड़की के मुँह से खून निकाल दिया। मदर ने माफी मांगने को कहा। मुन्नी ने मना कर दिया। "मदर आप मेरे परिवार को कोस रही हैं, इन लड़कियों के परिवारों को भी देखें। क्यों, क्या इनके माँ-बाप यही सिखाते हैं

कि दूसरी लड़कियों को अपने से नीचा समझो, उनकी हँसी उड़ाओ। मैं माफ़ी नहीं मांगूँगी।"[49] मुन्नी ने यह कहते हुए स्कूल छोड़ दिया। जीवन की हर परिस्थिति में लड़ना उसकी नियति बन चुकी थी और उसने डटकर उसका सामना किया।

उपासना की कहानी 'मुक्ति' में रेडियोलोजिस्ट बच्चे के जन्म से पहले ही उसके विकलांग होने की आशंका जाहिर कर देता है। "देखिए फेट्स के सिर के नीचे एक नन्हा गूमड़ है। उसमें पानी भरा है। पर बात इतनी ही नहीं है। ब्रेन का कुछ हिस्सा भी उसमें आ गया है। इसलिए सिर का साइज़ भी छोटा रह गया है।... अविकसित... एबनॉर्मल ब्रेन! एक विकृति है। ज्यादा उम्र भी नहीं इनकी। कुछ दिन, कुछ हफ्ते या कुछ महीने। अगर जीवन रहा भी तो हाथ-पैर में पैरालाइसिस होने के पंचानबे प्रतिशत चांसेस हैं!"[50] लेकिन बच्चा ही मृत पैदा होता है। तेजेन्द्र शर्मा की कहानी 'मुझे मार डाल बेटा' में भी डॉक्टर पहले ही बच्चे के भविष्य को लेकर आगाह कर देता है। "देखिए, मिस्टर मेहरा, फैसला आपको करना है। इन बच्चों के जीवित रहने के कोई विशेष आसार नहीं हैं। फिर भी हम कोशिश करके देख सकते हैं। बात यह है कि यहह दोनों जितना समय भी जीवित रहेंगे, सुइयों और दवाइयों के बल पर ही। यदि हम कुछ भी न करने का निर्णय ले लें, तो हम इन दोनों को मुक्ति दे सकते हैं।"[51] तेजेन्द्र शर्मा की कहानी में कथावाचक के साथ दिक्कत यह है कि उसके पिता भी पक्षाघात से पीड़ित हैं और उससे आग्रह कर रहे हैं कि मुझे मार कर इस कष्ट से मुक्ति दे दो। "मुझे मार डाल बेटा! मुझे मार डाल!"[52] कथावाचक पुत्र अपने पिता को असमय मौत देने के लिए तो राजी नहीं होता लेकिन अपने बच्चे की मौत के लिए डॉक्टर को इजाजत दे देता है। दोनों कहानी विकलांग बच्चे के जन्म से पहले की चुनौतियों पर केन्द्रित है। चिकित्सा तकनीक की वजह से यह संभव हो पाया। सवाल यह भी उठ सकता है कि क्या यह उचित है?

सच्चिदानंद धूमकेतु की कहानी 'एक थी शकुन' दी' एक विकलांग की कहानी के साथ-साथ बहुजन चेतना की भी कहानी है। शकुन' दी जन्मजात कुबड़ी थी। उसने इसे अपनी कमजोरी नहीं बनने दिया। जहाँ गाँव के सभी लोग आतंकी जमींदार मुंशी जी के सामने आत्मसमर्पण कर चुके थे वहाँ शकुन' दी डटकर खड़ी हो गयी। "जाइए-जाइए, बाबू। बहुत जहल मैंने देखा है। छोटी जाति में पैदा होने का मतलब यह नहीं है कि हम पुश्त दर पुश्त आपके जूठे पत्तलों को उठाते रहेंगे।"[53] शकुन' दी ने अपनी टूटी शादी, अपनी विकलांगता, डायन कहे जाने तक के तमाम ताने सहे लेकिन कभी भी स्वाभिमान से समझौता नहीं किया। मरते दम तक वह अपने भतीजे दुक्खी को भी इसी बात के लिए प्रेरित करती रही। "दुक्खी बेटा! मुंशी जी को ये रूपये लौटा दे। इसने तेरे खानदान को उजाड़ दिया है, बेटा। तुम्हारी तरह हजारों लोग हैं जिनकी देह से ये जोंक चिपके हुए हैं। अपने शरीर का खून पीये जाने का तुम्हें एहसास भी नहीं होगा। मैं तो बूढ़ी हो चली हूँ, मेरा क्या भरोसा। लेकिन तुम्हें जिंदा रहना है..."[54] धर्मवीर भारती की कहानी 'गुलकी बन्नो' की गुलकी भी शकुन दी की तरह ही जीवट है। फर्क बस इतना है कि शकुन दी विकलांग होने के बावजूद अंतिम समय तक कोई समझौता नहीं करती है। 'गुलकी बन्नो' कहानी में गुलकी के विकलांगता (कूबड़) के लिए उसका पति ही जिम्मेदार है लेकिन अंत में वह अपने संघर्षों से

हार कर उसके सामने ही आत्मसमर्पण कर देती है। जबकि सत्ती ने उसे इस बात के लिए टोका भी था। "गुलकी चढ़ते-चढ़ते रुकी, सत्ती की ओर देखा, ठिठकी, अकस्मात लपकी और फिर उस आदमी के पाँव पर गिर के फफक-फफककर रोने लगी, 'हाय! हमें काहे को छोड़ दियौ! तुम्हारे सिवा हमारा लोक-परलोक और कौन है ! अरे, हमारे मरे पर कौन चुल्लू भर पानी चढ़ाई..."[55] । पति ने ही उसके साथ मारपीट की उसी वजह से उसे कूबड़ निकल आया। पति ने दूसरी शादी भी कर ली तब भी उसके मन में पति के लिए कोई नफरत नहीं है। पति उसे विदा कराने नहीं आया है बल्कि उसके पुश्तैनी घर का सौदा करने और अपनी बीबी के देखभाल के लिए गुलकी के रूप में एक दासी ले जाने आया है। "इसे ले तो जा रहे हैं, पर इतना कह देते हैं, आप भी समझा दें उसे की रहना है तो दासी बनकर रहे। ना दूध की ना पूत की, हमारे कौन काम की पर हाँ औरतिया की सेवा करे, उसका बच्चा खिलावे, झाड़ू-बुहारू करे तो दो रोटी खाय पड़ी रहे। पर कभी उससे जबान लड़ाई तो खैर नहीं। हमारा हाथ बड़ा जालिम है। एक बार कूबड़ निकला, अगली बार परान निकलेगा।"[56] सत्ती के रूप में उसे एक स्वाभिमानी साथी मिलती है जो उसे इस बात के लिए प्रेरित करती है कि वह उस जालिम पति के साथ ना जाये। लेकिन घेघा बुआ और मुहल्ले के अन्य लोगों के व्यवहार से वह इतना दुखी हो चुकी है कि उसे अपने 'पति' के साथ रहने में ही भलाई दिखती है। "पति से हमने अपराध किया तो भगवान ने हुमसे बच्चा छिन लिया, अब भगवान हमें क्षमा कर देंगे।...तुम्हारे जीजाजी को भगवान बनाए रखे। खोट तो हमीं में है। फिर संतान होगी तब तो सौत का राज नहीं चलेगा।"[57]

एक कहावत है 'जाके पाँव न फटी बिवाई सो क्या जाने पीर पराई' । जब तक किसी 'अस्वाभाविक' घटना से हमारा सीधा साक्षात्कार नहीं हो जाता तब तक हम उसके पीछे छुपे 'स्वाभाविकता' को समझने में कई बार गलतियाँ कर जाते हैं। कई बार हमने उस खास स्थिति का अनुभव खुद भी कर लिया तो भी उसके दूसरे पक्ष को समझने में गलतियाँ कर बैठते हैं। रामदरश मिश्र की कहानी 'सीमा' इस अवस्था को बहुत बारीकी से विस्तार देती है। इस कहानी में सीमा विकलांग है। उसकी माँ उसका दर्द समझती है और उसके प्रति जागरूक भी है। लेकिन उसके परिवार के बाहर उसका दुख कोई नहीं समझता। एक पड़ोसी लड़का नियमित उसका मज़ाक उड़ाता है और उसकी माँ भी उसी का पक्ष लेती है। "...वह औरत गरगराती हुई, माँ-बेटी के सैकड़ों सीवन उधेड़ती हुई चली गयी थी और सीमा की माँ सुबक-सुबक कर खूब रोई थी। माँ की पीड़ा उसे सालती है। कितना दुष्ट है यह लड़का और उससे अधिक दुष्ट तो उसकी माँ है जो माँ होकर भी माँ की पीड़ा नहीं समझती। बड़ा दुष्ट है यह लड़का। नहीं मानता है और रोज पूछता है- 'घूमने चलेगी' और सीमा को लगता है कि एक तारा को झनझना दिया गया हो और झनझनाने के पहल ही वह टार खट्ट से टूट गई हो।"[58] पड़ोस की मिस कुमुद भी सीमा को हँसता देख चिढ़ जाती है। "हाँ-हाँ, मैं सब समझती हूँ। कमबख्त सीढ़ी के पास बैठी सबका चलना-पहनना निहारा करती है। अपनी ज़िंदगी से अकारथ हो ही गई है, चाहती है सभी लोग लँगड़े होकर बैठ जाएँ। माँ का फैशन नहीं देखती जो बुड्ढी होने पर भी बहेल्ला बनी घूमती है।"[59]

हमारी सामाजिक संरचना ऐसी है कि हम प्राकृतिक और जैविक रूप में तुलनात्मक रूप से असक्षम लोगों के प्रति संवेदनशील नहीं हैं। अधिकतर मामलों में यह तब ही संभव नहीं है जब आप खुद या आपका परिवार इससे प्रभावित हो। लेकिन यह जरूरी नहीं है कि वह विकलांगता या असक्षमता के दूसरे रूप के प्रति भी उतना ही संवेदनशील हो। मिस कुमुद द्वारा सीमा के अपमान का पता जब उसकी माँ को लगता है तब वह उससे झगड़ा करने पर उतारू हो जाती है। "...उस साँडिनी को मेरी बेटी को पीड़ित करने का क्या हक ! बेवा का घर है क्या ?"[60] इस वाक्य से ऐसा प्रतीत होता है जैसे सीमा की माँ खुद बेवा या विधवा के प्रति दुर्भावना रखती है। उसकी नजर में बेवा का घर कमजोर होता है, उसे सताया जा सकता है। उसका मज़ाक बनाया जा सकता है। एक विधवा भी समाज में उपेक्षा की ही ज़िंदगी जीती है। उसकी हालत भी विकलांग जैसी ही है। हम जाने-अनजाने एक दूसरे के प्रति ऐसी ही सोच रखते हैं। बदलाव की गति इसलिए भी बहुत मंथर है क्योंकि हम खुद अपने प्रति भी ईमानदार नहीं हैं। अधिकतर समाज की मानसिकता सीमा की माँ जैसी ही है।

4.4.2 एसिड अटैक से पीड़ित

केंद्र सरकार ने एसिड अटैक से पीड़ित को विकलांग की श्रेणी में रखा है। एसिड अटैक हमारे समाज की विकृत मानसिकता का परिणाम है। जो मेरा नहीं हो सकता है उसको इस लायक बना दो कि वह किसी और के होने लायक नहीं रहे। इसके पीछे यही मूल भावना है। वैसे कई बार स्थिति अलग भी होती है। कई बार पुरुषों पर भी इसका प्रयोग हुआ तो कई बार बाप ने गुस्से में बेटी और पत्नी पर इसे फेंक दिया। कुल मिलाकर यह बदला लेने की एक अमानवीय प्रवृति है। एसिड अटैक से पीड़ित कई लड़कियों की सच्ची कहानी मैंने पढ़ी है और सुनी है। साथ ही कुछ पीड़ितों से मेरी मुलाक़ात भी हुई है। अटैक के बाद जब एसिड अपना रंग दिखाना शुरू करता है और त्वचा गलने लगती है, उस वक्त की पीड़ा का हम अनुभव भी नहीं कर सकते। मैंने एक सच्ची घटना पढ़ी जिसमें झारखण्ड के एक सुदूर इलाके में रात के समय लड़की पर अटैक होता है। वहां इलाज की सुविधा ठीक नहीं निकली इसलिए दिन-भर की भागदौड़ के बाद शाम की ट्रेन से दिल्ली लाया गया। दिल्ली के राम मनोहर लोहिया अस्पताल में उस दिन हड़ताल थी। फिर जाके अगले दिन उसका इलाज शुरू हो सका। आप अंदाजा करिए उस लड़की ने तीन दिन तक एसिड पड़े शरीर और चेहरे के साथ रिश्ते और प्यार को लेकर क्या धारणा बनायीं होगी। उसका शरीर तीन दिन में अधिकतर गल चुका था। एक गरीब माँ- बाप के पास सरकारी अस्पताल के अलावा कोई विकल्प नहीं था।

हिंदी कथा साहित्य में इस पर नाममात्र लेखन हुआ है। मलेशिया में रहने वाले उस्मान खान ने एक उपन्यास लिखा है 'H2SO4 एक प्रेम कहानी'। इस विषय पर आधारित हिंदी का यह पहला उपन्यास है। कहानी जुबैदा और अली के प्रेम की है। अली प्रेम में अपनी आँखें भी जुबैदा को दे देता है। उपन्यास में कई मोड़ है। उपन्यास के बीच में तनाव का माहौल है लेकिन अचानक से उपन्यासकार आदर्शात्मक तरीके से कुछ घटनाओं का सुखद अंत कर देता है। इस प्रक्रिया में कुछ चीजें अस्वभाविक

लगने लगती है। लेकिन इस उपन्यास में एसिड से पीड़ित लड़की की आंतरिक भावनाओं का सजीव वर्णन हुआ।

4.4.3 हिंदी कहानियों में मानसिक विकलांगता

कुछ मानसिक रोग और उससे उत्पन्न विकलांगता का कारण अनुवांशिकता होती है। कई बार गर्भ में भ्रूण के अविकसित रह जाने से विकलांगता की समस्या आती है। इसके अतिरिक्त अपर्याप्त चिकित्सा सुविधा, कुपोषण, मानसिक तनाव जैसी स्थिति भी मानसिक विकलांगता के लिए जिम्मेदार होती है। कई बार शारीरिक दुर्घटना या किसी प्रकार का सदमा भी इसका प्रेरक तत्त्व हो सकता है। आज के समय में मानसिक बीमारी एक बड़ी समस्या बनती जा रही है। हमारा समाज बहुत तेजी से बदल रहा है। अचानक से हुए विविध परिवर्तन और उससे उपजे गहरे असंतोष ने इंसानों को बहुत गहरे स्तर तक प्रभावित किया है। इससे लोगों में मानसिक समस्या उत्पन्न हुई है। लेकिन एक सकारात्मक पक्ष यह है कि आधुनिक समय में इसे भी एक बीमारी मात्र माना गया है। यह भी एक अन्य बीमारी की तरह है। इसका सम्बन्ध इहलोक और परलोक से नहीं है। "प्राचीन काल में पागलपन को एक धार्मिक उन्माद के रूप में देखा जाता था तथा आम जनता को यह विश्वास था कि इस प्रकार के लोगों का सम्बन्ध दूसरी दुनिया से है।"[61] ऐसी अवस्था में समाज की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है खासकर परिवार की। इस तरह के मामले पर आधारित हिंदी में जो कहानियाँ हैं, उसमें अक्सर ये देखा गया है कि परिवार ऐसी स्थिति में दूरी बना लेता है। आधुनिक समय में इस तरह के रोगों का ईलाज संभव है लेकिन समाज और परिवार खुद को जिम्मेदारी से काट लेता है। "..मनोवैज्ञानिकों ने इस बात की ओर संकेत किया है कि पागलपन का सबसे बड़ा कारण निर्धनता और मानसिक रूप से तनावग्रस्त लोगों के प्रति समाज का रवैया सहानुभूतिपूर्ण न होना है।"[62]

सत्यराज की कहानी 'छोटू' एक मानसिक विकलांग पात्र छोटू की कहानी है जिसे दुनिया पागल बुलाती है। दुनिया ही नहीं खुद उसका अपना सगा बड़ा भाई उसे पागल कह कर उससे दूरी बनाता है। उसे अपने भाई से नफरत है। वह मानता है कि छोटू की वजह से ही उसकी उच्च पदाधिकारी बनने का अवसर हाथ से निकल गया। छोटू ने एक बार आवेश में आकर भुवन की एक ऊँगली भी काट खायी थी। भुवन के अन्दर नफरत भर गयी थी। "पागल आदमी को जीने का कोई अधिकार नहीं है। उसका जीवन तो नरक होता ही है, घर का वातावरण हर समय सहमा-सहमा और नरक से भी बदतर हो जाता है। न वह खुद खाता है, न दूसरों को खाने देता है। न वह खुद शान्त रहता है, न दूसरे उसके शोर-शराबे और तरह-तरह की अमानुषिक क्रियाओं के बीच शान्ति से रह पाते हैं।"[63] इसलिए एक बार जब छोटू ने जहर खाया तो भुवन डॉक्टर को बुलाने नहीं गया और छोटू तड़प कर मर गया। इस बात का पश्चाताप भुवन के अन्दर है। इसलिए जब एक दिन उसका बेटा राजू छत से गिर कर बेहोश हो जाता है और उसके मस्तिष्क में चोट लग जाती है तो वह इस आशंका से घिर जाता है कि कहीं राजू भी पागल न हो जाये। इस अपराधबोध का उस पर इतना प्रभाव है कि उसे हर वक्त लगता रहता है कि उसका और उसके परिवार के

साथ कुछ अनिष्ट न हो जाए। जब राजू होश में आने के बाद उसको देख कर मुस्करा देता है तो उसे लगता है कि राजू भी पागल हो गया है। पूरी कहानी का जिस तरीके से विकास हुआ है उससे पता चलता है कि मानसिक विकलांगों के लिए हमारा समाज किस हद तक असंवेदनशील है। हम उसके साथ एक इन्सान जैसा व्यवहार भी नहीं कर पाते। उसकी जल्द से जल्द मौत चाहते हैं। एक लोककथा के अनुसार एक बार हलाल होने की प्रतीक्षा कर रहा एक बकरा बाड़े की नुकीली झाड़ी में फँस गया। कसाई ने देखा तो भाग कर उसके पास पहुँचा और उसे निकाल लाया। एक ग्राहक ने उससे पूछा कि जब कुछ देर में उसे हलाल ही करना है तो फिर इतनी दया क्यों दिखाई ? कसाई ने जवाब दिया आखिर मैं भी तो इन्सान ही हूँ ना। भुवन ने अपने भाई छोटू को बचाने के ऐसी भी इंसानियत नहीं दिखाई।

सिम्मी हर्षिता की कहानी 'अनिमंत्रित' एक साथ कई सवाल खड़ी करती कहानी है। माँ द्वारा गर्भ रोकने के तमाम अप्राकृत उपाय करने के बाद भी मनु का जन्म हो जाता है। विज्ञान ने इंसान के जीवन को आसान तो किया है लेकिन साथ ही साथ मुश्किलें भी पैदा की हैं। गोली के प्रभाव से मनु जब पैदा हुआ तो लगा जैसे इंसान का बच्चा न होकर कोई चूजा हो। अस्वाभाविक बच्चा। जिसे माँ के स्तनपान से भी मतलब नहीं है बस अपने में खोया रहता है। वह इंसान ना होकर एक पशु में बदल गया था। "मनु के मन का आन्तरिक स्नेहिल आवेग शब्दों के अभाव में पशु-पक्षियों की तरह शारीरिक क्रियाकलाप के रास्ते प्रकट होता। वह स्नेह में टेढ़ी-मेढ़ी अँगुलियों वाला अपना हाथ सामने बैठे व्यक्ति के मुख पर उलटे-सीधे ढंग से फेरने लगता और नाक, कान, बाल, वस्त्र कुछ भी पकड़कर खींचने लगता। या फिर पूरा मुख खोलकर अपनी गीली जीभ को गाय की तरह सारे चेहरे और कन्धे पर प्यार से फेरने-चाटने लगता।"[64] घर वालों की नजर में मनु अवांछित सा था। उसका अस्तित्व अब भय और चिंता में बदल गया था। किसी बाहरी आदमी के आने पर उसे स्टोर रूम में बंद कर दिया जाता ताकि परिवार की प्रतिष्ठा सरेआम खराब न हो। उसे इस बात का एहसास भी था। वह अपनी बहन से कहता भी है- "तुम्हीं बताओ न, मैं अपने इस जीवन का क्या करूँ ? तुम सब समझते हो जैसे मैंने अपने आप को जन्म दिया है। मुझे जैसे इसमें बड़ा आनंद आ रहा है। तुम सब समझते जैसे मैं अपनी जिद्द से जी रहा हूँ। जान- बूझकर तुम सबको तंग कर रहा हूँ। जान-बूझकर ही नहीं मर रहा। तुम्हीं बताओ मैं क्या करूँ ?"[65] वह एक तरह से 'स्लो चाइल्ड' था। उसकी उम्र तो बढ़ रही थी लेकिन उसका दिमाग और शरीर उसी तेजी से विकसित नहीं हो पा रहा था। यहाँ तक कि तेरह वर्ष की अवस्था में भी वह नहाने वाले साबुन की पहचान नहीं कर पाता और उसे खाने की कोशिश करता है और मरते-मरते बचता है। मुहल्ले के बच्चे उसको देखते ही छेड़ने लगते। कोई बाल खींच लेता तो कोई चम्मच ले भागता। बच्चे ताली बजा-बजा कर उसे पागल बुलाते। फिर भी मनु खुश होता क्योंकि उसे घर से बाहर का यह खुला वातावरण अच्छा लगता।

मार्कण्डेय की कहानी 'हंसा जाई अकेला' का शीर्षक प्रसिद्ध निर्गुण भजन हंसा जाई अकेला से लिया गया जान पड़ता है। कहानी में भी यह गीत आया है। गीत जीवन की नश्वरता के दर्शन को व्याख्यायित करता है। इसलिए हंसा जाई अकेला कहानी में यह संयोग कतई नहीं है कि कहानी के मुख्य

पात्र का नाम हंसा है। हंसा शारीरिक रूप से विकलांग की श्रेणी में आता है। उसे रतौंधी है इसलिए उसे रात को दिखाई नहीं देता। रात को दिखाई ना देने की वजह से वह एक बार पिटाई से भी बचा। गांधी जी के विचारों को फैलाने के लिए सुशीला जी गाँव आती हैं। हंसा जी जान से उनकी मदद करता है। हंसा को सुशीला जी से विशेष लगाव है। गाँव भर में खबर फैल जाती है। विरोधी गुट इसका फायदा उठा कर सुशीला जी के खिलाफ पार्टी से नोटिस निकलवा देता है। लेकिन हंसा और सुशीला दोनों जी-जान से चुनाव में पार्टी के लिए काम करते हैं। एक दिन सुशीला चल बसती है। उस दिन से हंसा की मनोदशा बदल जाती है। "अब भी कभी-कभी वह आजादी लेने की कसमें खाता है। उसके तमतमाए हुए चेहरे की नसें तन जाती हैं और वह अपना बिगुल फूँकता हुआ, कभी धान के खेतों, कभी ईख और मकई के खेतों की मेड़ों पर घूमता हुआ, गाया करता है- "हंसा जाई अकेला..."[66] उसका ईलाज आगरा में भी चला लेकिन सुशीला की याद उसे गाँव खींच कर ले आती। व्यवस्था से लड़ता हुआ एक आदमी विक्षिप्त हो जाता है। व्यवस्था उसके खिलाफ साजिश रचती है जबकि वह अपने कर्मों से प्रति ईमानदार है। सुशीला भी लड़ते-लड़ते एक दिन दम तोड़ देती है। दोनों पार्टी के लिए सबसे ज्यादा मेहनत करते हैं लेकिन दोनों का दुखद अंत होता है। सुशीला की असमय मौत और हंसा का पागलपन इस व्यवस्था की उपज है। उसके प्यार को कोई समझ नहीं पाता। परंपरा से हट कर किया गया प्रेम समाज के लिए अनैतिक हो जाता है। आज इस कहानी को लिखे पचास साल से ऊपर हो गए लेकिन व्यवस्था में कोई बदलाव नहीं है।

गाँव छोड़ कर शहर आये आदमी के लिए शहर एक अबूझ पहेली है। माधव नागदा की कहानी 'जहरकाँटा' में गाँव से आया आदमी शहर के व्यवहार से भौचक्का है। वह खुद को शहर में शामिल कर पाने में असफल हो जाता है और अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है। शहर में हर कोई उसकी जाति जानने को बैचैन है। "महाराज मेरे लिए काला अक्षर भैंस बराबर है इसलिये नमाज नहीं पढ़ सकता सो मुसलमान नहीं हूँ। मंदिर में मुझे घुसने नहीं देते हुजूर तो मैं हिन्दू भी नहीं हूँ। नाम है रामा। घणी दूर से आया हूँ। भूख ने भेजा और पेट लाया है सरकार।" हिन्दू उसे दंगा भड़काने का साधन बनाना चाहते हैं तो मुसलमान उसके लिंग को अपने समान ना पाकर उसको घायल कर देते हैं। पुलिस उसको जबरदस्ती आतंकवादी साबित करने पर तुली है। "न जाने क्यों उसे जंगल से ज्यादा डरावना यह शहर लग रहा था।" किसी के पास उसको देने के लिए कोई काम नहीं है। वह जिस उम्मीद से शहर आया था, उसे वह शहर कहीं दिखाई ही नहीं दे रहा है । शहर द्वारा दिया गया घाव उसके मन-मस्तिष्क पर गहरा असर कर चुका है। वह सिर्फ कुर्ता पहनता है, और जब शहर के प्रति उसका तनाव बढ़ जाता है तो वह कुर्ता उठाकर चिल्लाने लगता है "लोगो देख लो मेरी जात। अच्छी तरह देख लो मैं कौन हूँ? ये रही मेरी जात।" कहानी शहर के आंतरिक ताने-बाने पर कठोर प्रहार करती है और शहर के प्रति गढ़े गए तमाम स्वप्न-सौन्दर्य को ध्वस्त कर देती है। जो भी व्यक्ति शहर की सत्ता के साथ घुलने-मिलने से इनकार कर देता है, शहर उसके साथ अजनबी सा व्यवहार करता है। इस प्रक्रिया में सबसे ज्यादा नुकसान उस आदमी का होता है जो शहर को उम्मीद की नजर से देखता है। उस आदमी ने भी तो दंगा भड़काने में सहयोग करने

से इनकार कर दिया था। "नहीं,नहीं बावजी। ये मेरे से नहीं होगा। ना ,ना मालिक साब। लगी आग को बुझाना तो दूर, अपनी तरफ से चलाकर आग लगाना। राम, राम पता है आपको ?" कोई आदमी व्यवस्था से निराश होकर कैसे मानसिक संतुलन खो देता है ? कहानी बहुत बारीकी से उसका वर्णन करती है। "भारत जैसे देश में गरीबी, अशिक्षा, जागरूकता का अभाव भिक्षावृति और पागलपन एक-दूसरे से जुड़े होते हैं। गरीब व्यक्ति रोजगार के अभाव में न चाहते हुए भी कई बार भिक्षावृति अपना लेता है। कभी-कभी किसी सदमा, दुःख या जीवन की विपरीत परिस्थितियों के कारण उपजे तनाव से अच्छा खासा इंसान भी पागल बन जाता है।"[67]

यही हालत अमरकान्त की कहानी 'जिन्दगी और जोंक' में रजुआ की भी होती है। एक दिन मानसिक रूप से संतुलन खो बैठता। रजुआ उस समाज से प्रेम और इज्जत की अपेक्षा रखता है। वह चाहता है कि समाज उसको अपना ले, अपने सुख-दुःख में शामिल कर ले। इसलिए वह भाग-भाग कर सारे मुहल्ले का काम करता है। वह सबका विश्वास जीतना चाहता है। वह सबको खुश करना चाहता है। इसी प्रेम की तलाश में वह एक पागल भिखारिन को अपने साथ ले आता है। लेकिन कोई चुपके से उस औरत को भी बहला फुसला कर ले जाता है। चारों तरफ से निराश रजुआ मानसिक रूप से बीमार पड़ जाता है। उसकी मानसिक बीमारी उसके शारीरिक बीमारी के साथ मिल कर भयानक रूप ले लेती है। "लेकिन उसको किसी बात की सुध-बुध न थी। कपड़े के नीचे एक गंदे अंगोछे पर पड़ा हुआ था और उसका शरीर कै-दस्त से लथपथ था। उसकी छाती की हड्डियाँ और उभर आयी थीं, पेट तथा आँखें धंस गयी थीं और गालों में गड्डे बन गए थे।... उसका मुंह कुछ खुला हुआ था। पहले देखने से ऐसा मालूम होता था कि वह मर गया है, लेकिन उसकी सांस धीमे-धीमे चल रही थी।"[68] जिसको समाज में 'पागल' कहा जाता है उस पर मंगलेश डबराल ने एक कविता लिखी है। कविता कई सवाल भी करती है। वाकई में कौन पागल है ? उसकी अवस्था के लिए कौन जिम्मेदार है ? भले उसका पागल होना तय था, लेकिन क्यों ? क्या हम गैर पागल लोग उसे समझ पाते हैं ?

यह लगभग तय था कि वह पागल है
उसका तार-तार हुलिया उलझे हुए बाल गुस्सैल चेहरा
उसकी पहचान तय करने के लिए काफ़ी थे
लेकिन यह समझना मुश्किल था कि उसके साथ क्या हुआ है
वह नुक्कड़ पर उस दुकान के सामने खड़ी हो गई थी
जहाँ सुबह-सुबह आसपास की झोपडियों के ग़रीब बच्चे
बहुराष्ट्रीय निगमों के चिप्स के पैकेट ख़रीदने आते हैं
उस औरत के पीछे कुछ आवारा कुत्ते
जैसे उसके शब्दों को समझने की कोशिश करते हुए चले आए थे
वह लगातार ऐसी भाषा में बड़बड़ा रही थी जो समझ से परे थी

किसी ने कहा बंगाली लगती है
दूसरे ने कहा अरे नहीं मद्रास की तरफ़ की होगी
तभी तो समझ नहीं आ रही है उसकी बात
एक ने कहा हिन्दी वाली ही है लेकिन अपनी भाषा भूल गई है
किसी को उसमें पंजाबी के कुछ शब्द सुनाई दिए
यह जानना भी कठिन था उसे क्या चाहिए
वह चाय की तरफ इशारा करती लेकिन जब हम उसे चाय देते
तो वह बिस्किट के पैकेटों की ओर देखती
बिस्किट देने पर चिप्स के पैकेटों की ओर
चिप्स देने पर उसकी उंगली फिर चाय की तरफ़ चली जाती
इस तरह वह कई चीज़ों की ओर संकेत करती
सड़क हवा पेड़ आसमान की तरफ देखकर भी बोलती जाती
कभी लगता वह हवा में से कोई चीज़ खींचकर अपने भीतर ला रही है
कभी लगता जैसे उसने अपनी बातों के जवाब भी सुन लिए हों
और बदले में वह कोई शाप दे रही हो
हम लोगों ने पूछा — ओ माँ, लगातार बोलोगी ही,
कुछ कहोगी नहीं, तुम्हें क्या चाहिए
और फिर यह हमारे लिए एक खेल की तरह हो गया
वह पगली कुछ देर बाद चली गई बिना कुछ लिए हुए
हम लोग जान नहीं पाए
इस संसार में आखिर क्या था उसका संसार
सिवा इसके कि वह अपने पागलपन को बचाए रखना चाहती थी
लेकिन उसके क्रुद्ध शब्द भारी पत्थरों की तरह आसपास छूट गए
उसके दुर्बोध शाप चीलों की तरह हमारे ऊपर पर मंडराने लगे
यह तय नहीं हो पाया आखिर वह कहाँ की रही होगी
लेकिन उसके शब्द हमारे बीच से हट नहीं रहे थे
शायद वह किसी एक जगह की नहीं थी
तमाम जगहों और इस समूचे देश की थी
और उसकी वर्णमाला उन तमाम भाषाओं के उन शब्दों से बनी थी
जिनका इस्तेमाल पागल लोग करते हैं उनमें शाप देते रहते हैं
अपनी मनुष्यता व्यक्त करते हैं
जिसे हम जैसे गैर-पागल कभी समझ नहीं पाते।"[69]

विकलांगता के प्रति समाज का नजरिया बदलना बहुत महत्वपूर्ण है। विकलांगता कोई बहुत बड़ी समस्या नहीं है। तकनीक ने विकलांगों की जिन्दगी को भी बहुत सक्षम बनाया है। समाज और सरकार की संवेदनशीलता इसको और भी आसान कर सकती है। कानूनी रूप से सरकार ने भले ही विकलांगों को बहुत सारे अधिकार दिए हैं लेकिन समाज की मानसिकता सरकारी स्तर पर नहीं बदली जा सकती। उनको उनका सही अधिकार तब मिलेगा जब लोग उनको स्वभाविक तौर पर बराबरी का सम्मान दें। उनकी विकलांगता को प्राकृतिक और संयोग मात्र मानें। उनकी क्षमता को स्वीकार करें। बदलाव का असर सिर्फ सकलांग पर नहीं पड़ा है बल्कि उससे विकलांग भी उतने ही प्रभावित हुए हैं। समाज की जिम्मेदारी है की इस बदलाव को साथ-साथ स्वीकार करें। एक विकलांग के लिए सबसे जरुरी चीज है आत्मसम्मान। विकलांगों के साथ आत्मीय व्यवहार ही उनके आत्मसम्मान में वृद्धि कर सकता है। विकलांग देश की एक बड़ी आबादी का प्रतिनिधित्व करते हैं। विकलांगों को दिया गया सम्मान उनके आत्मविश्वास में वृद्धि करेगा जो समाज और देश की बेहतरी के लिए बहुत उपयोगी और जरुरी है।

संदर्भ

[1] सोमदेव बानिक, रिप्रेजेंटेशन ऑफ डिसेबल्ड कैरेक्टर्स इन लिटरेचर, इंटेरनेशनल जर्नल ऑफ इंगलिश लैङ्ग्वेज, लिटरेचर एंड ट्रांसलेशन स्टडीज, खंड-3, अंक-2 पृष्ठ-199

[2] तुलसीदास, श्रीरामचरित मानस, गीता प्रेस, गोरखपुर, संस्करण-117, 1999, पृष्ठ 242

[3] तुलसीराम, मुर्दहिया, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ-13

[4] प्रेमचंद, रंगभूमि, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, 2008, पृष्ठ-7

[5] विनोद कुमार मिश्र, विकलांगता समस्याएँ व समाधान, पृष्ठ-101

[6] संपा- डॉ. श्रीमती प्रेम सिंह और डॉ. रिम्पी खिल्लन, समकालीन कहानी और विकलांग पात्रों की उपेक्षा, समकालीन कहानी और उपेक्षित समाज, श्री नटराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ-209

[7] जी.एन.कर्ण. डिसेबिलीटी स्टडीज इन इण्डिया: रिट्रोस्पेक्टस एण्ड प्रोस्पेक्टस, ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, 2001

[8] संपा- डॉ. श्रीमती प्रेम सिंह और डॉ. रिम्पी खिल्लन, समकालीन कहानी और विकलांग पात्रों की उपेक्षा, समकालीन कहानी और उपेक्षित समाज, श्री नटराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ-200

[9] पी.वी.काने, हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, खंड III, बाम्बे युनिवेर्सिटी, बाम्बे, 1974

[10] R.C.Dutta, A History of Civilization in Ancient India, Vistar Publication, New Delhi, 1972, P.59

[11] जी.एन.कर्ण. डिसेबिलीटी स्टडीज इन इण्डिया: रिट्रोस्पेक्टस एण्ड प्रोस्पेक्टस, ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, 2001, पृष्ठ -85

[12] जी.एन.कर्ण. डिसेबिलीटी स्टडीज इन इण्डिया: रिट्रोस्पेक्टस एण्ड प्रोस्पेक्टस, ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, 2001, पृष्ठ-96

[13] जी.एन.कर्ण. डिसेबिलीटी स्टडीज इन इण्डिया: रिट्रोस्पेक्टस एण्ड प्रोस्पेक्टस, ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, 2001, पृष्ठ-93

[14] The Physically Handicapped in India: A Growing National Problem, Usha Bhatt, Popular Book Depot, Bombay, 1963, P. 93

[15] जी.एन.कर्ण. डिसेबिलीटी स्टडीज इन इण्डिया: रिट्रोस्पेक्टस एण्ड प्रोस्पेक्टस, ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, 2001, पृष्ठ-93

[16] S.N. Gajendragadkar, Disabled in India, Edited Somiya Publications Bombay, First Edition 1983, P.7

[17] जी.एन.कर्ण. डिसेबिलीटी स्टडीज इन इण्डिया: रिट्रोस्पेक्टस एण्ड प्रोस्पेक्टस, ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, 2001, पृष्ठ-85

[18] United Nations and the Rights of Disabled Persons, G.N.Karna, A.P.H. Publishing Corporation, Ansari Road, New Delhi, 1999,P.28

[19] वालन्स डब्ल्यू टेलर एण्ड इशावेल्ला वैगनर टेलर, सर्विसेज फॉर द हैंडीकैप्ड इन इण्डिया: न्यूयार्क इंटरनेशनल सोसाइटी फॉर द रिहेबिलिटेशन ऑफ द डिसेब्लड, 1970, पृष्ठ-8

[20] जी.एन.कर्ण. डिसेबिलीटी स्टडीज इन इण्डिया: रिट्रोस्पेक्टस एण्ड प्रोस्पेक्टस, ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, 2001, पृष्ठ-76

[21] जी.एन.कर्ण. डिसेबिलीटी स्टडीज इन इण्डिया: रिट्रोस्पेक्टस एण्ड प्रोस्पेक्टस, ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, 2001, पृष्ठ -76

[22] लिंडा हिक्सन,(1995) मेंटल रिटार्डेशन: फाउंडेशन ऑफ एजुकेशनल प्रोग्रामिंग, बोस्टन: एलीन एण्ड बेकन एवं विलियम ई लेकी, 2001 द हिस्ट्री ऑफ यरोपियन मोरल्स (लंडन: साइमन एण्ड सुस्टर)

[23] इर्विंग टेरेन्स, (1992) प्लेटो: द रिपब्लिक, ए.डी. लिंडसे रचित (लंडन: जे.एम.डेंट एण्ड सन्स लि.)

[24] विल ड्यूरस्ट, (1966) द लाइक ऑफ ग्रीस (न्यूयार्क: साइमन एण्ड सुस्टर), पुनः मुद्रित

[25] Plato to Marx, page-36

[26] डब्ल्यू.एच.ओ.एंड वर्ल्ड बैंक (2011) वर्ल्ड रिपोर्ट ऑन डिसेबिलीटी, जनेवा

[27] अमित कुमार सिंह, कपिल कुमार, तकनीकी विकास से राह आसान, संपा.- ऋतेश पाठक, योजना, नयी दिल्ली, मई 2016, पृष्ठ-38

[28] डॉ. शैलजा माहेश्वरी, विकलांग विमर्श: स्वरुप और विकास, विकलांग विमर्श का वितान, संपा. शैलजा माहेश्वरी, मित्तल एंड संस, दिल्ली, 2017, पृष्ठ-18

[29] चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, खुदा की देन, जीवन संग्राम के योद्धा, संपा व संकलन- संध्या कुमारी, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 2019, पृष्ठ-15

[30] पानू खोलिया, अन्ना, विकलांग जीवन की कहानियाँ, संपा- गिरिराज शरण, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2007, पृष्ठ 90

[31] कुसुमलता मलिक, उपहार, कही अनकही, स्वराज प्रकाशन, 2018, पृष्ठ-16

[32] भीष्म साहनी, कण्ठहार, विकलांग जीवन की कहानियाँ, संपा- गिरिराज शरण, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2007, पृष्ठ-108

[33] भीष्म साहनी, कण्ठहार, विकलांग जीवन की कहानियाँ, संपा- गिरिराज शरण, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2007, पृष्ठ-110

[34] सूर्यबाला, फरिश्ते, विकलांग जीवन की कहानियाँ, संपा- गिरिराज शरण, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2007, पृष्ठ- 166

[35] सूर्यबाला, फरिश्ते, विकलांग जीवन की कहानियाँ, संपा- गिरिराज शरण, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2007, पृष्ठ-167

[36] सूर्यबाला, फरिश्ते, विकलांग जीवन की कहानियाँ, संपा- गिरिराज शरण, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2007, पृष्ठ-169

[37] सूर्यबाला, फरिश्ते, विकलांग जीवन की कहानियाँ, संपा- गिरिराज शरण, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2007, पृष्ठ-171

[38] स.ही. वात्स्यायन 'अज्ञेय', खितीन बाबू, विकलांग विमर्श की कहानियाँ, संपा.- डॉ. विनय कुमार पाठक और डॉ. राजेश कुमार मानस, नीरज बुक सेंटर, दिल्ली, 2010, पृष्ठ-51

[39] बिष्णु प्रभाकर, दृष्टिहीन, विकलांग विमर्श की कहानियाँ, संपा.- डॉ. विनय कुमार पाठक और डॉ. राजेश कुमार मानस, नीरज बुक सेंटर, दिल्ली, 2010, पृष्ठ-58

[40] मैत्रयी पुष्पा, सहचर, चिह्नार, आर्य प्रकाशन मंडल, दिल्ली, 1991, पृष्ठ-35

[41] अरुण यादव, परफेक्शनिस्ट बाबू, संपा- संध्या कुमारी, जीवन संग्राम के योद्धा, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नयी दिल्ली, 2019 पृष्ठ-320

[42] सुधा, सकलांग, विकलांग विमर्श, संपा- डॉ. विनय कुमार पाठक, अखिल भारतीय विकलांग चेतना परिषद, बिलासपुर(छ.ग.), पृष्ठ-224
[43] उमाशंकर चौधरी, कंपनी राजेश्वर सिंह का दुख, जीवन संग्राम के योद्धा, संपा व संकलन- संध्या कुमारी, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 2019, पृष्ठ-362

[44] मृदुला गर्ग, जिजीविषा, संपा- संध्या कुमारी, जीवन संग्राम के योद्धा, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नयी दिल्ली, 2019 पृष्ठ-105
[45] राजेन्द्र कौर, लुंज, विकलाँग जीवन की कहानियां, संपा- गिरिराज शरण, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2007, पृष्ठ-118
[46] जगदीश चंद्र, आधा टिकट, संपा- संध्या कुमारी, जीवन संग्राम के योद्धा, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नयी दिल्ली, 2019 पृष्ठ-66
[47] जगदीश चंद्र, आधा टिकट, संपा- संध्या कुमारी, जीवन संग्राम के योद्धा, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नयी दिल्ली, 2019 पृष्ठ-69
[48] जगदीश चंद्र, आधा टिकट, संपा- संध्या कुमारी, जीवन संग्राम के योद्धा, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नयी दिल्ली, 2019 पृष्ठ-73
[49] ममता कालिया, मुन्नी, संपा- संध्या कुमारी, जीवन संग्राम के योद्धा, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नयी दिल्ली, 2019 पृष्ठ-146
[50] उपासना, मुक्ति, संपा- संध्या कुमारी, जीवन संग्राम के योद्धा, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नयी दिल्ली, 2019 पृष्ठ-387
[51] तेजेन्द्र शर्मा, मुझे मार डाल बेटा...! संपा- संध्या कुमारी, जीवन संग्राम के योद्धा, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नयी दिल्ली, 2019 पृष्ठ-218
[52] तेजेन्द्र शर्मा, मुझे मार डाल बेटा...! संपा- संध्या कुमारी, जीवन संग्राम के योद्धा, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नयी दिल्ली, 2019 पृष्ठ-218
[53] सच्चिदानद धूमकेतु, एक थी शकुन' दी, संपा- संध्या कुमारी, जीवन संग्राम के योद्धा, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नयी दिल्ली, 2019 पृष्ठ-94
[54] सच्चिदानद धूमकेतु, एक थी शकुन' दी, संपा- संध्या कुमारी, जीवन संग्राम के योद्धा, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नयी दिल्ली, 2019 पृष्ठ-101
[55] धर्मवीर भारती, गुलकी बन्नो, संपा- संध्या कुमारी, जीवन संग्राम के योद्धा, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नयी दिल्ली, 2019 पृष्ठ- 48
[56] धर्मवीर भारती, गुलकी बन्नो, संपा- संध्या कुमारी, जीवन संग्राम के योद्धा, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नयी दिल्ली, 2019 पृष्ठ- 49-50
[57] धर्मवीर भारती, गुलकी बन्नो, संपा- संध्या कुमारी, जीवन संग्राम के योद्धा, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नयी दिल्ली, 2019 पृष्ठ-49
[58] रामदरश मिश्र, सीमा, संपा- संध्या कुमारी, जीवन संग्राम के योद्धा, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नयी दिल्ली, 2019 पृष्ठ-19
[59] रामदरश मिश्र, सीमा, संपा- संध्या कुमारी, जीवन संग्राम के योद्धा, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नयी दिल्ली, 2019 पृष्ठ-20

[60] रामदरश मिश्र, सीमा, संपा- संध्या कुमारी, जीवन संग्राम के योद्धा, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नयी दिल्ली, 2019 पृष्ठ-21

[61] Anne Digby, Madness, Morality and Medicine: Cambridge University Press, New York, First Edition: 1985, P- 2-3. (Reference: Social Attitude to Irrationality and Madness in seventeeth and eighteeth Century Europe by G. Rosed.)

[62] देवेन्द्र चौबे, समकालीन कहानी का समाजशास्त्र, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 2001, पृष्ठ-116

[63] सत्यराज, छोटू, विकलांग जीवन की कहानियाँ, संपा- गिरिराज शरण, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2007, पृष्ठ-140

[64]सिम्मी हर्षिता, अनिमंत्रित, विकलांग जीवन की कहानियाँ, संपा- गिरिराज शरण, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2007, पृष्ठ-147

[65]सिम्मी हर्षिता, अनिमंत्रित, विकलांग जीवन की कहानियाँ, संपा- गिरिराज शरण, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2007, पृष्ठ- 151-52

[66] हंसा जाई अकेला, मार्कण्डेय,जीवन संग्राम के योद्धा, संपा व संकलन- संध्या कुमारी, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 2019, पृष्ठ-64-65

[67] संपा व संकलन- संध्या कुमारी, जीवन संग्राम के योद्धा, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 2019, पृष्ठ-18

[68] अमरकांत, अमरकान्त की सम्पूर्ण कहानियाँ, खंड-एक, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 2013, पृष्ठ-82

[69] (कविता कोश, पागल औरत, मंगलेश डबराल)

5. हिंदी कहानियों में भिखारी जीवन

5.1 भिक्षावृत्ति की परंपरा

5.2 भिक्षावृत्ति का स्वरुप और कारण

5.3 आधुनिक समय में भिक्षावृत्ति

5.4 हिन्दी कहानियों में भिखारी जीवन

'भिखारी' शब्द से हमारे सामने जो तस्वीर उभरती है उससे हमारे मन में घृणा और सहानुभूति दोनों उपजती है। गरीबी, भुखमरी तथा आय की असमानताओं की वजह से लोगों को भोजन, कपड़ा और आवास जैसी आधारभूत सुविधाएँ भी नहीं मिल पाती। यही अवस्था लोगों को भिक्षावृत्ति के लिए मजबूर करती है। निराश लोग भीख माँगना शुरू कर देते हैं। कथित मुख्यधारा का समाज है इन्हें अपना नहीं मानता है। मुख्यधारा में उनके लिए कोई जगह नहीं होती। इसकी प्रतिक्रिया में स्वभावतः भिखारी समाज मुख्यधारा के नियम कायदों से दूर रहता है। जबकि भिखारियों की दुनिया समाज से अलग नहीं है। हिंदी कहानी में भिखारियों का बेहद मानवीय पक्ष सामने आता है। इस अध्याय में इसको उदहारण द्वारा समझा जा सकता है। शैलेश मटियानी की 'दो दुखों का सुख' चन्द्रकिशोर जायसवाल की 'नकबेसर कागा ले भागा' और महेश कटारे की 'आदि पाप' कहानी के जरिये उनके जीवन के अव्यक्त भावो को समझा जा सकता है।

5.1 भिक्षावृत्ति की परंपरा

भारतीय समाज में भीख मांगने की पुरानी परंपरा रही है। भीख लेने देने की रवायत को यहाँ सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। "मनु की वर्ण-व्यवस्था में साधनहीन लोगों को यह सामाजिक-धार्मिक स्वीकृति उपलब्ध थी कि वह धर्म के नाम पर अपनी जातीय स्थिति के अनुरूप दान की वस्तुएँ सम्मानपूर्वक ग्रहण कर सकता है।"[1] धार्मिक दान और भिक्षा की परिपाटी तो आज भी चली आ रही है और उसको आज भी स्वीकार्यता मिली हुई है। लेकिन बाकी किसी भी तरीके के भिक्षाटन को सम्मान की नजर से नहीं देखा जाता। आज भी ब्राह्मणों को भरपूर दान-दक्षिणा मिलती है जबकि यही सुविधा किसी अन्य जाति को प्राप्त नहीं है। ट्रांसजेंडर भी भीख मांग कर ही गुजारा करते हैं लेकिन उसके पेशे को वह सम्मान प्राप्त नहीं है। भारतेन्दु ने अपने नाटक 'प्रेमजोगनी' में 'देखी तुम्हरी काशी लोगों' शीर्षक कविता में भिखारियों का जिक्र किया है। उस जमाने में काशी हिंदुओं के लिए बहुत बड़ा तीर्थस्थल और शैक्षणिक केंद्र था। वहाँ भिखारियों की तादाद भी बड़ी संख्या में थी। भारत के किसी भी धार्मिक स्थल के आसपास भिखारी का होना आम बात है।

घाट जाओ तो गंगापुत्तर नोचैं दै गल फाँसी।
करैं घाटिया बस्तर-मोचन दे देके सब झाँसी। ।
राह चलत भिखमंगे नोचैं बात करैं दाता सी।
और करे तो हँसैं बनावैं उसको सत्यानासी । "[2]

धार्मिक स्थल के साथ भिखारियों का पौराणिक संबंध है। पुराने धार्मिक स्थल के भिखारियों के आचार-व्यवहार का कई साहित्यिक कृतियों में जिक्र हुआ है। इतिहासकार सतीश ने अपनी किताब में मध्यकालीन समाज के संरचना के बारे में लिखा है "इनमें छोटे दर्जे के दरबारी, सामंत, सरकारी दफ्तरों में काम करने वाले कर्मचारी, दुकानदार, शिल्पी, भिखारी इत्यादि सम्मिलित थे ।"[3]

5.2 भिक्षावृत्ति का स्वरूप और कारण

'भिखारी' शब्द सुनते ही हमारे आँखों के सामने एक खास तरह की तस्वीर बन जाती है। जिसमें कोई व्यक्ति फटे-पुराने चिथड़े में लिपटा होता है। उसके हाथ में एक कटोरा होता है । उसके शरीर पर जहाँ-तहाँ पट्टियां बंधी होती है । उसके ऊपर मक्खियाँ भिनभिनाती रहती है । उसके शारीरिक विकार के आधार पर ही उसका नामकरण भी कर दिया जाता है। महेश कटारे की कहानी 'महालीला का माध्यम अंक' में ऐसा प्रसंगवश आया भी है "लंगड़ा, टोंटा, अँधा, बूचा, मुकना, ऐंचा, घसीटा, जैसे सैंकड़ों नामों को धड़ल्ले से स्वीकृति मिली हुई है। चीजों को सही नाम से पुकारने का चलन यहीं दिखाई पड़ता है । "[4] वैसे आजकल यह फ्रेम टूट रहा है। आजकल कुछ भिखारियों ने भी तरीके बदल लिए हैं और सूट-बूट पहन कर भीख माँगना शुरू कर दिया है।

भारतीय समाज में लोग भिखारियों की बद्दुआओं से डरते हैं। उनकी आस्था का जुड़ाव इतना गहरा है कि लोगों को लगता है कि इनको नाराज करने से भगवान खुद नाराज होंगे। दूसरा पक्ष यह है कि समाज इनको खल पात्रों के रूप में देखता है इसलिए वह उनकी बद्दुआओं से बचना चाहता है । औरतें तो खास कर उनके कोप से बचना चाहती है। चंद्रकिशोर जायसवाल की कहानी 'नकबेसर कागा ले भागा' में एक जगह ऐसा प्रसंग आया है "भिखमंगों की बद्दुआओं से औरतें जितना घबराती हैं, देवताओं के 'तथास्तु' से उतना खुश कहाँ हो पाती होंगी वे। और घेघू की डायन आँखों में तो जैसे श्राप नाच उठता है, "पैसे दो, नहीं तो अपने लिए और अपने बाल- बच्चों के लिए यह घेघा लो।"[5]

सामान्यतः भीख माँगकर गुजारा करना किसी के लिए भी स्वाभाविक चयन नहीं होता है। लेकिन प्रतिकूल परिस्थितियों का निर्माण किसी को भी इसके लिए मजबूर कर जाता है । कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनके माँ-बाप असमय गुजर जाते हैं या उन्हें खुद से अलग कर देते हैं । ऐसे लोग मजबूरी बस जीवन रक्षा के लिए माँगने का विकल्प चुनते हैं और धीरे-धीरे इसे पेशा ही बना लेते हैं। विकलांग लोगों के प्रति जिस तरह की उपेक्षा समाज में है उसमें किसी भी विकलांग के लिए जीवन यापन के बहुतेरे विकल्प खोजना आसान नहीं है। विकलांग समुदाय के सभी व्यक्तियों की पारिवारिक पृष्ठभूमि एक जैसी नहीं है इसलिए उनका जीवन भी अलग-अलग है। कुछ विकलांग तो सुविधासंपन्न होने की वजह से हर तरह की सुविधा पा रहे होते हैं जबकि कुछ विकलांग दो जून की रोटी जुटाने में भी सक्षम नहीं होते हैं। ऊपर से विकलांगता को लेकर सामाजिक घृणा उनके लिए रोजगार के विकल्प को सीमित कर देती है। इसलिए भी कई बार विकलांग पारम्परिक रूप से भीख माँगने को भी रोजगार बना लेते हैं। नशा करने वाले लोगों द्वारा भी अंत में इस पेशे को अपनाया जाता है क्योंकि वह कई बार विकल्पहीन हो चुके होते हैं। प्रतिदिन नशा करने की प्रवृति उन्हें कुछ भी करने के लिए मजबूर कर देती है। आजकल बेरोजगारी जिस तरीके से बढ़ रही है उस अनुपात में रोजगार के विकल्प उपलब्ध नहीं हैं। कम पढ़े-लिखे लोगों के लिए तो साधन और भी सीमित है। कई बार तात्कालिक समाधान के लिए शुरू की भिक्षावृत्ति स्थायी रूप से ले लेती है। जो लोग बिल्कुल भी पढ़े लिखे नहीं है वह भी रोजगार मानकर भीख माँगना शुरू कर

देते हैं। पेशेवर अपराधी भी पुलिस से बचने के लिए वेश बदल कर भिक्षावृत्ति शुरू कर देते हैं ताकि पुलिस की पकड़ से दूर रह सके। कुछ लोगों के लिए यह पुस्तैनी पेशा है। वह पीढ़ी दर पीढ़ी यही काम करते आ रहे हैं। वह इस पेशे के प्रति इतने अनुकूलित हो जाते हैं कि किसी अन्य काम के प्रति उनके मन में कोई आकर्षण नहीं रह जाता।

भिखारियों की समस्याएँ आम इंसान से अलग हैं। आम इंसान जहाँ सरकार के केंद्र में होते हैं,जहाँ उनके हिसाब से नीति बनती है वहीं भिखारी व्यवस्था की नजर में उपेक्षित होते हैं। भिखारियों की समस्याओं को लेकर सरकार सहानुभूति की नजर से कुछ योजनायें ले आती है। ना उनके आवास, ना रोजगार और ना ही स्वास्थ्य को लेकर उनके पास कोई दीर्घकालीन योजना है। "भारतीय राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के आंकड़ों के मुताबिक, देश में हर साल लगभग 40,000 बच्चों का अपहरण होता है। उनमें से अधिकतर को भीख मांगने के पेशे में जबरन धकेल दिया जाता है। यहां तक कि देश भर में 300,000 बच्चों के साथ मारपीट, उन्हें नशा देकर, उनसे हर दिन भीख मंगवाई जाती है। हर साल हजारों गायब बच्चे इस धंधे में झोंक दिए जाते हैं। इन बच्चों का जीवन ऐसी अंधेरी सुरंग में कैद होकर रह जाता है, जिसका कोई दूसरा छोर नहीं होता। यह स्थिति बेहद दर्दनाक और दिल को झकझोर देने वाली है।" भीख माँगने वालों में एक बड़ी तादाद नकली भिखारियों की होती है। किसी प्रमुख जगह पर भीख माँगने से कई बार उम्मीद से ज्यादा पैसा मिल जाता है। धार्मिक स्थलों की भी संख्या बढ़ रही है। इसलिए भिखारियों की संख्या भी बढ़ती जा रही है। इसी वजह से इसने एक धंधे का रूप ले लिया है फेक चाइनीज बेग्गर' टाइटल से शाहिद अशरफ ने 16 जनवरी 2014 को एक वीडियो यूट्यूब पर अपलोड किया है। मात्र 21 सैकेण्ड के इस वीडियो में दो लड़कियों ने एक नकली भिखारी का भंडाफोड़ किया है। एक पैदल पार पुल पर एक भिखारी अपनी आँखें बंद किए अपने कटोरे को आगे करके भीख मांग रहा है। दो लड़कियाँ उधर से गुजर रही थी उनको उस पर दया आ गयी। 'उनको दया आ गयी' यह दिखाया तो गया है लेकिन असल में उनके मन में शरारत आ गयी। उन्होंने उसमें पैसे के बदले छिपकली डाल दी या हो सकता है कि उनको पहले से इस नकली भिखारी का पता चल गया था। जब भिखारी ने आँख खोलने के बाद अचानक कटोरे में छिपकली देखा तो वह उछल पड़ा। इस प्रक्रिया में उसका नकली विकलांग पैर बाहर आ जाता है। उसकी पोल खुल जाती है। जैसा कि मैंने पहले भी जिक्र किया है अब यह एक व्यवसाय बन गया है। इसमें बहुत ताकतवर लोग भी शामिल हैं। इसलिए जब उस भिखारी की पोल खुल भी जाती है तब भी वह शर्मिंदा नहीं होता बल्कि उल्टे धमकी देने लगता है और गुस्सा दिखाते हुए भाग जाता है।

भारतीय समाज में जो मानव तस्करी (ह्यूमेन ट्रैफ़िकिंग) को जो पूरा जाल बिछा है, उसके पीछे बहुत ताकतवर लोग हैं। बड़े शहरों में रेड लाइट पर जो बच्चे भीख माँग रहे होते हैं वह दरअसल में इसी मानव तस्करी (ह्यूमेन ट्रैफ़िकिंग) के शिकार बच्चे होते हैं। छोटे-छोटे बच्चों को देश के किसी भी हिस्से से उठा कर दलालों के जरिये यहाँ तक पहुँचाया जाता है। इतना नेटवर्क इतना गोपनीय होता है कि बच्चा

बेचने वाले तक को बच्चे की अगली जानकारी नहीं होती कि बच्चा कहाँ जा रहा है या जिसके हाथ जा रहा है उसकी पहचान क्या है। ट्रैफिक सिग्नल पर दिख रहे बच्चे ट्रेनिंग देकर तैयार किए जाते हैं । उनको वहाँ से कोई बहका नहीं सकता । उनके ऊपर निगाह रखने वाले लोग भी हर वक्त सक्रिय रहते हैं । 26 जनवरी 2017 की शाम बेरसराय फ़्लाइओवर(दिल्ली) के नीचे कुछ बच्चे तिरंगा झण्डा बेच रहे थे । पूरा देश गणतन्त्र दिवस मना रहा था। मैं और मेरी दोस्त बाइक से गुजर रहे थे । हमने भी बाइक रोकी और छोटा सा झण्डा खरीदने लगे। गाड़ियों के बीच दुर्घटना की परवाह किये बिना दौड़-दौड़ झण्डा बेच रहे उन बच्चों से हमने कुछ बात करनी चाही तो उन्होंने बात करने से इंकार कर दिया। उनकी इच्छा यह कतई नहीं थी कि उनसे बात की जाय। वे सिर्फ झण्डा बेचना चाह रहे थे। हम फिर भी उनसे कुछ बात करने की कोशिश में लगे थे। इतनी देर में एक स्कूटर हमारी बगल में रुका और उसमें बैठे आदमी ने मना किया कि बच्चों से बात मत करो। गिरोह के लोग नहीं चाहते हैं कि इन बच्चों का संपर्क किसी बाहरी व्यक्ति से हो। "एक अनुमान के मुताबिक, भारत में लगभग 5,00,000 लोग अपनी दैनिक जरूरतों को पूरा करने के लिए भीख पर निर्भर हैं। इन सब में हैरानी की बात है कि ज्यादातर शहरों में भीख संगठित रूप से मांगी जाती है। इलाके बंटे होते हैं, कोई दूसरा उस क्षेत्र में भीख नहीं मांग सकता। हर भिखारी के ऊपर उसका सरगना होता है, जो कि भीख में मिले पैसे में से एक हिस्सा लेता है। "[6]

आमतौर पर माना जाता है कि भिखारियों की कोई जाति नहीं होती। कटोरा लेकर बैठा हुआ हर लाचार व्यक्ति भीख का हकदार है। लेकिन कई बार ऐसा नहीं होता। समाज की जाति व्यवस्था का प्रभाव यहाँ भी पड़ता है। "जब हमे किसी भी लाचार व्यक्ति, जो गंदे कपड़े पहने हुए रेलवे स्टेशन या मंदिर या किसी भीड़ वाले स्थान पर हाथ में कटोरा पकड़कर पैसे मांगते हुए दिखाई देता हैं तो हमारे मन में सबसे पहले ऐसे व्यक्ति के बारे में एक छवि बनती जिसे हम आम बोलचाल में भिखारी भी कहते हैं । हममे से कुछ लोग ये सोचेंगे की हमें उनकी मदद कर देनी चाहिए, लेकिन वहीं अब बात आती है ऐसे व्यक्तियों की जो मदद करने से पहले उनका नाम पूछते हैं ताकि ये उनकी जाति जान सकें।" जाति जानने की इच्छा हमारे स्वभाव में है और हम उसके आधार पर भी सामने वाले से अपना बोलचाल निर्धारित करते हैं। महेश कटारे की कहानी में भी बिज्जू मजूरिन भिखारिन की जाति जानने की कोशिश करता है। "रहनहारी कहाँ की है...कौन जात ?" यह अलग बात है कि खजेरू ने इसको लेकर अपनी अनभिज्ञता और जिज्ञासा एक साथ जाहिर कर दी "तुमने भी खूब पूछी बिज्जू दादा। ...भिखारी की भी कोई जात होती है ?"[7]

5.3 आधुनिक समय में भिक्षावृत्ति

जिस रूप में आज हम भिखारियों की बड़ी तादाद देख रहे हैं वह शहरीकरण की प्रक्रिया में विकसित हुआ। वैसे मंदिरों या अन्य धार्मिक स्थलों के बाहर आम जन के भीख मांगने का भी रिवाज रहा है लेकिन छोटे जगहों पर धार्मिक स्थलों में जहाँ कम भिखारी हुआ करते थे। वहीं बड़े शहरों में यह एक व्यवसाय में बदल गया। रोजगार की तलाश में शहर आए

लोग कुछ भी करने को तैयार मिलते हैं। उनके लिए शहर में जीवन-यापन करना एक चुनौती की तरह होता है । जिनके पास कोई संपर्क सूत्र या पूँजी होती है वह किसी ना किसी विकल्प की तलाश कर लेते हैं। इसमें एक तबका ऐसा भी होता है जो किसी भी आधार का निर्माण नहीं कर पाता और निराश हो जाता है । निराशा की यही स्थिति उसे भीख मांगने या चोरी करने को मजबूर कर देती है। "इस प्रकार अपनी आर्थिक लाचारी और विवशता के कारण वे भीख माँगने पर विवश हो जाते हैं। इस अवधि में ये लोग अपने भीतर बहुत ही आत्मग्लानि का अनुभव करते हैं तथा अपने आपको शहरी जीवन की सम्पूर्ण संरचना में उपेक्षित और अकेला पाते हैं । समाज भी इनके साथ बेरुखेपन का व्यवहार करता है तथा इन्हें अपने समूह में शामिल करने की बात तो दूर, पास आने पर क्रूर, आमनवीय और उपेक्षापूर्ण व्यवहार करता है। परिणामतः इस अवधि में ये लोग अपने आपको शहरी जीवन की मुख्यधारा के अंदर हाशिये पर खड़ा महसूस करते हैं। "[8] भिक्षावृत्ति कई बार ऐसी परिस्थिति भी पैदा करती है कि आदमी निराशा में अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है। यही अवस्था धीरे-धीरे बढ़ती चली जाती है जिसे हमारा समाज पागलपन कहता है। एक भिखारी को लोग भले भीख दे दें लेकिन पागल भिखारी से दूरी बनाने की कोशिश करते हैं। इस प्रकार वह दोहरे स्तर पर उपेक्षित हो जाता है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक ए.ओ. लवजॉय ने लिखा है कि "ऐसी दशा में व्यक्ति की मानवीयता खत्म हो जाती है तथा वह आदिम मनुष्य-सा व्यवहार करने लगता है।"[9]

भीख माँगने का स्वरूप भी बदला है। अब भीख सिर्फ रेलवे स्टेशन या धार्मिक जगहों पर ही नहीं माना जाता। दिल्ली में कई सार्वजनिक जगहों पर कैंसर पीड़ित की सहायता के नाम पर लोग डब्बा लेकर खड़े होते हैं। सूट-बूट पहने लड़के दिन भर एक ही अवस्था में खड़े रहते हैं और उनके हाथ में एक कनस्तर होता है जिसमें वो चंदा जमा करते हैं। उनके बारे में लोग कहते हैं कि ये धूर्त होते हैं। ये अपना पेट भरते हैं किसी कि सहायता नहीं करते। ये हाइटेक भिखारी हैं । इस बात में कितनी सत्यता है यह तो कहा नहीं जा सकता लेकिन आजकल जिस तरह से ठगी के नए-नए तरीके प्रचलन में आ रहे हैं, उस पर शक होना स्वाभाविक है। "भारत में भीख मांगने वालों का एक बड़ा रैकेट बन गया है। कई लोगों के लिए, भीख मांगना किसी अन्य पेशे की तरह है। वे पैसे कमाने के लिए बाहर जाते हैं, वे काम करके नहीं बल्कि भीख माँगकर कमाना चाहते हैं। वास्तव में, यह लोग गिरोह के साथ दिल्ली, नोएडा, गुरुग्राम, मुंबई, कोलकाता आदि जैसे शहरों में भीख मांग रहे हैं। इन गिरोहों के अपने नेता होते हैं। प्रत्येक नेता भिखारियों के एक समूह को विशिष्ट क्षेत्र आवंटित करता है और प्रतिदिन की कमाई उनके बीच साझा करता है। भिखारियों का नेता अपने पास बड़ा हिस्सा रखता है और शेष हिस्सा भिखारियों में बाँट देता है । ये भिखारी भीख मांगने में इतने लिप्त हो जाते हैं कि इसके अलावा और कोई काम नहीं करना चाहते हैं । यह बहुत अजीब लेकिन सच है। यह अजीब है लेकिन सच है कि इनमें से कुछ भिखारी हजारों और लाखों में कमाते हैं जो एक सामान्य मध्यवर्गीय कार्यकर्ता की तुलना में बहुत अधिक है। "[10] एक बार मैं जेएनयू से हौज़ खास मेट्रो जा रहा था। बेरसराय लाल बत्ती पर जैसे ही मेरी ऑटो रुकी तो एक अधेड़ औरत हाथ जोड़े खड़ी हो गयी। वह दूर खड़ी एक स्त्री की तरफ इशारा करते हुए बोली कि मेरी बहू पेट से

है और उसको बच्चा होने वाला है। हमलोग पैदल ही अस्पताल जा रहे थे लेकिन पेट में दर्द शुरू हो गया है अब ऑटो से ले जाना पड़ेगा। कुछ पैसे की मदद कर दो बेटा। ऊपर वाला भला करेगा । मैंने भी देखा दूर डिवाइडर पर एक औरत खड़ी थी जिसको देखकर लग रहा था की वो पेट से है। मैं हड़बड़ी में था इसलिए मैंने पर्स के सभी छोटे नोट और चिल्लर निकाल के दे दिये। कुछ महीनों बाद मैंने उन्हीं दोनों औरत को धौला कुआँ इलाके में भी यही करते देखा। कुछ ही महीनों का इसका फिर से गर्भवती होना और फिर उसी तरह की समस्या में फंसना मुझे समझ नहीं आया। इस बात से मेरे मन में शक पैदा हो गया । मैंने इस बात का जब अपने एक दोस्त से जिक्र किया तो उसने बताया कि दिल्ली में इस तरह का गिरोह चलता है। औरतें अपने पेट के ऊपर कुछ बाँध कर कृत्रिम तरीके से पेट को गर्भवती का रूप दे देती है। सब कुछ साड़ी से ढँका होता है इसलिए किसी को कोई शक भी नहीं होता है।

2011 की जनगणना रिपोर्ट में "कोई रोजगार ना करने वाले और उनके शैक्षिक स्तर" के आंकड़े के अनुसार "देश में कुल 3.72 लाख भिखारी हैं। इनमें से लगभग 79 हजार यानि 21 फीसदी साक्षर हैं। हाई स्कूल या उससे अधिक पढ़े लिखे भिखारियों की संख्या भी कम नहीं है। यही नहीं इनमें से करीब 3000 ऐसे हैं जिनके पास कोई न कोई टेक्निकल या प्रोफेशनल कोर्स का डिप्लोमा है। और इनमें से ही कुछ के पास डिग्री है और कुछ भिखारी तो पोस्ट ग्रेजुएट भी हैं। शहरों में सिर्फ एक लाख पैंतीस हजार लोग ही भीख मांग कर अपना गुजारा चलाते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में भीख मांग कर जीवनयापन करने वालों की संख्या लगभग दो लाख सैंतीस हजार है। भीख मांगने वालों में 40 हजार से ज्यादा बच्चे भी शामिल हैं। "[11] इस विषय में शिक्षाशास्त्री प्रोफेसर अरुण का मानना है कि "शिक्षा और रोजगार के बीच सही तालमेल न होने की वजह से ऐसी समस्या आती है। उनकी आशंका है कि पढ़े लिखे भिखारियों की वास्तविक संख्या और अधिक हो सकती है। "[12] कुछ इसी तरह की आशंका समजाशास्त्री डॉक्टर साहेब लाल की भी है। उनका कहना है कि "भिक्षावृत्ति को समाज में अच्छा नहीं माना जाता इसलिए ज्यादातर उच्च शिक्षित भिखारी सर्वे के दौरान अपनी शैक्षिक स्थिति के बारे में झूठ बोलते हैं। "[13]

भिक्षावृत्ति को भारत के कानून में अपराध माना गया है। महाराष्ट्र की सरकार ने भिक्षावृत्ति को अपराध घोषित करने वाले कानून बॉम्बे प्रिवेंशन ऑफ बेगिंग एक्ट, 1959 कानून बनाया था। इसके अनुसार भिक्षावृत्ति को अपराध माना गया था। दिल्ली ने भी 1960 में यही कानून लागू किया अपनाया । इसी कानून को आधार बनाकर बाकी राज्यों ने भी भिखारियों को लेकर कानून बनाया। मानवाधिकार से जुड़े लोगों ने इस कानून पर ही सवाल उठाया। उनके अनुसार यह कानून आपत्तिजनक है। सामाजिक कार्यकर्ता हर्ष मंदर ने इसके खिलाफ याचिका दायर की। "भारत में क़ानूनी तौर पर भिखारी की जो परिभाषा है उसके अनुसार भिखारी वो व्यक्ति है जिसके पास जीने का कोई साधन नही है, ना ही उसके पास सिर छिपाने के लिए छत है। ऐसे व्यक्ति को सुरक्षा प्रदान करने की बजाए सरकार ने ख़ुद को ये हक़ दिया हुआ है कि वो ऐसे व्यक्ति को पकड़ कर जेल मे बंद कर दे। "[14] सन 2018 में दिल्ली उच्च न्यायालय ने भिक्षावृत्ति को अपराध घोषित करने वाले कानून बॉम्बे प्रिवेंशन ऑफ बेगिंग एक्ट, 1959

(Bombay Prevention of Begging Act, 1959) की 25 धाराओं को समाप्त कर दिया। साथ ही भिक्षावृत्ति के अपराधीकरण को असंवैधानिक घोषित कर दिया। "दिल्ली उच्च न्यायालय ने कहा है कि ग़रीबी कोई अपराध नहीं है इसलिए भिखारियों को ज़बरदस्ती राजधानी दिल्ली से बाहर नहीं भगाया जा सकता। अदालत के अनुसार ऐसा करना मानवता के ख़िलाफ़ अपराध है।"[15]

5.4 हिन्दी कहानियों में भिखारी जीवन

हिंदी कहानियों में भिखारियों के जीवन से जुड़ी अधिकतर समस्या किसी न किसी रूप में चित्रित हुई है। उनेक जीवन का त्रासद पक्ष और भी उभर कर सामने आया है। अबाध गति से बढ़ता शहर और उससे उत्पन्न विविध समस्याओं में एक भिक्षावृत्ति भी है। यह समाज का ऐसा पक्ष है जो समाज की मुख्यधारा में अपनी जगह बनाने के लिए सदा संघर्षरत रहता है और अंततः असफल रहता है। उनका यह संघर्ष हिंदी कहानियों में भी दिखाई पड़ता है। शैलेश मटियानी की 'दो दुखों का एक सुख',चन्द्रकिशोर जायसवाल की 'नकबेसर कागा ले भागा' हृदयेश की 'माँस के चेहरे' , महेश कटारे की ' आदि पाप' कहानी भिखारियों के जीवन पर हिंदी में लिखी उन महत्वपूर्ण कहानियों में है जो उनके जीवन को सम्पूर्णता में देखती है। भिखारियों के जीवन की कथा कहते-कहते तीनों कहानी एक प्रेम कहानी में बदल जाती है। ये उन कहानियों में से एक जो सिर्फ एक कहानी के कारण लेखक को अमर बना सकती है । शैलेश मटियानी की कहानी 'दो दुखों का एक सुख' में तीन मुख्य पात्र हैं। मिरदुला कानी, करमिया और काना सूरदास। तीनों पात्र पेशे से भिखारी हैं और छोटे से पहाड़ी शहर अल्मोड़ा म्यूनिसपैलिटी के सामने सड़क और सीढियों पर बैठ कर भीख मांगते हैं। करमिया कोढ़ी है जबकि बाकी दोनों नेत्रहीन है । सिर उठा कर बहुत मेहनत करने से थोड़ा धुंधला दिखाई देता है लेकिन कुल मिलकर वह नेत्रहीन जैसी ही स्थिति है । एक दिन मिरदुला का आश्रयदाता उसकी बुरी तरह पिटाई कर देता है और बेघर कर देता है क्योंकि उसने दिन भर की पूरी कमाई रामलीला के चंदे में दे दी। मिरदुला अपने इस योनी में छटपटा रही थी इसलिए उसका विश्वास था कि चंदे देने से अगले जन्म में उसको मुक्ति मिल जाएगी। लाचार मिरदुला को करमिया का सहारा मिलता है। उसने कहा भी "अरे मिरदुला, अंधे-लूले-कोढ़ियों की कोई जात नहीं। सब एक जात के भिखारी हैं और भिखारी का दुख तो कोई भिखारी ही समझ सकता है, लल्ली, तुझ-जैसी दुखियारी कानी से ममता इस पापी संसार के सही-सलामत लोगों को नहीं हो सकती। तेरी विपदा तो कोई अपंग ही समझ सकता है।"[16] करमिया और सूरदास दोनों मिरदुला को चाहते हैं। मिरदुला का झुकाव सूरदास की तरफ है । पहले उसका आश्रय था लेकिन अब नहीं है । इसका फायदा करमिया ने उठाया। वह जानता है कि मैं इसे प्राप्त नहीं कर सकता इसलिए उसने सूरदास को ढाल बनाया और दोनों को अपने घर ले आया । एहसान के जोर से उसने भी मिरदुला से शारीरिक सम्बन्ध बना लिय। इस बीच नाटक वाले कुछ दिनों के लिए मृदुला को उठा ले गए। वापस आने के बाद वह गर्भवती हो गयी । बच्चे की ख़ुशी में दोनों उत्साहित थे। इस बात पर भी बहस थी कि किसका बच्चा है ? तमाम आशंकाओं के बाद स्वस्थ बच्चा पैदा हुआ। समाज इन उपेक्षित समुदायों को दया की दृष्टि से देखता आया है। उसके

प्रति सहानुभूति रखता है। उसके जीवन की गहराई में उतर कर देखने का जोखिम बहुत कम लोग उठाते हैं। मटियानी की यह कहानी तीन विकलांग भिखारियों के जीवन में बहुत गहरे उतर कर लिखी गयी है । इस कहानी में भिखारियों के जीवन का संघर्ष, आपसी इर्ष्या, कुंठा, हवस, प्रतिस्पर्धा सब कुछ आ गया है। सबसे बड़ी बात है कि इस कहानी में प्रेम का जो त्रिकोण है वह एक नया मानवीय पहलू उद्घाटित करता है । यह कहानी हमें आश्वस्त करती है कि जिन लोगों को हम समाज से बाहर का रास्ता दिखा चुके होते हैं उनके अन्दर भी एक भरपूर जीवन होता है और सपने होते हैं। उनकी भी समस्या और उनका भी जीवन आम लोगों की तरह उतार-चढ़ाव से भरा होता है। उनके अन्दर भी प्रेम होता है और वो उसे पाने के लिए हर तरह की तिकड़म अपनाते हैं। इस कहानी में भिखारियों के दिनचर्या का सुबह से लेकर रात तक वर्णन हुआ है। उसके सहारे भिखारियों के जीवन का अनछुआ पहलू हमारे सामने उद्घाटित होता है।

मैथिली भाषा में 'नकबेसर कागा ले भागा' एक प्रसिद्ध होली गीत है। उसी के एक मुखरे को आधार बना कर चन्द्रकिशोर जायसवाल ने एक कहानी लिखी 'नकबेसर कागा ले भागा'। लेखक खुद उसी भाषा क्षेत्र निवासी हैं। इस भले ही इसमें घेघू के एकतरफा प्रेम को दर्शाया गया है लेकिन उसके बहाने यह भिखारियों की व्यथा कथा भी है। इस कहानी में भिखारियों के रहन-सहन और परिवेश का मार्मिक वर्णन हुआ है। "घोर आश्चर्य! काने, अँधे, लूले-लँगड़े, अपंग-अपाहिज, विक्रांग-विकलांग और कोढ़ग्रसित रोगियों की इस बस्ती में जीवन की एक अंत: सलिला भी बहती है- अजस्र, अबाध! रोग, दुःख, दारिद्र्य, तन्हाई बहकर किनारे लग जाते हैं, कूड़े-कचरे की तरह। पास से कोई नहीं गुजरता। जिसे मजबूरी हो जाती है, वह जरा तेजी से गुजर जाता है। और जो तेज नहीं हो पाता, उसे उस बस्ती की साँसों और धड़कनों का हलका- सा अहसास हो ही जाता है।"[17] कहानी का मुख्य पात्र घेघू एक भिखारी है। वह भिखारियों के मुहल्ले में रहता जरुर है लेकिन उसका रहन-सहन बाकी भिखारियों से अलग है और वह इसे अलग रखना भी चाहता है। घेघू के व्यक्तित्व इतना आतंकित करता था कि हर कोई उससे बच कर निकलना चाहता था। स्त्रियाँ उसकी 'डायन आँखों' और उसके श्राप के डरकर तुरंत भिक्षा दे देती थी। कोई उसे नाराज नहीं करना चाहता था। "पूर्णियां के कितने ही घरों में जब से बच्चों ने गीदर से डरना छोड़ दिया है, माँ रोते बच्चों को अब घेघू के नाम से डराने लगी हैं, 'रो मत नुनु, नहीं तो घेघू आयेगा और उठाकर ले जायेगा।"[18] दुनिया के लिए घेघू भले ही बहुत डरावना है लेकिन उसके अन्दर एक कोमल दिल है। वह सिर्फ एक भिखारी का जीवन नहीं जीना चाहता है बल्कि वह परिवार बसाना चाहता है। मधुबनी चौक के पंडित ने उसका हाथ देख कर इस बात की पुष्टि भी कर दी कि उसके भाग्य में पत्नी और बाल-बच्चे हैं। वह रनिया के प्रति आसक्त भी है। रनिया के हाव-भाव से दिग्भमित होकर उसे एहसास होता है कि रनिया भी उससे प्रेम करती है।

"इसे तुम रनिया को दे आओ।
रनिया को ? क्यों, चाचा?
चीखो मत धीरे बोलो ।

रनिया को क्यों दोगे, चाचा? इस बार छोटे ने फुसफुसाकर कहा ।
तुरंत भूल गये ? मैंने तुझसे अपने ब्याह की बात नहीं बतायी थी ?
रनिया से ब्याह करोगे ?
क्यों, यह बुरी बात तो नहीं ? वह मेरे हिस्से में आयी है। भगवान ने उसे भेजा है।
आज ही ब्याह करोगे ?"[19]

लेकिन रनिया उसके डरवाने घेघ की वजह से उससे शादी करने से इनकार कर देती है। घेघ ही घेघू की पहचान है। वही उसके जीवन का सहारा है। घेघ उसके लिए जीवनदायिनी और भिक्षदायिनी दोनों है। रनिया के इस व्यवहार के बाद उसका रनिया के प्रति आकर्षण खत्म हो जाता है। "उस कानी के लिए अपना घेघ कटवा दूँ क्या ? बाबा की दी हुई एक यही दौलत तो है मेरे पास। साली बद्दुआ देती है डायनों की तरह। ऐसी औरत से क्या शादी की जा सकती है ? बोलो, छोटे ?"[20] घेघू एक भिखारी होते हुए भी जीवन के तमाम सपने बुनना चाहता है जबकि दूसरे भिखारियों ने अपने जीवन को भगवान की नियति मानकर स्वीकार लिया है। उसके जीने और रहने का तरीका सबसे अलग है। उसने छोटे जैसे अनाथ बच्चे को अपने साथ रखकर खुद का भी भला किया और उस बच्चे का भी उद्धार किया। यह इसलिए संभव हो सका क्योंकि उसके अंग बाकी भिखारियों की तरह सड़े-गले नहीं थे बल्कि उसके पास एक डरवाना घेघ था। इसलिए जब इस घेघ को उसके व्यक्तित्व की कमजोरी बता कर उसे ख़ारिज किया जाता है तो वह प्रेम की अपनी चेष्टाओं को विराम दे देता है। उसने रनिया के लिए जो नकबेसर ख़रीदा था उसे भी तालाब में फेंक आता है।

भिखारी भी अपने जीवन के लिए तमाम तरीके के सपने बुनता है। उसके अन्दर भी अपने परिवार, घर-द्वार, बच्चे सबकी चाहत होती है। हृदयेश की कहानी 'मांस के चेहरे' का लंगड़ा बुलाकी भी 'नकबेसर कागा ले भागा' के घेघा की तरह अपनी गृहस्थी बसाने की इच्छा रखता है। रनिया भले घेघा को निराश कर देती है लेकिन बुलाकी की मुराद पूरी हो जाती है। हिंदी कहानियों में भिखारियों के जीवन का छिपा वह मानवीय पक्ष उभर कर सामने आया है जो आमतौर पर हमारे सामने नहीं आ पाता है। बुलाकी एक भिखारी है। उसकी आंतरिक इच्छा पारिवारिक जीवन जीने की है। इसलिए एक दिन बाजार में एक कैलेण्डर पर छपी औरत की तस्वीर देख कर वह मचल उठता है। वह उस कैलेण्डर को हासिल करने के लिए दुकानदार से बेइज्जती भी सह लेता है। "भाग-भाग, बड़ा शौकीन बनता है। छछुंदर के सिर में चमेली का तेल।"[21] उस तस्वीर की वजह से उसकी जीवन शैली बदल जाती है। वह गृहस्थ जैसा व्यवहार करने लगता है। "वह दांत खूब रगड़-रगड़कर मांजता। अपनी पतली मूंछों पर वह सुबह के समय तेल लगा उंगली फिराता और बार-बार टूटे दर्पण में अपना चेहरा झांकता। सातवें-आठवें दिन वह साबुन से अपने कपड़े धो डालता।"[22] वह तस्वीर को लेकर इतने सपने बुन लेता है कि उसमें बिंदी भर देता है। वह अन्य जीवों के प्रति भी बहुत उदार हो जाता है। एक दिन उसे एक बिछुड़ी भिखारिन का साथ मिल जाता है और उसका घर भी बस जाता है। बच्चे भी हो जाते हैं। घेघू की तरह

भी बुलाकी भी अपने समुदाय से अलग एक व्यवस्थित जिन्दगी की चाह रखता है। बुलाकी इसमें सफल भी हो जाता है। एक भिखारी के लिए सजह मानवीय इच्छाओं की कल्पना भी कई बार मुश्किल होती है। एक तस्वीर मात्र के लिए उसका मजाक बनाया जाता है जबकि वह उसकी आन्तरिक इच्छाओं का प्रकटीकरण था। लेकिन समाज उसकी इस मानवीय इच्छा को भी सहजता से स्वीकार नहीं करता। उसके पड़ोसी भी उसके बदलाव पर तंज कसते हैं। उसके अंतर उस घिसीपिटी जिन्दगी से निकलने की बैचनी है। "उसने तस्वीर की उस औरत के माथे पर बीचोंबीच एक गोल बिन्दी बना दी। बिन्दी वहां बन जाने से उसे लगा कि तस्वीर में कुछ नवीनता आ गई है और वह अधिक बोलती-सी है। दुकानों और चायघरों में जो इस औरत की तस्वीर टंगी है, उनसे अब यह अलग हो गयी है। बिना बिंदी के औरत का भाल क्या अच्छा लगता है ?[23]

रेलवे स्टेशन भिखारियों के जीवन का बहुत बड़ा आधार है। भिखारियों के एक बड़े तबके का जीवन इससे जुड़ा है। वह उसका घर भी है और कर्मक्षेत्र भी। महेश कटारे की कहानी 'आदि पाप' की पृष्ठभूमि भी भोपाल और दिल्ली के बीच एक छोटे से रेलवे स्टेशन की है। रेलवे स्टेशन के भिखारियों की कथा कहते-कहते अंततः यह भी एक प्रेम कहानी में बदल जाती है। हर स्टेशन की तरह यहाँ भी भिखारियों की अच्छी खासी तादाद है। विकल्पहीनों के लिए एक तरह से पनाहगाह है यह स्टेशन। यहाँ भिखारियों का एक संगठित समूह है। जिसका नेता बिज्जू है। सब लोग उसे अपनी भीख का एक हिस्सा 'परसेंटेज' के रूप में देते हैं। "बस इतना मालूम है कि भिखारियों का दादा है बिज्जू। अपनी सायकिल पर इसी तरह बैठा-बैठा इधर-उधर ढरकता रहता है। भिखारियों की अपनी बिरादरी से थोड़ा अलग रहन-सहन है उसका। साफ़ सफाई, ठीक-ठाक कपड़े यहाँ तक कि सवेरे-सवेरे चाय के साथ अखबार भी लगता है उसे। स्टेशन से लेकर बजरिया, यार्ड और आउटर तक के बीच इस इलाके में कहाँ क्या कैसे चलता है; सब जानकारी रहती है बिज्जू को इसलिए लुच्चों-लफंगों की तो बात क्या, पुलिसवाले भी उससे पंगा लेने में कतराते हैं।"[24] इसी स्टेशन ने एक मजूरिन भिखारिन को भी आश्रय दिया जिसका पति जहरीली शराब पीकर मर गया। उसकी गोद में एक बच्ची भी है। एक पुरुष भिखारी की तुलना में एक महिला भिखारी का जीवन बहुत कठिन है। उसकी संघर्ष चौतरफा है। एक भिखारिन होने के साथ साथ-साथ वह एक जवान महिला भी है। वह दानदाता से लेकर अपने भिखारी समूह के पुरुषों के भी नजर में है। बिज्जू से ही बातचीत में इस परिस्थिति को समझा जा सकता है।

"तेरा मरद मरा कैसे ?
कहते हैं कच्ची पी गया....वैसे मन का बुरा नहीं था। मरने के कुछ देर पहले मुझसे कौल किया था कि सावितरी...अब कसम खाता हूँ कि दारू नहीं पियूँगा। ...थोड़ी देर बाद वो मर गय ।
...तू इतने गंदेपन से काये रहती है...बास आती है। जरा सी साफ़-सफाई में क्या लगता है ?
...इस गंदगी और बॉस पर भी मुँह मारने को तैयार रहते हैं लोग। चटक-मटक से रहूँ तो चींथ ही डालेंगे। वो तो अट्ठे-भर से खजेरू भैया से हिम्मत बंधी है थोड़ी।"[25]

बिज्जू के मन में सावितरी भिखारिन के प्रति अनुराग है। वह उसके साथ भविष्य के सपने बुनता है। लेकिन सरकार की ग्रीन सिटी क्लीन सिटी योजना उसके सपने की राह में रोड़ा बन जाती है। वह भिखारिन को वादा करके गाँव जाता है कि वह जब लौटेगा तब घर बसाएगा लेकिन जब वह वापस लौटता है तब तक प्रशासन सभी भिखारियों को शहर-बदर कर चुका था। "यहाँ चार-पाँच रोज से अचानक क्लीन सिटी-ग्रीन सिटी का हल्ला शुरू हुआ है... ये बजरिया ही देखो जैसे अभी मेकअप कराके आई हो ब्यूटीपार्लर से। बहुत विदेशी उतर रहे हैं इन दिनों शहर में...उत्सव मनाने। शहर की सफाई के तहत सबसे पहले भिखारियों को शहर बदर किया गया है। ... लारियों में भर-भर के। शहर की सीमा में एक भी भिखारी नहीं चमकेगा तुम्हें। मेरी तो सलाह है कि कुछ दिन के लिए तुम भी औढे ड्यौढ़े हो जाओ। फोर्स वालों ने पकड़ लिया तो न जाने कहाँ ले जा के पटकें।"[26] शहर में विकास का जैसे ही हो हल्ला होता है सबसे पहली गाज भिखारियों के ऊपर ही गिरती है। बिना किसी स्थायी समाधान खोजे भिखारियों को शहर से हटा कर विकास और स्वच्छता का भ्रम पाल लिया जाता है। इस कहानी में भी चूँकि विदेशी मेहमान उत्सव में भाग लेने शहर में आ रहे हैं इसलिए भिखारियों को स्टेशन से हटा कर कहीं और फेंक दिया गया है ताकि मेहमानों की नजर इन पर ना पड़े, नहीं तो उन्हें भारत की गरीबी का अंदाजा हो जाएगा। भारत की नाक कट जाएगी। शासन व्यवस्था के पास भिखारियों के उत्थान के लिए कोई स्थायी योजना नहीं है। लेकिन जब स्वच्छता के नाम पर खानापूर्ति करनी होती है तो सबसे पहली गाज भिखारियों के ऊपर ही पड़ती है।

भीख को भले ही सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता है लेकिन यह उन लोगों के लिए आखिरी सहारा है जिनके पास जीवन जीने का कोई विकल्प नहीं बचता। चन्द्रकिरण सौनरैक्सा की कहानी 'खुदा की देन' कहानी के जरिये इस बात को बहुत आसानी से समझा जा सकता है कि भीख माँगना कई बार किसी के लिए विकल्प नहीं होता बल्कि परिस्थिति ऐसा होता चला जाता है। नज्जो का शरीर छज्जा के नीचे दब जाने के कारण विकलांग हो गया। घर की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है इसलिए उसका ठीक से ईलाज भी नहीं हो पाया । जिस घर में उसका परिवार रहता है वह लाला राम भरोसे की पुरानी हवेली थी । मकान की हालत जर्जर थी। लाला को उस मकान से कोई फायदा नहीं था इसलिए उसकी मरम्मत नहीं करवाता था। इसलिए छज्जा गिरा और रज्जो उसमें दब गयी। उसके बाद एक खटोला पर उसका जीवन सिमट गया। उसने भी सब कुछ से खुद को काट लिया। वह पूरी तरह से अजनबीयत की शिकार है । पूरी कहानी में वह लगभग संवादविहीन है । लोग उसके मरने की दुआ मांगने लगे । सेठ को उसका खटोला भी खटक गया तो उसे नीम के पेड़ के नीचे डाल दिया गया । सड़क किनारे एक खटोले पर बैठी नज्जो जाने-अनजाने सब लोग भिखारी समझने लगे। "तभी मेरी दृष्टि नज्जो के खटोले के पास पड़े, उसके पानी पीने वाले, पिचके एल्यूमीनियम के कटोरे पर पड़ी। उसमें एक पाँच पैसे का सिक्का पड़ा था। पिछले पैसों का रहस्य अब तुरंत मेरी समझ में आ गया। सड़क चलते किसी राहगीर ने नज्जो को अपाहिज भिखारिन समझकर, सिक्का फेंक दिया था। ....फिर तो मैं अक्सर ही आते-जाते देखता था कि उसके खटोले के नीचे रखे उस कटोरे में, दस-पाँच के सिक्के, दो-चार, रोज ही पड़े रहते थे।"[27] अभाव में

जी रहे परिवार के यह एक सहारा बन कर आया । भीख माँगना रज्जो और उसके परिवार को एक विकल्प लगा, एक उम्मीद जगी । इसलिए उसे हर वक़्त धूप-पानी में ही छोड़ दिया गया और एक दिन वह बुखार से मर गयी। "अरे बाबू, हमारे लिए तो वो खुदा की देन थी। मरने वाले दिन भी, कटोरे में बारह आने पड़े थे । हाय! नज्जो...मेरी बच्ची..."[28]

व्यवस्था कई बार ऐसा ताना-बाना बुनती है कि संस्थागत रूप से वह कुव्यवस्था के खिलाफ खड़ी दिखाई देती है लेकिन हकीकत में वह उसको प्रश्रय दे रही होती है। सब कुछ व्यवस्था की सहमति से हो रहा होता है। चित्रा मुद्गल की कहानी 'चेहरे' व्यवस्था के इस क्रूर और शातिर चेहरे को बेनकाब करती है । "दिखाई देगी मैं, दिखाई देगी...इदरीच बैठेगी... ये जागा मेरी है और काय को नई बैठेगी । वो जो बड़े बाबू बैइठते आत मध्ये (भीतर) हफ्ता लेते मेरे से, हफ्ता और ये भड़ुए ! (उसने सिपाहियों को दुत्कारा) कैसा पकड़ेंगे मेरे को, रात यारड ले जा सके..."[29] भिखारिन ने यह कहते हुए सबकी पोल खोल दी। धार्मिक स्थल और रेलवे स्टेशन दो ऐसी जगह है जहाँ भिखारियों को सबसे ज्यादा प्रश्रय मिलता है। व्यवस्था उसको संरक्षण देती है और उसके बदले उससे वसूल करती है । चेहरे कहानी में जिस आदमी का पर्स किसी ने टिकट लेने की लाइन से काट लिया, वह हर भिखारी के प्रति शंकित सा हो गया था। वह किसी भी कीमत पर उन भिखारियों को रेलवे स्टेशन से खदेड़ देना चाहता था । वह पहले भी हर प्रकार से इसकी शिकायत कर चुका था। यहाँ तक कि वह अखबार में इसके खिलाफ आक्रोशित होकर पत्र भी लिख चुका था। कहानी कई परतों में यथार्थ को सामने रखती है और भिखारी की स्थायी स्थिति के लिए जिम्मेदार पक्ष का खुलासा करती है। अधिकारियों ने कहा कि "पहले तो साहब ! उन्हें अपनी भीख देने और इन भिखारियों के माध्यम से अपना परलोक सुरक्षित करने की आदत से निजात पाना होगा। असलियत तो यही है कि यात्रियों ने ही इन्हें स्टेशनों और सड़कों पर परका रखा है । कई दफे तो पुलिस अभियान में भी यात्रियों ने जबरन दखल देकर इनके पक्ष में पुलिस से ही तकरार ठान ली कि एक तो सरकार गरीबी हटा नहीं पा रही है तिस पर इन मुसीबत के मारों और मजबूरों पर जब-तब डंडे बरसाकर उन्हें चैन से बैठने नहीं दे रही। अब बताइये, हम इस समस्या को कैसे सुलझाएं ? हमें आपकी सुविधा-असुविधा का बराबर ख्याल है।"[30] वह अधिकारियों के तर्क से सहमत हो जाता है लेकिन वह इसका समाधान चाहता है । जब एक अन्य यात्री की पर्स भी कट जाती है तो वह उपजे आक्रोश का फायदा उठा कर भीड़ को आंदोलित करता है ताकि भिखारिन और उसके गिरोह को बाहर खदेड़ा जा सके। लेकिन भिखारिन अड़ जाती है और ऐसे सच का खुलासा कर जाती है जिससे सबलोग नजर चुराकर फिर से टिकट के लाइन में लग जाते हैं। चेहरे कहानी में महिला भिखारिन के माध्यम से एक अलग पक्ष भी सामने आता है। भिखारियों में भी खास कर महिला भिखारियों का शरीर आकर्षण और शोषण का सबसे बड़ा केंद्र होता है। भीख उसके शरीर के स्वाभिमान का विक्रय पत्र मान लिया गया है। वह सिर्फ एक भिखारी नहीं होती एक औरत भी होती है। समाज में स्त्रियों के शरीर को लेकर जो दुराग्रह है उसका बहुत अनियंत्रित सामना महिला भिखारियों को करना पड़ता है । "साआ$$ली ! ये जो मन-मन- भर के लटकाए घूमती है, इनसे बच्चे का पेट नहीं भरता।"[31] जब एक यात्री ने यह कटाक्ष उस

भिखारिन के ऊपर किया तो एक दूसरे ने भी उसका साथ दिया। "भरता है, भरता है । दोनों का ही भरता है। "[32] वह सिर्फ एक भिखारी के रूप में ही जीवन जीने के लिए संघर्ष नहीं कर रही है बल्कि एक स्त्री के तौर पर भी उसका संघर्ष उसमें समाहित है ।

शहरों की त्रासदी ऐसी है जैसे-जैसे बड़े निर्माण कार्य होते जाते हैं वह अपने पीछे असमानता की एक बड़ी खाई भी छोड़ती जाती है। इसी असमानता से उत्पन्न विभिन्न परिस्थितियों में से एक परिस्थिति वह है जिसमें कोई मजदूर या जरुरतमंद व्यक्ति भिक्षावृत्ति को मजबूर होता है। सतीश जमाली की कहानी 'पुल' विकास के नाम पर पाट दिए गए कंक्रीट के ढांचों के पीछे के इसी सच को उघारने का प्रयास करती है। विकास के इस ढांचे में पुल एक प्रतीक भर है। विकास की इस प्रक्रिया में साझीदार रहे लोग ही शहर में हाशिये पर धकेल दिए जाते हैं। भीख माँगना किसी की प्राथमिकता में नहीं होता। व्यवस्था उसको इस पेशे को अपनाने को मजबूर करती है। "उसने सोचा कि जिस दिन यह पुल तैयार हुआ होगा और जिन मजदूरों ने इस पर काम किया होगा उनमें से कई बाद में अपाहिज बनकर या भिखमंगों की शक्ल में इस पुल पर आ बैठे होंगे। जैसे उसे पता है ज्यों-ज्यों यह महानगर फैलता जा रहा है और जो बड़ी-बड़ी इमारतें और नई-नई कालोनियाँ बन रही है उन्हें बनाने वाले मजदूर अपनी झोपड़ियों को एक स्थान से उखाड़ कर नगर के बाहर ले जाते हैं और फिर उन्हीं झोपड़ियों में से वे भिखारी और अपाहिज बनकर इस पुल पर या इन्हीं कालोनियों और बड़ी-बड़ी इमारतों में माँगने आते हैं। "[33] रमेश उपाध्याय की कहानी 'मिट्टी' भी शहरों के निर्माण और उससे उत्पन्न असमानता की कथा है। यह लोककथा शैली में लिखी गयी है। शहर का निर्माण विकास के जिस छलावे पर हो रहा है उसमें कुछ लोग भीख माँगने की स्थिति तक में आ जाते हैं जबकि कुछ लोग दिन-प्रतिदिन अमीर होते चले जाते हैं। शहर का विकास विनाश की ऐसी पृष्टभूमि तैयार करता है जिसकी धुँध में वास्तविकता गायब सी दिखाई देती है। "शहर हालाँकि ईंट-पत्थर और सीमेंट-कंकरील का होता जा रहा था। फिर भी उसमें कई मकान अभी कच्चे थे। उन मकानों में चूल्हे भी मिट्टी के थे, हालाँकि उस देश में विज्ञान काफी तरक्की कर चुका था और गैस तथा बिजली के आधुनिक चूल्हों का चलन उस शहर में खूब था। सो, उन कच्चे मकानों में रहने वालों को अपने घरों की लिपाई-पुताई और चूल्हों की मरम्मत के लिए मिट्टी की जरुरत पड़ती रहती थी और वह आदमी मिट्टी बेचकर किसी तरह अपने बाल-बच्चों का पेट पाल लेता था।"[34] कहानी में जो मुख्य पात्र मिट्टी बेच कर गुजारा करता है। एक दिन रोजगार की यह सम्भावना भी शहर उससे छीन लेता है। जिस जमीन से वह मिट्टी खोदता था उसके मकान मालिक ने गुस्से में उससे उसका गधा और साजो-सामान सब कुछ छीन लिया क्योंकि उसे उस जमीं पर मकान खड़ा करना था। "गधा उसके पास नहीं, फावड़ा उसके पास नहीं, टोकरा उसके पास नहीं, और खुदा की नेमत मिट्टी भी जमीन के मालिकों की मिल्कियत बन गयी है। वह हाथों से भी मिट्टी खोदने को तैयार था, लेकिन डरता था। जमीन का कोई मालिक आकर उसके हाथ भी काट डाले तब ?"[35] शहर के इस व्यवहार ने उसे विक्षिप्त सा बना दिया। उसने खुद को मिट्टी मानकर बेचने की हाँक लगानी शुरू कर दी। उसकी हालत एक भिखारी जैसी हो गयी। शहर ने एक मेहनतकश के पूरे जीवन को पल भर में चौराहे पर ला खड़ा कर दिया।

भिखारियों के बारे में आम धारणा है वे मेहनत से बचना चाहते हैं इसलिए भीख माँगने का विकल्प चुनते हैं। अमरकांत की कहानी 'जिन्दगी और जोंक' और 'दो चरित्र' इस धारणा का खंडन करती है। 'दो चरित्र' कहानी में भी जनार्दन का मानना है कि भिखारी कामचोर हैं, इसलिए भीख मांगते हैं। एक दूसरा तर्क यह भी दिया जाता है कि हो सकता है उनको कोई काम नहीं मिलता हो इसलिए वे भीख माँगने पर मजबूर हैं । लेकिन जनार्दन इन तर्कों को ख़ारिज कर देता है । उनके जीवन में एक ही दुःख है कि उनका नौकर भाग गया है। इसलिए उनकी बातों में नौकरों की कामचोरी के प्रति एक खासा आक्रोश है । संयोग से जनार्दन का पूर्वाग्रह यहाँ टूट जाता है। एक भिखारी लड़का काम करने के लिए राजी हो जाता है। जाहिर है अपनी बातों के गलत हो जाने से वह तिलमिला जाता है। उसके पूर्वाग्रह के विपरीत लड़का सभी काम निपटा देता है। दोस्तों के सामने भद्द पिट के खीज से वह उस लड़के को भगा देता है। 'जिन्दगी और जोंक' कहानी में भी गोपाल उर्फ़ रजुआ भीख माँगकर भले ही गुजारा करता है लेकिन वह इसके बदले सबका काम करता है। वह अपनी क्षमतानुसार मुहल्ले के लगभग हर व्यक्ति का काम करता है और बदले में जो कुछ भी मिलता है उसी से गुजारा करता है। "... कभी-कभी सोचकर कष्ट होता था कि इस व्यक्ति ने सदा ऐसे प्रयास किये, जिससे इसको भीख ना माँगनी पड़े । और उसको भीख माँगनी भी पड़ी है तो इसमें दोष कतई नहीं रहा है। मैंने उसकी दशा देखकर कई बार क्रोधवश सोचा है कि यह कमबख्त एक ही मुहल्ले में क्यों चिपका हुआ है ! घूम-घूम कर शहर में भीख क्यों नहीं माँगता ? मुझे कभी-कभी लगता है कि वह किसी का मुहताज न होना चाहता था और इसके लिए उसने कोशिश भी की, जिसमें वह असफल रहा।"[36] भिखारी और असहाय लोगों के लिए सबसे बड़ा संकट यह है कि किसी भी तरह के चोरी के वह घोषित रूप से अपराधी साबित कर दिए जाते हैं। माधव नागदा की कहानी 'जहरकाँटा' में भी गाँव से शहर आये युवक को पुलिस जबर्दस्ती आतंकवादी घोषित करने में लगी हुई थी। 'जिन्दगी और जोंक' कहानी में भी शिवनाथ बाबू के यहाँ साड़ी चोरी हो जाती है तो बिना ठीक से खोज-बीन किये पूरा मुहल्ला बारी-बारी से घंटो रजुआ को पिटता है। जबकि बाद में साड़ी उनके घर में खुद ही खोजने पर मिल गयी। अगर आसपास रजुआ जैसा कोई भिखारी हो तो लोगों का पूर्वाग्रह उनको शक करने पर मजबूर होता है। ऐसी धारणा बन गयी है कि जरूरतमंद है तो चोर भी होगा, भिखारी है तो चोर होगा, फटेहाल है तो चोर होगा। "मैं तो खूब जानता हूँ कि यह सब चोरी का माल होशियारी से छिपा देते हैं और जब तक इनकी कड़ी पिटाई न की जाय, कुछ नहीं बताते ।"[37] जो रजुआ पूरे मुहल्ले के काम के लिए एक टांग पर खड़ा रहता था वही जब बीमार पड़ा और उसे हैजा होने की आशंका हो गयी तो किसी ने भी उसे आश्रय नहीं दिया और ना ही उसका ईलाज करवाया। एक भिखारी का मुफ्त का श्रम सबको चाहिए लेकिन उसके प्रति संवेदनशीलता किसी के भी अन्दर नहीं थी । जबकि वह खुद बहुत संवेदनशील व्यक्ति थी। जब उसे पुलिस थाने में एक नंगी पागल औरत दिखी तो वह उसे अपने साथ ले आया। खुद के खाने का आधा हिस्सा उसे दिया । उसे संरक्षण दिया । भले बाद में उस औरत को कोई बहला कर ले गया। कई बार तो यह भ्रम होता है जिसको दुनिया सामान्य कहती है वह सामान्य नहीं है और जो असामान्य दिखता है दरअसल वही सामान्य है । रजुआ मार खाकर भी उस मुहल्ले का त्याग नहीं करता जबकि वह चोर नहीं है । अंततः शिवनाथ बाबू भी स्वीकार करते हैं कि "जो हो, आदमी वह

ईमानदार था ।"[38] वह अपनी ईमानदारी साबित कर देता है । वह सबको माफ़ भी कर देता है । वह उस छोटे से समाज में जीवन भर आत्मसम्मान और स्वीकार की लड़ाई लड़ता है लेकिन वह इसमें असफल रहता है । रजुआ इस समाज के ऊपर एक तमाचा है जो पूर्वाग्रह में जीती है हद दर्जे तक अमानवीय और संवेदनशील है ।

चित्रा मुद्गल की कहानी 'भूख' में भूख से लड़ने का विकल्प ही भूख से मौत का कारण बन जाता है । भूख से परेशान माँ द्वारा बच्चे को गिरवी रख देना और अबोध बच्चे को भूखा रख कर उसके रोने-चिल्लाने के जरिये लोगों से सहानुभूति स्वरुप भीख इकठ्ठा करना इस कहानी का भी यथार्थ है और समाज का भी । "कई स्टिंग ऑपरेशनों से पता चला है कि भीख मंगवाने में विश्वसनीयता के लिए बच्चों को किराए पर लिया जाता है । कभी-कभी, बच्चों को पूरे दिन के लिए नशा दे दिया जाता है ताकि वे बीमार लगें और युवा महिला भिखारियों द्वारा उन्हें आसानी से एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में ले जाया जा सके । "[39] भूख कहानी इसका उदहारण है । सावित्री पति की असामयिक मृत्यु के बाद हर वक्त मेहनत करके जीवन जीने का विकल्प चुनना चाहती है लेकिन नियति उसे बार-बार धोखा देती है । यहाँ तक की पति की मौत का मुआवजा भी सिर्फ हजार रूपये मिलता है । जबकि पति मिस्त्री का काम करते हुए पन्द्रहवें माले से गिरकर मर गया था । सेठ ने उसके पति को शराब के नशे में हुई मौत बताकर पल्ला झाड़ लिया । उसने दिहाड़ी के जरिये खुद और अपने तीन बच्चों को संभालना चाहा लेकिन उसे दिहाड़ी करने का मौका भी नहीं मिला । अंत में निराश होकर उसने अपना बच्चा एक भिखारिन को किराये पर देना स्वीकार कर लिया जो बच्चे को गोद में रख कर भीख माँगती थी । जबकि इससे पहले उसने इस प्रस्ताव पर ही अपना आपा खो दिया था । "बच्चे बच सकते हैं । उपाय है । अगर वह छोटू को उस भिखमंगी औरत को किराये पर उठा दे तो ?... छोटू का पेट भरेगा ही भरेगा । दो रूपये जो ऊपर से मिला करेंगे उसमें किल्लो भर मोटा चावल आ जायेगा । बड़े और मंझले के पेट में भी दाने पड़ जायेंगे । फिर कौन उसे हमेशा के लिए किराये पर उठायेगी ! कुछ ही दिन दिन की तो बात है । ठेकेदार ने मजूरी नहीं भी दी तो देर-सवेर कहीं न कहीं जुगाड़ लग ही जाएगा । मजूरी मिलते ही वह ताबड़तोड़ छोटू को उस औरत के चंगुल से छुड़ा लेगी । किसी को पता भी नहीं चलेगा । सावित्री अक्का की बात अलहदा है । वे तो उसकी ढके-फटे की साथिन हैं ही । "[40] आजकल खास कर बड़े शहरों में इस तरह का गिरोह काम करता है जो बच्चों के एक बड़े नेटवर्क का संचालन करता है और उनसे भीख मंगवाता है । इसमें मानव तस्करी के जरिये बच्चों को शामिल किया जाता है । इस कहानी में में जग्गूबाई भी उसी तरह के एक गिरोह का हिस्सा है । फर्क बस इतना है कि वह अबोध बच्चे को किराये पर लेकर भीख माँगती है । जग्गूबाई ने भी दूध से भरी रंगबिरंगी बोतल दिखा कर लक्ष्मी को अपने झाँसे में ले लिया कि वह बच्चे की देखभाल अच्छे से करती है और उसके खाने-पीने का भी ध्यान रखती है । लक्ष्मी खुद भी इस तरह के सपने देखा करती थी । ना चाहते हुए भी आखिरकार उसने अपना बच्चा जग्गूबाई को सौंप दिया । लेकिन जब छोटू भूख से मर गया तब उसे असलियत का पता चला । "भिकारिन ने बच्चा पूजा के वास्ते नईं लिया होता । वो छिनाल बच्चे का पेट भरती तो बच्चा आराम से गोदी में सोता, पिच्छू उसको भीक कौन देता ? अरे

वो बच्चे को फकत भुक्काच नईं रक्खते, रोता नईं तो चिकोटी काट-काट के रुलाते कि लोगों का दिल पिघलना.. अभागिन, काय कू दी तू उसको अपना छोटू रे...। "[41] जीवन जीने की जद्दोजहद एक त्रासदी में बदल जाती है। भीख माँगना भी एक बहुत बड़े बाजार में बदलता जा रहा है। इस कहानी की पृष्ठभूमि में मुंबई शहर है जहाँ इस तरह की व्यवस्था बहुत आम हो चुकी है। बाजार चाहे भिखारियों का हो या अन्य लोगों का, वह सिर्फ मुनाफे की परवाह करता है। अंततः अपनी माँ और भाइयों का पेट भरने के लिए छोटू जैसे अबोध बच्चे की आंत चिपकी रह जाती है। वह खुद भूख से मर जाता है या मार दिया जाता है ?

दो बच्चों के सहारे हृदयेश की कहानी 'खेल' सामाजिक समानता का खाका खींचती है। इसमें एक अमीर बालक है तो दूसरा भिखारी बालक है। सामाजिक रूप से भले ही दोनों की पृष्ठभूमि अलग अलग हैं लेकिन खेल-खेल में अनायास ही दोनों एक दूसरे के करीब आ जाते हैं।

"तुम गेंद खेल रहे हो ?
हां...आं ।
गेंद तुम कितनी ऊपर फेंक सकते हो ?
मैं उन पत्तियों के पास तक फेंक सकता हूँ ।
मैं भी गेंद फेंकूंगा
हां, तुम भी फेंको ।"[42]

अपनी मूल प्रवृति के अनुसार खेल भले ही दो व्यक्ति, दो समाज, दो संस्कृति इत्यादि को जोड़ने का काम करता है लेकिन इसका क्रियान्वयन भी परिवेश और परिस्थितियों पर निर्भर करता है। भारतीय समाज में भले ही यह धारणा बना दी गयी कि खेल किसी के साथ भेदभाव नहीं करता, खेल के मैदान में सब बराबर है लेकिन कई बार इसके ठीक उलट व्यवहार देखने को मिलता है। वैसे यह भेदभाव विदेशों में भी है। भारतीय क्रिकेट के शुरूआती दौर में बालू पालवंकर के साथ ना सिर्फ भेदभाव होता था बल्कि बाकी खिलाड़ी उनके साथ साथ खाने-पीने से भी बचते थे। इसकी वजह सिर्फ यह थी कि वह एक दलित थे। इसी वजह से उन्हें भारतीय क्रिकेट टीम का कप्तान भी नहीं बनने दिया गया। "बालू को अंततः पूना के हिन्दू क्लब से खेलने के लिए कुछ शर्तों के साथ आमंत्रित किया गया। पिच पर बालू जिस गेंद से गेंदबाजी करते थे, उस गेंद को तो दूसरे खिलाड़ी भी छूते थे लेकिन मैदान के बाहर वे उसे नहीं छूते थे। इसी तरह मैच में चाय के समय बालू को पैवेलियन के बाहर मटके में चाय दी जाती थी, जबकि दूसरे खिलाड़ी अन्दर कप में पीते थे। बालू अगर मुँह-हाथ धोना चाहते थे तो क्लब का 'अछूत' नौकर फील्ड के कोने में उन्हें पानी देता था। बालू को लंच भी अलग टेबुल पर अलग प्लेट में दिया जाता था ।"[43] खेल का मैदान भी समाज से अलग नहीं होता। समाज जिस तरीके से जाति के आधार पर व्यवहार करता है उसका असर खेल के मैदान पर भी दिखाई देता है। कई जगह इसका जातिगत स्वरुप वर्गीय चरित्र में बदल जाता है। 'खेल' कहानी भी प्रतीकात्मक रूप में इसकी पुष्टि करता है। जब अमीर बालक के माँ-

बाप की नजर भिखारी बालक के साथ खेल रहे अपने बेटे पर जाती है तो उन्हें यह अस्वाभाविक लगता है।

"तू कौन है ? यहाँ क्यों आया ?

मेम साब, मैं भीख मांगने नहीं आया हूँ। मैं खेल खेल रहा था ।"[44]

जबकि भिखारी बालक को ऐसा लगता है कि एक भिखारी के तौर भले ये लोग उनको नकार सकते हैं लेकिन उनके बेटे के साथ खेलने में कोई दिक्कत नहीं है। जबकि हकीकत में ऐसा संभव नहीं था। खेल का भी अपना वर्गीय चरित्र है। खेल का मैदान भी इस तरह के तथाकथित वर्गीकरण से अछूता नहीं है। अंत में भिखारी बालक को वह स्थान छोड़ पीपल के नीचे अपने आशियाने में लौटना पड़ता है।

भिखारियों के जीवन को एक बड़े कैनवास पर दर्शाती एक कहानी है जवाहर सिंह की 'कंगाली'। इसमें भिखारियों के जीवन को बहुत गहराई और बारीकी से देखने की कोशिश की गयी है। कहानी कई ऐसे सवालों का जवाब देती है जो आमतौर पर भिखारी को देखते ही हमारे मन में उठते हैं। कहानी जिस जगह को आधार बना कर लिखी गयी है, वहां स्थानीय लोग भिखारी को कंगाली बुलाते हैं। एक आदर्श समाज का सपना देखने वाले नवनियुक्त सहायक स्टेशन मास्टर को स्टेशन पर भिखारियों की उपस्थिति नागवार गुजरी। उन्होंने पुलिस की सहायता से उसे स्टेशन से निकाल बाहर किया लेकिन सिर्फ इतना ही उनका उद्देश्य नहीं था। वह भिखारियों की एक बेहतर जिन्दगी चाहते थे। जो सक्षम थे उनके लिए नौकरी और जो लाचार थे उनके लिए सरकारी योजनाओं का लाभ चाहते थे। जैसा कि इस तरह के समाज में होता है उनको कोई बड़ी सफलता नहीं मिली। कुछ लोगों ने भले कुछ भिखारियों को घर में काम दे दिया लेकिन लाख भाग दौर के बाद भी कोई सरकारी सहायता नहीं मिली। जिन लोगों ने काम दिया भी उसकी मुख्य वजह सस्ता नौकर मिलना था। खुद कथावाचक के घर में उसकी पत्नी दुलारी को स्वीकार नहीं कर पा रही थी। "मुझे नहीं कराना इस भंगी-मेहतर की औलाद से अपने घर का काम...! यह क्या घर-आंगन और बर्तन-बासन की सफाई करेगी, इसके खुद के शरीर और कपड़ों में तो एक मन मैल और गंदगी जमी है।... लोग झूठ नहीं कहते कि तुम पागल हो। तुम्हारी मति मारी गयी है...। भला इसके हाथ से धुले बर्तन में कौन खाना खाएगा...किसके मुँह में अन्न पड़ेगा...! मुझे तो इसकी सूरत और कपड़े लत्ते देखकर ही कै होने-होने जैसा लगने लगा है।"[45] एक ऐसे बच्चे के लिए घर का काम बहुत मुश्किल था जिसने कभी 'घर' देखा ही नहीं। जिसे साफ-सफाई से पैदायशी परहेज था क्योंकि साफ-सुथरे को कौन भीख देता है। लिहाजा उसको घरेलू काम में दिक्कत आने लगी। "काम पर लग तो गयी थी पर कोई काम उसे आता नहीं था। जैसी गन्दी जगहों और गंदे परिवेश में वह बचपन से रहती आई थी उस लिहाज से हमारे घर में उसे कहीं कोई ऐसी जगह या चीज ही नहीं दिखायी देती थी जिसे साफ करने की जरुरत हो। कमरों में झाड़ू लगाने जाती तो दो मिनट में ही सारे कमरों में टहल आती। बड़े सरलपन से

बोलती "मैम सा'ब सब कमरवा त एकदम साफे है...कहां झाड़ू लगाऊं !"[46] दुलारी को घर में रखने को लेकर विवाद हुआ और दुलारी को काम छोड़ना पड़ा।

इस कहानी के दो भाग हैं। पहले भाग में कथावाचक द्वारा भिखारियों की बेहतरी का स्वप्न है जो कंगाली को काम छुड़वाने के साथ ही दफ़न हो जाता है। कहानी के दूसरे भाग में कंगाली की शादी और घसिटना का प्रसंग है। कहानी का दूसरा भाग भिखारी जीवन के और करीब ले जाता है। बलात्कार के बाद दुलारी की शादी एक विकलांग से करनी पड़ती है जो दहेज़ में 'घसिटना' चाहता है। घसिटना एक विकृत बच्चा है जो भिखारियों के लिए सोने की मुर्गी है।"लुंज-पुंज अष्टावक्र शरीर...सींक-से पतले-पतले लिजलिजे हाथ-पांव... बड़ा-सा सिर और पतुकी की तरह बेडौल फूला हुआ पेट...अजीब-सी घिनौनी आकृति। कोटरों में धंसी बटन-सी छोटी-छोटी निरीह आंखें कभी-कभी मुलकाकर ही वह अपने जीवित होने का प्रमाण दे रहा था। "[47] उसका यह रूप उसे दयनीय रूप भीख जुटाने में मददगार था। दुलारी के पति को यह बच्चा तो दहेज़ में मिल जाता है लेकिन वह उसकी परवाह नहीं करता। उससे सिर्फ भीख मंगवाता है जिसके कारण वह बीमार हो गया। फिर इस बात पर सास और दामाद में झगड़ा होता है। जवाहर सिंह की यह कहानी भिखारी के जीवन की परतों को खोलती है। अमरकांत की 'दो चरित्र' और 'कंगाली' कहानी इस निष्कर्ष पर ले जाकर हमें खड़ा कर देते हैं कि सभी भिखारी कामचोर नहीं होते, या तो उन्हें काम नहीं मिलता या जब मिल भी जाता है तो लोग उन्हें स्वीकार नहीं करते। हमारी समाज व्यवस्था इतनी जटिल है कि कई बार साधारण चीज को समझना भी मुश्किल हो जाता है। कंगाली में बच्चे से भीख मंगवाने का जो प्रसंग आया है आज उसका खौफनाक रूप दिल्ली की सड़कों पर देखा जा सकता है। मानव तस्करी गिरोह लाखों बच्चों से ऐसे ही ट्रैफिक सिग्नल पर भीख मंगवा रहे हैं। उनका गिरोह इतना मजबूत है कि पुलिस भी आसानी से उनतक पहुँच नहीं पा रही। उन बच्चों के मानवीय मूलभूत अधिकार की लगातर उपेक्षा होती रहती है। ऐसे बच्चे कब कहाँ से गायब हो जाते हैं इसका कोई अता-पता नहीं होता।

कुछ कहानी भिखारियों के जीवन का यथार्थ वर्णन करती है तो कुछ कहानी उनके जीवन के लिए नए सपने बुनती है। उनके जीवन में बदलाव के लिए विकल्प सुझाती है। संजय जनागल की कहानी 'नया सवेरा' भीख माँगने के बजाय मेहनत करके जीवन यापन पर जोर देती है। गोमन्द जब एक भिखारी को सड़क पर दुर्घटना में मरते देखता है तो उसे खुद के प्रति भी असहायता का बोध होता है। इसलिए वह भीख माँगना छोड़ कर श्याम जी के पास काम माँगने पहुँच जाता है। "सुनाई नहीं देता? कहा न दोपहर में आना। गाँव बसा नहीं और भिखमंगे पहले ही आ गए। चल निकल यहाँ से। एक तो स्साला कामचोर राजू नहीं आया। सारा काम मुझे ही करना पड़ेगा और ऊपर से तू ?"[48] श्याम जी उसे सुबह-सुबह औया देख भड़क जाते हैं लेकिन जा उन्हें गोमन्द की नियत का पता चलता है तो वह उसे पाँच सौ रूपये महीना के पगार पर अपनी दुकान पर नौकरी दे देते हैं। साथ ही उसे गाड़ियों का बेहतरीन मिस्त्री बनाने का वादा भी करते हैं। अमरकांत की 'दो चेहरे' की तरह भी यहाँ कहानीकार यह साबित करना चाहता है कि

प्रत्येक भिखारी को एक श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। कुछ लोग वाकई काम करने को उत्सुक होते हैं और समय और परिस्थिति के बदलाव के साथ यह दिखाई भी दे जाता है। गोमन्द के पिता रामेश्वर भी अफ़सोस करते हैं "हमने भी समय रहते कोई हाथ का काम सिखा होता तो हमें भी ये दिन ना देखने पड़ते।"[49]

समाज में दिन-प्रतिदिन भिखारियों की संख्या बढ़ती ही जा रही है लेकिन समाज कभी ठहर कर यह नहीं सोचता कि समाज में भीख माँगने की प्रवृत्ति के क्या मायने हैं ? समाज की अपनी भूमिका इस मामले में बहुत सीमित है। हमलोग भिखारियों को चंद सिक्के देकर अपनी जिम्मेदारी से छुटकारा पा लेते हैं। कोई खाना खिला कर पुण्य कमा लेना चाहता है तो कोई ठंढी रातों में कम्बल बाँटने में ही इसका समाधान देखता है। इस तरह का दान भिखारियों को काम करने के प्रति हतोत्साहित करता है। धीरे-धीरे उनके अन्दर यह प्रवृत्ति स्थायी हो जाती है। फिर वे काम करने को तैयार नहीं होते। ऐसा नहीं है कि सरकार के पास इनके लिए कोई योजना नहीं है बल्कि राज्य सरकार और केंद्र सरकार दोनों की कई योजना भिखारियों के लिए है। लेकिन बदलाव के लिए शुरूआत से ही कदम उठाने होंगे वरना जिसको बैठे-बिठाये खाना-पीना मिल जाएगा वो काम करना क्यों पसंद करेगा ? "हम कूड़ा कलेक्शन से कितना पा जाएंगे? यहां पर बैठे-बैठे भरपेट भोजन भी मिलता है। हम शेल्टर हाउस में एक दो बार जा चुके हैं, लेकिन वहां पर काम ज्यादा है। भूखे भी रहना पड़ता है। इससे ठीक यही है।"[50] मानव तस्करी के जरिये इस धंधे भिखारी बनाये गए लोगों को समस्या तो और भी जटिल है। वह चाह कर भी इससे निकल नहीं सकते। भीख माँगने की प्रवृति को अचानक से ख़त्म करना संभव नहीं है। यह व्यवस्था की ऐसी दिक्कत है जिसमें बहुत सारी समस्याओं के सूत्र एक दूसरे से मिले हुए हैं। लेकिन अगर सरकार और आम आदमी मिलकर इस दिशा में कदम उठाये तो इसको कम किया जा सकता है। दोनों पक्ष को अपनी भूमिका समझनी होगी।

संदर्भ

[1] एम.एन.श्रीवास्तव, भारतीय सामाजिक समस्याएँ, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1978, पृष्ठ-192

[2] अवधेश दीक्षित, बाबू हरिश्चंद्र को क्यों लिखना पड़ा 'देखी तुम्हरी काशी लोगों', काशी कथा, 19 जनवरी 2018 http://kashikatha.com/why-babu-harishchandra-written-dekhi-tumhari-kashi/

[3] देवेंद्र चौबे, समकालीन कहानी का समाजशास्त्र, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 2001, पृष्ठ-27

[4] महेश कटारे, महालीला का मध्यम अंक, पहरुआ, मेधा बुक्स, दिल्ली, 2002, पृष्ठ-60

[5] चंद्रकिशोर जायसवाल, नकबेसर कागा ले भागा, रचनाकार प्रकाशन, पूर्णियां, 2003, पृष्ठ-11

[6] [6] भिखारियों को रोजगार नहीं, भिक्षाटन ही पसंद https://hindi.thequint.com/hot-news/bhikhaariyon-ko-rojgaar-nhiin-bhikssaattn-hii-psnd

[7] महेश कटारे, आदि पाप, छछिया भर छाछ, अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, 2008, पृष्ठ- 64

[8] देवेंद्र चौबे, समकालीन कहानी का समाजशास्त्र, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 2001, पृष्ठ-28-29

[9] मैडनेस, मोरलिटी एंड मेडिसीन, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, 1985, पृष्ठ-3

[10] समाज के लिए खतरा: भारत में भिखारी https://hindi.mapsofindia.com/my-india/begging-in-india-a-menace-to-the-society/

[11] भारत में 79 हजार पढ़े-लिखे भिखारी https://www.dw.com/hi/%E0%A4%AD%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A4%A4-%E0%A4%AE%E0%A5%87%E0%A4%82-79-%E0%A4%B9%E0%A4%9C%E0%A4%BE%E0%A4%B0-%E0%A4%AA%E0%A5%9D%E0%A5%87-%E0%A4%B2%E0%A4%BF%E0%A4%96%E0%A5%87-%E0%A4%AD%E0%A4%BF%E0%A4%96%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A5%80/a-18967620

[12]भारत में 79 हजार पढ़े-लिखे भिखारी https://www.dw.com/hi/%E0%A4%AD%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A4%A4-%E0%A4%AE%E0%A5%87%E0%A4%82-79-%E0%A4%B9%E0%A4%9C%E0%A4%BE%E0%A4%B0-%E0%A4%AA%E0%A5%9D%E0%A5%87-%E0%A4%B2%E0%A4%BF%E0%A4%96%E0%A5%87-%E0%A4%AD%E0%A4%BF%E0%A4%96%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A5%80/a-18967620

[13]भारत में 79 हजार पढ़े-लिखे भिखारी https://www.dw.com/hi/%E0%A4%AD%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A4%A4-%E0%A4%AE%E0%A5%87%E0%A4%82-79-%E0%A4%B9%E0%A4%9C%E0%A4%BE%E0%A4%B0-%E0%A4%AA%E0%A5%9D%E0%A5%87-%E0%A4%B2%E0%A4%BF%E0%A4%96%E0%A5%87-%E0%A4%AD%E0%A4%BF%E0%A4%96%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A5%80/a-18967620

[14]भीख माँगना अपराध नहीं https://www.bbc.com/hindi/india/2009/10/091030_beggar_right_awa

[15]भीख माँगना अपराध नहीं https://www.bbc.com/hindi/india/2009/10/091030_beggar_right_awa

[16] शैलेश मटियानी, दो दुखों का एक सुख, 26/06/2018 (6.24 अपराहन) https://www.hindisamay.com/content/3772/1/%E0%A4%B6%E0%A5%88%E0%A4%B2%E0%A5%87%E0%A4%B6-%E0%A4%AE%E0%A4%9F%E0%A4%BF%E0%A4%AF%E0%A4%BE%E0%A4%A8%E0%A5%80-%E0%A4%95%E0%A4%B9%E0%A4%BE%E0%A4%A8%E0%A4%BF%E0%A4%AF%E0%A4%BE%E0%A4%81-%E0%A4%A6%E0%A5%8B-%E0%A4%A6%E0%A5%81%E0%A4%96%E0%A5%8B%E0%A4%82-%E0%A4%95%E0%A4%BE-%E0%A4%8F%E0%A4%95-%E0%A4%B8%E0%A5%81%E0%A4%96.cspx

[17] चंद्रकिशोर जायसवाल, नकबेसर कागा ले भागा, रचनाकार प्रकाशन, पूर्णियां, 2003, पृष्ठ-9

[18] चंद्रकिशोर जायसवाल, नकबेसर कागा ले भागा, रचनाकार प्रकाशन, पूर्णियां, 2003, पृष्ठ-17

[19] चंद्रकिशोर जायसवाल, नकबेसर कागा ले भागा, रचनाकार प्रकाशन, पूर्णियां, 2003, पृष्ठ-23

[20] चंद्रकिशोर जायसवाल, नकबेसर कागा ले भागा, रचनाकार प्रकाशन, पूर्णियां, 2003, पृष्ठ-29

[21] हृदयेश, मांस के चेहरे, सम्पूर्ण कहानियाँ, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2011, पृष्ठ-420

[22] हृदयेश, मांस के चेहरे, सम्पूर्ण कहानियाँ, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2011, पृष्ठ-424

[23] हृदयेश, मांस के चेहरे, सम्पूर्ण कहानियाँ, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2011, पृष्ठ-424

[24] महेश कटारे, आदि पाप, छछिया भर छाछ, अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, 2008, पृष्ठ- 64

[25] महेश कटारे, आदि पाप, छछिया भर छाछ, अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, 2008, पृष्ठ- 71

[26] महेश कटारे, आदि पाप, छछिया भर छाछ, अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, 2008, पृष्ठ-75

[27] चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, खुदा की देन, जीवन संग्राम के योद्धा, संपा व संकलन- संध्या कुमारी, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 2019, पृष्ठ-14
[28] चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, खुदा की देन, जीवन संग्राम के योद्धा, संपा व संकलन- संध्या कुमारी, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 2019, पृष्ठ-15
[29] चित्रा मुद्गल, आदि-अनादि, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ-116
[30] चित्रा मुद्गल, आदि-अनादि, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ-117
[31] चित्रा मुद्गल, आदि-अनादि, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ-110
[32] चित्रा मुद्गल, आदि-अनादि, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ-110
[33] सतीश जमाली, प्रथम पुरुष, साहित्यवाणी, इलाहाबाद, 1972, पृष्ठ-13
[34] रमेश उपाध्याय, मिट्टी, किसी देश के किसी शहर में, शब्दसंधान प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2015, पृष्ठ-31
[35] रमेश उपाध्याय, मिट्टी, किसी देश के किसी शहर में, शब्दसंधान प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2015, पृष्ठ-35
[36] अमरकांत, अमरकान्त की सम्पूर्ण कहानियाँ, खंड-एक, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 2013, पृष्ठ-85
[37] अमरकांत, अमरकान्त की सम्पूर्ण कहानियाँ, खंड-एक, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 2013, पृष्ठ-70
[38] अमरकांत, अमरकान्त की सम्पूर्ण कहानियाँ, खंड-एक, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 2013, पृष्ठ-86
[39] समाज के लिए खतरा: भारत में भिखारी
https://hindi.mapsofindia.com/my-india/begging-in-india-a-menace-to-the-society/
[40] चित्रा मुद्गल, भूख, चर्चित कहानियाँ, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994, पृष्ठ-44
[41] चित्रा मुद्गल, भूख, चर्चित कहानियाँ, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994, पृष्ठ-48-49
[42] हृदयेश, खेल, सम्पूर्ण कहानियाँ, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2011, पृष्ठ-226
[43] रामचंद्र गुहा, लेख- क्रिकेट और जाति, संपा-दिलीप एम मेनन, आधुनिक भारत का सांस्कृतिक इतिहास, नयी दिल्ली, 2010, पृष्ठ-19
[44] हृदयेश, खेल, सम्पूर्ण कहानियाँ, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2011, पृष्ठ-231
[45] जवाहर सिंह, कंगाली, अपने देश के परदेशी, पराग प्रकाशन, दिल्ली, 1985, पृष्ठ-65
[46] जवाहर सिंह, कंगाली, अपने देश के परदेशी, पराग प्रकाशन, दिल्ली, 1985, पृष्ठ-66
[47] जवाहर सिंह, कंगाली, अपने देश के परदेशी, पराग प्रकाशन, दिल्ली, 1985, पृष्ठ-73
[48] संजय जनागल, नया सवेरा, साहित्य शिल्पी, 4 अप्रैल 2017, पृष्ठ-2
https://www.sahityashilpi.com/2011/02/blog-post_21.html
[49] संजय जनागल, नया सवेरा, साहित्य शिल्पी, 4 अप्रैल 2017, पृष्ठ-2
https://www.sahityashilpi.com/2011/02/blog-post_21.html
[50] भिखारियों को रोजगार नहीं, भिक्षाटन ही पसंद https://hindi.thequint.com/hot-news/bhikhaariyon-ko-rojgaar-nhiin-bhikssaattn-hii-psnd

उपसंहार

वर्तमान समय में पूरा विश्व परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है | यह परिवर्तन भौतिक, आर्थिक, राजनीतिक,सामाजिक तकनीक सहित कई स्तरों पर हो रहा है | बदलाव के इस दौर में सबसे ज्यादा नुकसान मानव मूल्यों का हुआ | सब कुछ जल्दी पा लेनी की प्रवृत्ति भीतर ही भीतर हमें खोखला कर रही है | जीवन के तमाम क्षेत्रों में भले हमने प्रगति कर ली है लेकिन इंसान के आपसी संबंध बुरी तरीके से उलझते जा रहे हैं | विकास के भ्रम में जी रहा समाज भी अंततः खुद को अकेला पाता है | इंसानों के बीच बढ़ती दूरी भी धीरे-धीरे उपेक्षा में बदलने लगती है | ऐसी व्यवस्था निर्मित होने लगी है जिसमें तालमेल बैठाने में असफल व्यक्ति उपेक्षित कर दिया जा रहा है | वैसे उपेक्षा समाज के लिए कोई नया विषय नहीं है लेकिन आधुनिक समय की जटिलता ने इसमें वृद्धि की है | कई बार तो उपेक्षा अमानवीयता के स्तर तक पहुँच जाती है | भारतीय समाज में विकास की समावेशी प्रवृत्ति देखने को नहीं मिलती है | इस वजह से पहले से ही पिछड़ा रहा समाज का एक बड़ा तबका और पिछड़ता चला गया | सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उपेक्षित समुदाय की चेतना इतनी कुंद पड़ गयी कि कई बार उनको एहसास भी नहीं होता है कि वे सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक सभी स्तरों पर पिछड़ गए हैं | इसमें तथाकथित रूप से खुद को मुख्यधारा में मान रहा व्यक्ति भी दरअसल में हाशिये की ज़िंदगी जी रहा होता है |

दलित, ओबीसी, आदिवासी और स्त्री हमारे समाज में हाशिये पर रहा वर्ग है | अपने अधिकार को लेकर व्यवस्था के साथ इसकी टकराहट जारी है | साहित्य और समाज में इन्होंने अपनी समस्याओं को लेकर अलग-अलग विमर्श खड़ा किया | इनके संघर्ष से ही चेतना ग्रहण करके समाज में उपेक्षित कुछ और समुदायों ने अपनी आवाज उठानी शुरू की | विदेश की तरह भारत में भी एलजीबीटी समुदाय अपने अधिकारों को लेकर लड़ाई लड़ रही है | वैसे तो यह बहुत बड़ा समुदाय है जिसमें हिजड़ा (ट्रांसजेंडर), समलैंगिक और उभयलैंगिक शामिल हैं | पुरुष समलैंगिकता, स्त्री समलैंगिकता और ट्रांसजेंडर को लेकर विमर्श अभी शुरूआती दौर में है | समलैंगिकता की प्रकृति को लेकर विमर्शकारों में बहस जारी है | इस विमर्श में एक स्वीकार्य नामकरण का भी अभाव है | 'तृतीय लिंगी विमर्श' नाम अंग्रेजी के 'एलजीबीटी' जैसा विस्तृत दायरा बनाने में असमर्थ है हालाँकि यह विमर्श सिर्फ ट्रांसजेंडर तक ही सीमित है | समलैंगिकता को मनोवैज्ञानिकों ने भले इसे प्राकृतिक बताया है लेकिन इसकी स्वाभाविकता से संबंधित कहानियों का हिन्दी साहित्य में अभाव है | जो कहानियाँ अपने शोध के लिए उपलब्ध हो पायी उसमें इस संबंध की परिकल्पना पूरी तरह से स्पष्ट नहीं है | कहानियाँ इस विमर्श की शुरूआत तो करती हैं लेकिन बहुत आगे नहीं ले जा पाती | कई बार पुरुष समलैंगिक उभयलिंगी भी होते हैं | यह एक जटिल परिस्थिति है | ऐसे जटिल संबंधों को और भी व्याख्यायित किए जाने की जरूरत है | हालाँकि सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'आग में गर्मी कम क्यों है' में इसकी एक झलक मिलती है | हिन्दी कहानी और समलैंगिक विमर्श में अभी यह किया जाना बाकी है | एलजीबीटी समुदाय का दायरा बहुत बड़ा है | इसमें सबकी

परिस्थितियाँ अलग है | इसलिए जाहिर है कि उनकी समस्याएँ भी एक जैसी नहीं है | भारतीय समाज में उनका संघर्ष दोहरा है | उन्हें अपने अस्तित्व की लड़ाई के लिए समाज के अन्दर भी जूझना पड़ रहा है और कानूनी रूप से भी | उनके आन्दोलन और साहित्यिक विमर्श की दशा और दिशा अभी बहुत स्पष्ट नहीं है | उनके अंदर भविष्य और वर्तमान का द्वंद्व भी है | ट्रांसजेंडर को सामाजिक और कानूनी मान्यता भले मिल गयी है लेकिन उनको बराबरी का अधिकार नहीं मिला है | समलैंगिकता अपराध की श्रेणी से बाहर तो हो गया है लेकिन उन्हें अन्य तमाम कानूनी अधिकार और सामाजिक स्वीकार्यता नहीं मिली है | साहित्य में और उसमें भी खास कर हिंदी कहानियों ने इस दिशा में एक विमर्श की शुरुआत जरुर की है लेकिन अभी भी इस समुदाय की आंतरिक जटिलता को और स्पष्ट किया जाना बाकी है | जब सारी जटिलता सुलझ जायेगी तब ही विमर्श अपनी सही दिशा की और अग्रसर हो पायेगा | हिजड़ा शब्द समाज में अपमानजनक रूप में रूढ़ हो गया है इसलिए इस शोध ग्रन्थ में इसका प्रयोग करते हुए बहुत सहजता महसूस नहीं हुई | किन्नर शब्द पर हुए विवाद का विवरण अध्याय में दिया जा चुका है | इन दोनों के अलावा हिंदी में कोई भी प्रचलित शब्द नहीं है जो इसकी भरपाई कर सके | इसलिए मेरा मत है कि जब तक कोई नया सार्थक और स्वीकार्य शब्द नहीं मिल जाता तब तक हमें अंग्रेजी के प्रचलित शब्द 'ट्रांसजेंडर' का ही प्रयोग करना चाहिए | केरल उच्च न्यायलय ने भी इसी शब्द के प्रयोग का आदेश दिया है | इस शोध ग्रन्थ में भी संप्रेषण को ध्यान में रखते हुए भले ही कुछ जगहों पर हिजड़ा शब्द का प्रयोग किया है लेकिन बाकी जगह ट्रांसजेंडर शब्द ही प्रयुक्त किया गया है | ट्रांसजेंडर प्राचीन भारतीय समाज से लेकर आधुनिक समाज तक भारतीय समाज के हिस्सा रहे हैं | कुछ खास अवसरों पर ही उनकी उपस्थिति स्वीकार्य की जाती है | बाकी समय उनका अपना समाज है जिसमें रहने को वो अभिशप्त हैं | समाज की तथाकथित मुख्यधारा में उनको जगह नहीं दी गयी है | उनके पास न शिक्षा का अधिकार है और न ही रोजगार के अवसर | सिर्फ संतानोत्पत्ति करने में असक्षम होने की वजह से ट्रांसजेंडर समाज में उपेक्षित है | पारिवारिक सहयोग और समाज का उदार रवैया ट्रांसजेंडर की जिन्दगी में बदलाव ला सकता है | लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी इसका सबसे बड़ा उदहारण हो सकते हैं | संगीता गांधी की कहानी 'मैंने दुनिया जीत ली' में भले ही परिवार साथ छोड़ देता है लेकिन ट्रांसजेंडर बच्चे की माँ उसका साथ कभी नहीं छोड़ती | इस वजह से वह विदेश जाकर पढाई कर पाता है | किरण सिंह की 'संझा' कहानी में समाज का वह चरित्र सामने आता है जिसमें आदमी की पहचान लिंग से होती है | संझा का पति नपुंसक है जिसको वह ईलाज करके ठीक कर देती है लेकिन वही उसकी बेईज्जती करता है | सिर्फ इसलिए क्योंकि वह हिजड़ा थी | उसका वैद्य होना महत्वपूर्ण नहीं बल्कि उसका लिंग महत्वपूर्ण हो जाता है | इसलिए कानूनी अधिकार के साथ-साथ इसमें बदलाव के लिए समाज की भूमिका महतवपूर्ण हो जाती है |

वृद्धावस्था को जीवन की संध्या माना गया है | एक तरह से यह जीवन का अंतिम पड़ाव भी होता है | यह वह समय होता है जब इंसान शारीरिक और मानसिक रूप से सबसे कमजोर महसूस करता है | उसके कार्य करने की क्षमता घट जाती है | यही समय होता है जब उनकी संतानें उनको उपेक्षित करने

लगती है | ऐसा नहीं है सिर्फ आज ही वृद्धों को उपेक्षित किया जा रहा है बल्कि मानव के प्रारंभिक काल से ही ऐसा होता आ रहा है | प्राचीन कबीलाई समाज में जैसे ही वृद्धों से किसी भी प्रकार का खतरा महसूस होता था, उन्हें मार दिया जाता था | लेकिन जिस समाज को वृद्धों की सहायता से अपनी किसी तरह की समस्या का समाधान नजर आता था, वहाँ उनकी इज्जत की जाती थी | जहाँ वृद्धों की मुख्य भूमिका रही, वहाँ लड़ाई-झगड़े नहीं होते थे क्योंकि वे अनुभव से उसका समाधान कर देते थे | वानर जाति में भी वृद्धों का अनुकरण किया जाता है | सत्ता प्राप्ति के लिए वानर भी मनुष्यों की तरह वृद्धों की हत्या कर देता है |

आधुनिक समय में शहरीकरण की गति बहुत तीव्र रही है | अधिक से अधिक संसाधन जुटाने की अंधी दौड़ में हरेक के पास वक्त की कमी हो गयी | इससे सबसे ज्यादा प्रभावित वृद्ध हुए | उनके लिए न बच्चों के पास समय रहा और न बड़ों के पास | वृद्ध अकेले रह गए | विदेशों में इसी वजह से वृद्धाश्रम का चलन बढ़ा | हालाँकि भारत में भी वृद्धों की स्थिति दयनीय है लेकिन भारत में वृद्धाश्रम को बड़े पैमाने पर स्वीकार नहीं किया गया | हालाँकि रामदरश मिश्र की कहानी 'भविष्य' हिंदी की उन गिनी-चुनी कहानियों में है जो वृद्धाश्रम व्यवस्था को सकारात्मक तरीके से देखती है | भारत में ग्रामीण वृद्धों की हालत शहरी वृद्धों से अच्छी है | इसकी वजह यह है कि ग्रामीण वृद्धों के पास आज भी संपत्ति का मालिकाना हक़ बचा हुआ है | शहर में घर का घटता छोटा आकर और नयी पीढ़ी द्वारा व्यक्तिगत जीवन की अदम्य चाह ने बुजुर्गों को हाशिये पर पहुँचा दिया | पंकज मित्र की 'पड़ताल' कहानी में इस स्थिति का सटीक चित्रण हुआ है | किशोरीरमण बाबू को टीवी देखने में बाधा पहुँचाने की वजह से उनको अपना कमरा छोड़ कर बाहर निकलना पड़ा | बुजुर्गों का नयी पीढ़ी से टकराव कृष्णा सोबती की 'दादी अम्मा' कहानी में देखी जा सकती है | कविता की कहानी 'उलटबांसी' में वृद्ध माँ अकेलेपन से तंग आकर शादी करना चाहती है | अंत में परिवार दो पक्ष में बंट जाता है | एक पक्ष उनकी शादी डॉक्टर साहब से करा देता है | उषा प्रियंवदा की कहानी 'वापसी' में गजाधर बाबू परिवार के साथ तालमेल नहीं बैठा पाते और दुबारा नौकरी की तलाश में निकल पड़ते हैं|

हर कहानी में अलग-अलग समस्या है | लेकिन सबसे बड़ी समस्या है दो पीढ़ी का आपस में तालमेल नहीं बिठा पाना | भारतीय समाज में वृद्धों की दयनीय अवस्था के लिए नयी पीढ़ी को जिम्मेदार माना गया है | जबकि यह मूल समस्या से मुँह चुराने जैसा है | किसी भी नयी पीढ़ी के लिए तमाम पुराने मूल्यबोध के साथ जीना सहज नहीं रहा है | इसलिए नयी पीढ़ी ने अपनी पीढ़ी का अनुसरण अपनी सुविधानुसार ही किया है | नयी सदी में बदलाव की गति इतनी तेज हो गयी है कि पुराने मूल्यों का ह्रास और उसकी उपेक्षा होने लगी | इससे समाज में एक बदलाव तो आया लेकिन वृद्ध हाशिये पर जाने लगे | नयी पीढ़ी के लिए यह बहुत बड़ी चुनौती है | हमें वृद्धों को जिम्मेदारी ना मानकर आवश्यकता मानना होगा | हमें अपनी मानसकिता बदलनी होगी | यह प्रक्रिया दोनों तरफ से हों बेहद जरुरी है |

प्राचीन भारतीय साहित्य और समाज में विकलांग को खल पात्र के रूप में प्रस्तुत किया जाता रहा है | विदेशों में उनको अनुपयोगी मानकर उनकी हत्या का भी रिवाज था | उनकी मंथरा और शकुनी सिर्फ रामायण महाभारत के पात्र नहीं हैं बल्कि उस समाज की सोच का प्रतिनिधित्व भी करते हैं | समाज में विकलांगों को लेकर जो मानसिकता थी वह साहित्य में भी चित्रित हुई | आधुनिक समय में शिक्षा और तकनीक के विकास ने पुरानी धारणा को नकार दिया | आज विकलांग सब कुछ कुछ करने में सक्षम है जो बाकी लोग कर सकते हैं | शिवानी की कहानी 'अपराजिता' में डॉ चंद्रा अपनी विकलांगता के बावजूद अपने लक्ष्य को पाने में सफल होती है | अन्य उपेक्षित पात्र की तरह विकलांगों को भी समाज के सहयोग की उतनी ही जरुरत है वरना कुसुमलता मलिक की कहानी 'उपहार' के विजया की तरह उसकी हालत रिक्त स्थान की पूर्ति भर रह जाती है | समाज के सहयोग से उसके आत्मविश्वास में भी वृद्धि होती है और वह समाज की बेहतरी में योगदान भी दे पाती है | विकलांगों की जिजीविषा अज्ञेय की कहानी 'खितीन बाबू' में देखी जा सकती है | अरुण यादव की कहानी 'परफेक्शनिस्ट बाबू' समाज की मानसिकता में बदलाव की कहानी है | उमाशंकर चौधरी की कहानी 'कंपनी राजेश्वर सिंह का दुख' यह साबित करती है कि एक विकलांग भी सकलांग की तरह अपने परिवार का नेतृत्व कर सकता है | सच्चिदानंद धूमकेतु की कहानी 'एक थी शकुन' दी' एक विकलांग नारी के स्वाभिमान को प्रदर्शित करता है | हिंदी कहानियाँ विकलांग जीवन का यथार्थ भी प्रस्तुत करती है और साथ ही विकल्प भी सुझाती है | उपेक्षित समुदाय के लिए सबसे महत्वपूर्ण है कि उसके अन्दर खुद के प्रति विश्वास पैदा हो | उनमें आत्मविश्वास की बेहद कमी होती चली जाती है | समाज का सहयोग इसमें बहुत जरुरी है | समाज अपनी भूमिका तय किये बिना विकलांगता को व्यक्तिगत समस्या मानता है जबकि यह सामूहिक समस्या है | विकलांगता के कई कारण है और उन कारणों से समाज का भी संबंध है | कानूनी स्तर पर भले उनको अधिकार प्राप्त हो जाए लेकिन सबसे जरुरी है सामजिक अधिकार और स्वीकार्यता | यह किसी भी उपेक्षित तबके के लिए जरुरी है | इसमें विकलांगता भी शामिल है |

भारतीय समाज में भिक्षाटन करके जीवन यापन करने को घृणा की दृष्टि से नहीं देखा जाता था | वैसे यह सुविधा कुछ खास लोगों को ही प्राप्त थी | धर्मशास्त्र में भी इसके लिए प्रावधान किया गया है | आज भी लोग ब्राहमणों को सहर्ष भिक्षा देते हैं | लेकिन आज भीख माँगने का स्वरुप बदल गया है | आधुनिक समय में भीख माँगना एक तरह से रोजगार का विकल्प हो गया | कुछ लोग जीवन के अन्य साधनों से नाउम्मीद होकर जीवन-यापन के लिए भीख माँगना शुरू कर देते हैं | जो समाज सामान्यतः उनकी उपेक्षा करता है वही एक भिखारी के तौर पर उन्हें भीख देकर धार्मिक दृष्टि से अपने लिए पुण्य कमाना चाहता है | जो लोग किसी स्वाभिमानी व्यक्ति की मदद नहीं करते वही व्यक्ति किसी धार्मिक स्थल के बाहर बैठे भिखारी को भीख दे देता है | इसके पीछे पाप-पुण्य की धारणा काम करती है | शहरीकरण की प्रक्रिया ने भी बहुत तेजी से भिखारियों को पैदा किया है | शहर अपने विस्तार के साथ-साथ लोगों से छोटे-छोटे रोजगार छिनता चला जाता है जो अंत में कुछ लोगों को भीख माँगने पर मजबूर कर देता है | सतीश जमाली की 'पुल' और रमेश उपाध्याय की 'मिट्टी' कहानी इसका उदाहरण है |

रोजगार की अनुपलब्धता भीख माँगने की एक बड़ी वजह है | 2011 की जनसंख्या के अनुसार पढ़े-लिखे भिखारियों की संख्या भारत में बहुत ज्यादा है | अमरकांत की 'दो चेहरे' कहानी उस धारणा को तोड़ती है जिसके अनुसार यह माना जाता है कि भिखारी कामचोर होते हैं | इस धंधे के साथ धार्मिकता का जो जुड़ाव है उससे यह एक बड़े व्यवसाय में बदल गया है | इसके साथ लोगों की आस्था भी जुड़ी है | महानगरों में तो यह इतने बड़े व्यवसाय में बदल गया है कि इसके नेटवर्क का पता पुलिस को भी नहीं रहता है | बड़े पैमाने पर मानव तस्करी के जरिये इस धंधे को दिन-प्रतिदिन विस्तार मिल रहा है |

सवाल यह है कि भिक्षावृत्ति का समाधान क्या है ? राज्य सरकार और केंद्र सरकार दोनों की कई योजना भिखारियों के लिए है | लेकिन कोई भी योजना सफल नहीं हो पाती है | जो एक बार इस धंधे में उतर जाते हैं, वह इससे बाहर नहीं आना चाहते हैं | बदलाव के लिए शुरूआत से ही कदम उठाने होंगे वरना जिसको बैठे-बिठाये खाना-पीना मिल जाएगा वो काम करना क्यों पसंद करेगा ? मानव तस्करी के जरिये इस धंधे भिखारी बनाये गए लोगों को समस्या तो और भी जटिल है | वह चाह कर भी इससे निकल नहीं सकते | भिक्षावृत्ति को अचानक से कम करना बहुत मुश्किल है | यह व्यवस्था की ऐसी दिक्कत है जिसमें बहुत सारी समस्याओं के सूत्र एक दूसरे से मिले हुए हैं | लेकिन अगर सरकार और आम आदमी मिलकर प्राथमिक स्तर से इस दिशा में कदम उठाये तो इसको कम किया जा सकता है | दोनों पक्ष को अपनी भूमिका समझनी होगी |

संदर्भ सूची

आधार सामग्री (Primary Source)

1. संपा.- गिरिराज शरण, *विकलांग जीवन की कहानियाँ*, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2007
2. संपा.- गिरिराज शरण, *वृद्धावस्था की कहानियाँ*, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2010
3. संपा.- डॉ. एम. फ़िरोज़ खान, *हम भी इंसान हैं*, वांग्मय बुक्स, अलीगढ़, 2018
4. संपा.- डॉ. विनय कुमार पाठक और डॉ. राजेश कुमार मानस, *विकलांग विमर्श की कहानियाँ* (भाग-1), नीरज बुक सेंटर,दिल्ली, 2010
5. श्रृंखला संपा.- अखिलेश, संपा.- प्रियदर्शन, *बड़े बुजुर्ग*, राजकमल प्रकाशन, 2014
6. अमरकान्त, *अमरकान्त की सम्पूर्ण कहानियाँ* (पहला खंड), भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 2013
7. अमरकान्त, *अमरकान्त की सम्पूर्ण कहानियाँ* (दूसरा खंड), भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 2013
8. संजय जनागल, नया सवेरा(कहानी), *साहित्य शिल्पी डॉट.कॉम.*, 4 अप्रैल 2016, (3.57 पूर्वाहन)
9. प्रेमचंद, *मानसरोवर*(आठवां खंड), सुमित्र प्रकाशन, इलाहाबाद, 2014
10. यतीश अग्रवाल, *डागडर बाबू*, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2012
11. संपा- डॉ. शिवनारायण, *वृद्ध जीवन की कहानियाँ*, साहित्य भारती, दिल्ली, 2012
12. संपा.- विनोद शाही, *जगदीश चन्द्र रचनावली* (खंड चार), आधार प्रकाशन, पंचकूला(हरियाणा), 2011
13. संपा.- चंद्रकांत बांदिवडेकर, *धर्मवीर भारती ग्रंथावली* (खंड एक), वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2007
14. जवाहर सिंह, *अपने देश के परदेशी*, पराग प्रकाशन, दिल्ली, 1985
15. संपा.- उदयन वाजपेयी, *श्रीकांत वर्मा रचियता*, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2003
16. मेहरुनिसा परवेज, सीढियों का ठेका, *आदम और हव्वा* ,दिल्ली ,नेशनल पब्लिशिंग हाउस ,1972
17. अनिल प्रभा कुमार, *कतार से कटा घर*, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2018
18. सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय', खितीन बाबू, *हिंदी समय डॉट कॉम*, 15/07/18, 3.04 अपराहन
19. संपा.- राजेन्द्र यादव, *एक दुनिया : समानान्तर*, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1993
20. एस.जी.एस. सिसोदिया 'निसार', *संघर्ष*, स्वराज प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2014
21. जितेन्द्र विसारिया, *नये सजन घर आए*, भारतीय ज्ञानपीठ, 2015
22. संध्या कुमारी, *जीवन संग्राम के योद्धा*, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली, 2019
23. कुसुमलता मलिक, *कही अनकही*, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018
24. श्रृंखला संपा.- अखिलेश, संपा.- मनोज कुमार पांडेय, *माँ*, राजकमल प्रकाशन, 2014
25. श्रृंखला संपा.- अखिलेश, संपा.- राजू शर्मा, *पिता*, राजकमल प्रकाशन, 2014
26. संपा- डॉ. विमल ग्यानोबाराव सूर्यवंशी, *थर्ड जेंडर चर्चित कहानियाँ*, रोशनी पब्लिकेशंस, कानपुर, 2018
27. संपा- डॉ.एम.फ़ीरोज खान, *हमख्याल*, विकास प्रकाशन, कानपुर, 2018
28. संपा- पुरोबी ए. भण्डारी, *दास्तान-ए-किन्नर*, विकास प्रकाशन, कानपुर, 2018
29. उदय प्रकाश, *तिरिछ*, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2010
30. महेश कटारे, *छछिया भर छाछ*, अंतिका प्रकाशन, गाज़ियाबाद, 2008

31. संपा- प्रमोदकुमार दुबे, *भारती*, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली, 2006
32. संपा- डॉ. विमल खांडेकर, *हिंदी कहानी विविधा*, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय नई दिल्ली, 2008
33. ममता कालिया, *ममता कालिया की कहानियाँ*, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2005
34. अज्ञेय, *मेरी प्रिय कहानियाँ*, राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, 1987
35. भीष्म साहनी, *निशाचर*, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1983
36. मैत्रेयी पुष्पा, *चिह्नार*, आर्य प्रकाशन मंडल, दिल्ली, 1991
37. जया जादवानी, *अन्दर के पानियों में कोई सपना काँपता है*, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2002
38. तेजेन्द्र शर्मा, *पाँच बेहतरीन कहानियाँ*, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2017
39. सच्चिदानंद धूमकेतु, *एक थी शकुन'* दी, पराग प्रकाशन, दिल्ली, 1979
40. चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, *खुदा की देन*, वाई.डी. पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2011
41. रमेश उपाध्याय, *किसी देश के किसी शहर में*, शब्दसंधान, नयी दिल्ली, 2015
42. हृदयेश, *संपूर्ण कहानियाँ*, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2011
43. महेश कटारे, *पहरुआ*, मेधा बुक्स, दिल्ली, 2002
44. चित्रा मुद्गल, *आदि-अनादि*, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009
45. चित्रा मुद्गल, *चर्चित कहानियाँ*, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994
46. सतीश जमाली, *प्रथम पुरुष*, साहित्यवाणी, इलाहाबाद, 1972
47. चन्द्रकिशोर जायसवाल, *नकबेसर कागा ले भागा*, रचनाकार प्रकाशन, पूर्णियां, 2003

पत्रिकाएँ

वाङ्मय, संपा- डॉ. एम.फ़ीरोज अहमद, जनवरी-मार्च 2017, अलीगढ़,
जनकृति, संपा- कुमार गौरव मिश्रा, अगस्त 2015, वर्धा
हंस, संपा- राजेन्द्र यादव, अरुण यादव, परफेक्शनिस्ट बाबू, जनवरी 2013, नयी दिल्ली
इन्द्रप्रस्थ भारती, संपा- मैत्रेयी पुष्पा, उपासना, मुक्ति, सितम्बर 2016, नयी दिल्ली
धर्मयुग, संपा- धर्मवीर भारती, उपहार अंक, 31 दिसम्बर 1978, मुम्बई
हंस, संपा.-राजेंद्र यादव, किरण सिंह, सँझा, सितम्बर 2012, नयी दिल्ली
कथाबिम्ब, (कहानी विशेषांक), संपा-मंजू श्री, अनिल प्रभा कुमार, दीवार के पार, 2014, मुम्बई
हंस, संपा.-संजय सहाय, उषा राय, नमक की डली, फरवरी 2104, नयी दिल्ली
नया ज्ञानोदय, संपा.- रवीन्द्र कालिया, किरण सिंह, माहुर, फरवरी 2010, नयी दिल्ली

वेब स्रोत

साहित्य शिल्पी, संजय जनागल, नया सवेरा, 4 अप्रैल 2017, 18 मार्च 2017
हिंदी समय, शैलेश मटियानी, दो दुखों का एक सुख, 12 मार्च 2018,
https://www.hindisamay.com/content/3772/1/%E0%A4%B6%E0%A5%88%E0%A4%B2%E0%A5%87%E0%A4%B6-%E0%A4%AE%E0%A4%9F%E0%A4%BF%E0%A4%AF%E0%A4%BE%E0%A4%A8%E0%A5%80-%E0%A4%95%E0%A4%B9%E0%A4%BE%E0%A4%A8%E0%A4%BF%E0%A4%AF%E0%A4%BE%E0%A4%81-%E0%A4%A6%E0%A5%8B-%E0%A4%A6%E0%A5%81%E0%A4%96%E0%A5%8B%E0%A4%82-%E0%A4%95%E0%A4%BE-%E0%A4%8F%E0%A4%95-%E0%A4%B8%E0%A5%81%E0%A4%96.cspx

सहायक ग्रन्थ-सूची

1. डॉ. श्रीमती प्रेम सिंह और डॉ. रिम्पी खिल्लन, *समकालीन कहानी और उपेक्षित समाज,* श्री नटराज प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2009
2. संपा- डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह और रवि कुमार गोंड, *भारतीय साहित्य एवं समाज में तृतीय लिंगी विमर्श*, अमन प्रकाशन, कानपुर, 2016
3. गोपाल राय, *हिंदी कहानी का इतिहास,*1950-1990, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2011
4. गोपाल राय, *हिंदी कहानी का इतिहास,*1951-1975, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2014
5. राजकमल चौधरी, *मछली मरी हुई*, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2009
6. महेंद्र भीष्म, *किन्नर कथा,* सामयिक बुक्स, नयी दिल्ली, 2011
7. विनोद कुमार मिश्र, *विकलांगता समस्याएं व समाधान*, जगतराम एंड संन्स, नयी दिल्ली, 2007
8. संपा- डॉ. इकरार अहमद, *किन्नर विमर्श: साहित्य के आईने में*, , वांग्मय बुक्स, अलीगढ़, 2017
9. विनोद कुमार मिश्र, *विकलांगों के लिए रोजगार,* भारतीय प्रकाशन संस्थान, 2008
10. ज्योतिष जोशी, *कहानी की समकालीनता*, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 2007
11. देवेन्द्र चौबे, समकालीन कहानी का समाजशास्त्र, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 2001
12. श्यामचरण दुबे, *भारतीय समाज*, अनु.- वंदना मिश्र, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नयी दिल्ली, 2001
13. जवाहरलाल नेहरु, *हिंदुस्तान की कहानी,* सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2010
14. निर्मला जैन, *साहित्य का समाजशास्त्रीय चिंतन*, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली, 2009
15. संपा- डॉ. शैलजा माहेश्वरी, *विकलांग विमर्श का वितान*, मित्तल एंड संस, दिल्ली, 2017
16. डॉ. रामविलास शर्मा, *प्रेमचंद और उनका युग,* राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2006
17. रामस्वरूप चतुर्वेदी, *हिंदी गद्य विन्यास और विकास,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2006
18. मैनेजर पाण्डेय, *साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका*, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला,2006
19. चंद्रमौलेश्वर प्रसाद, *वृद्धावस्था विमर्श*, संपा- ऋषभदेव शर्मा, परिलेख प्रकाशन, बिजनौर,2016
20. संपा- डॉ. सुरेश माहेश्वरी, *विकलांग-विमर्श का वैश्विक परिदृश्य*, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2014
21. प्रतिभा ज्योति, *एसिड वाली लड़की*, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2016
22. डॉ. शिवकुमार राजौरिया, *वृद्धावस्था और हिंदी कहानी*, अद्वैत प्रकाशन, दिल्ली, 2017
23. श्रीमती प्रेम सिंह, *दीप से दीप जले*, स्वराज प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2011
24. केदार कुमार मंडल, *हिंदी उपन्यासों में विकलांगों का जीवन*, ईशा ज्ञानदीप, नयी दिल्ली, 2016
25. संपा- डॉ. विजेन्द्र प्रताप सिंह और रविकुमार गोंड़, *विमर्श का तीसरा पक्ष*, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, 2016
26. मालिनी चिब, *वन लिटिल फिंगर*, सेज प्रकाशन, 2016
27. विनोद कुमार मिश्र, *विकलांग विभूतियों की जीवनगाथाएँ,* किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2011
28. डॉ. विजय कुमार वर्मा, *दिव्यांग विभूतियाँ सामाजिक सरोकार*, आशा प्रकाशन, कानपुर, 2017
29. भावना सरोहा, कथा साहित्य, *सिनेमा और वृद्ध जीवन*, कल्पना प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2018
30. हेलन कीलर, *मेरा जीवन*, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2013
31. गीतिका 'वेदिका', *अधूरी देह*, क्वालिटी बुक्स पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 2016
32. उस्मान खान, *H_2SO_4 एक प्रेम कहानी*, अंजुमन प्रकाशन, इलाहाबाद, 2016

33. लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी, *मैं हिजड़ा मैं लक्ष्मी*, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2015
34. डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह, *हिंदी उपन्यासों के आईने में थर्ड जेंडर*, अमन प्रकाशन, कानपुर, 2017
35. अरुणिमा सिन्हा, एवरेस्ट की बेटी, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2016
36. Editors-Dr. Mohd. Shamim And Dr. Noor Fatima, *The Invisible Minority In Literature And Society, Haunting Tragedies*, Vangmaya Books, Aligarh, 2016
37. विजय शर्मा, *बलात्कार, समलैंगिकता एवं अन्य साहित्यिक आलेख*, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, 2019
38. संपा- मिलन बिश्नोई, *किन्नर विमर्श साहित्य और समाज*, विद्या प्रकाशन, कानपुर, 2018
39. चन्द्रमौलेश्वर प्रसाद, *वृद्धावस्था विमर्श*, संपा- ऋषभदेव शर्मा, परिलेख प्रकाशन, नजीबाबाद,2016
40. संपा- डॉ. विनय कुमार पाठक, *विकलांग विमर्श*, अखिल भारतीय विकलांग चेतना परिषद
41. डॉ. संगीता परमानंद, *विकलांगता का समाजशास्त्रीय अध्ययन*, लता साहित्य सदन, गाजियाबाद, 2017
42. डॉ. इकरार अहमद, *किन्नर विमर्श*, वाङ्मय बुक्स, अलीगढ़, 2017
43. संपा- शरद सिंह, *थर्ड जेंडर विमर्श*, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019
44. संपा- डॉ. एम. फ़ीरोज़ खान, *थर्ड जेंडर और साहित्य*, विकास प्रकाशन, कानपुर, 2018
45. संपा- मैरी ई. जॉन और जानकी नायर, *कामसूत्र से 'कामसूत्र' तक*, अनुवाद- अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2008
46. संपा- रमेश उपाध्याय, संज्ञा उपाध्याय, *हिन्दी कहानी में नये आंदोलन की जरूरत*, शब्दसंधान प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2012
47. संपा- अकरम हुसैन, मनीष कुमार गुप्ता, *थर्ड जेंडर: कथा की हकीकत*, अनुसंधान पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर, 2018
48. एरिक फ्रॉम, *प्रेम का वास्तविक अर्थ*, अनुवाद एवं प्रस्तुति युगांक धीर, संवाद प्रकाशन, मेरठ, 2010
49. अनु- नरेन्द्र सैनी, *उसका प्रेमी: विश्व-साहित्य से चुनिंदा प्रेम-कहानियां*, संवाद प्रकाशन, मेरठ, 2010
50. संपा- सर्वेश कुमार मौर्य, श्रृंखला संपा.- किशन कालजयी, *उत्तर-औपनिवेशिक विमर्श*, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, 2018
51. पं. विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक', *भिखारिणी*, नार्थ इण्डिया पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीबूटर्स, दिल्ली, 2010
52. संपा- डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह, *अस्तित्व और पहचान*, अमन प्रकाशन, कानपुर, 2019
53. सुमन भाटी, *समाज और किन्नर*, साहित्य संचय, दिल्ली, 2019
54. चित्रा मुद्गल, *पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा*, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, 2016
55. करण जौहर, *एक अनोखा लड़का*, प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2017
56. महेंद्र भीष्म, *मैं पायल*, अमन प्रकाशन, कानपुर, 2016
57. मानोबी बंदोपाध्याय, *पुरुष तन में फँसा मेरा नारी मन*, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, 2018
58. डॉ. रमेश चन्द्र मीणा, *वृद्धों की दुनिया*, लता साहित्य सदन, गाजियाबाद, 2015
59. पॉलो फ्रेरा, *उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र*, अनु- रमेश उपाध्याय, ग्रन्थ शिल्पी, नई दिल्ली, 1996
60. संपा- मिलन बिश्नोई, *किन्नर विमर्श साहित्य और समाज*, विद्या प्रकाशन, कानपुर, 2018
61. प्रेमचंद, *रंगभूमि*, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, 2018
62. बच्चन सिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
63. दिलीप.एम.मेनन, लेख- क्रिकेट और जाति (रामचंद्र गुहा)*आधुनिक भारत का सांस्कृतिक इतिहास*, हिंदी अनुवाद - बिपेन्द्र कुमार, ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली, 2010

64. एम.एन.श्रीवास्तव, *भारतीय सामाजिक समस्याएँ*, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1978
65. सीमोन द बोउवार, *ए वेरी ईजी डेथ*, संपादन एवं भावानुवाद- गरिमा श्रीवास्तव, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012

पत्रिकाएँ

1. संपा.- कुमार गौरव मिश्रा, *जनकृति*, थर्ड जेंडर विशेषांक, अगस्त 2016
2. संपा.- डॉ. एम. फ़ीरोज अहमद, *वांग्मय*, खण्ड -दो, थर्ड जेंडर: अनूदित कहानियाँ, हिजड़ों पर केन्द्रित अंक, अप्रैल-जून 2017
3. संपा.- कुमार गौरव मिश्रा, *जनकृति,* पुनीत बिसारिया, किन्नर विमर्श: समाज के परित्यक्त वर्ग की व्यथा कथा, दिसम्बर 2015
4. संपा.- डॉ. एम. फ़ीरोज अहमद, *वांग्मय*, खण्ड-तीन, थर्ड जेन्डर: कथा आलोचना, जुलाई-दिसम्बर 2017
5. संपा.- पंकज विष्ट, *समयांतर*, भावना मासीवाल, जेंडर की निर्मिती और राज्य की भूमिका, अप्रैल 2016
6. संपा.- कुमार गौरव मिश्रा, *जनकृति*, बुजुर्गों पर केन्द्रित विशेषांक, अगस्त 2015
7. संपा.- डॉ. एम. फ़ीरोज अहमद, *वांग्मय,* खण्ड- तीन, थर्ड जेंडर की कहानियाँ, जनवरी-मार्च 2017
8. संपा- ऋतेश पाठक, *योजना*, मई 2016

वेब सामग्री

1. International Spectrum LGBT Terms and Definitions **https://internationalspectrum.umich.edu/life/definitions**
2. Begging in India: Barricading the Sustainable Financial Development **http://goindia.about.com/od/annoyancesinconveniences/p/indiabegging.htm**
3. **http://udteehsaas.blogspot.in/2011/09/blog-post_11.html**
4. **http://www.rachanakar.org/2007/07/blog-post_10.html**
5. **http://kavita-sangrah.blogspot.in/2009/03/blog-post_08.html**
6. http://gadyakosh.org/gk/बुजुर्गों_की_समस्याएँ_/_सत्य_शील_अग्रवाल
7. http://www.hindikunj.com/2016/06/old-age-book-review.html
8. https://www.youtube.com/watch?v=d59zroBi5Ek
9. http://hindi.webdunia.com/my-blog/international-day-of-older-116100100040_1.html
10. http://shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/11787/6/06_chapter%201.pdf
11. http://www.streekaal.com/2015/06/blog-post_27.html#more
12. http://www.streekaal.com/2015/07/blog-post_17.html
13. https://www.youtube.com/watch?v=4cZsomQxHGo
14. https://www.youtube.com/watch?v=f_jccOu7Mu8
15. https://issuu.com/amankumartyagi/docs/manmeet_may_2014

16. https://hindi.news18.com/blogs/sudhir/article-377-gay-rights-supreme-court-430759.html
17. http://www.streekaal.com/2018/05/Dhananjay-The-Transgender-activist-and-student.html
18. https://www.youtube.com/watch?v=eH7Fzli-Xh0
19. भारत में 79 हजार पढ़े- लिखे भिखारी https://www.dw.com/hi/%E0%A4%AD%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A4%A4-%E0%A4%AE%E0%A5%87%E0%A4%82-79-%E0%A4%B9%E0%A4%9C%E0%A4%BE%E0%A4%B0-%E0%A4%AA%E0%A5%9D%E0%A5%87-%E0%A4%B2%E0%A4%BF%E0%A4%96%E0%A5%87-%E0%A4%AD%E0%A4%BF%E0%A4%96%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A5%80/a-18967620
20. समाज के लिए खतरा : भारत में भिखारी https://hindi.mapsofindia.com/my-india/begging-in-india-a-menace-to-the-society/
21. क्या आप जानते हैं दिल्ली सहित भारत के 22 राज्यों में भीख माँगना है दंडनीय अपराध ? https://hindi.topyaps.com/begging-illegal-in-india/
22. भीख देना सही या गलत https://hindi.speakingtree.in/allslides/bhikh-dena-sahi-ya-galat/%E0%A4%B2%E0%A4%BE%E0%A4%9A%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A5%8B%E0%A4%82-%E0%A4%95%E0%A5%8B-%E0%A4%A6%E0%A5%87-%E0%A4%AD%E0%A5%80%E0%A4%96
23. भिक्षावृत्ति : अपराध या विवशता https://www.drishtiias.com/hindi/burning-issues-of-the-month/beggarism-crime-or-compulsion
24. हिन्दू समाज में भिखारियों के साथ भी जाति के आधार पर व्यवहार https://www.nationaldastak.com/others/behavior-in-the-hindu-society-also-done-accordingly-caste/

शोध से संबंधित कहानियों की सूची

एलजीबीटी (हिजड़ा)

बिन्दा महाराज- शिवप्रसाद सिंह

ख़लीक अहमद बूआ- राही मासूम रजा

बीच के लोग- सलाम बिन रज़ाक

किन्नर- एस.आर.हरनोट

ई मुर्दन का गाँव- कुसुम अंसल

संझा- किरण सिंह

हिजड़ा- कादम्बरी मेहरा

इज्ज़त के रहबर- डॉ. पद्मा शर्मा

कौन तार से बीनी चदरिया- अंजना वर्मा

त्रासदी- महेंद्र भीष्म

रतियावन की चेली- ललित शर्मा

नेग- डॉ. लवलेश दत्त

पन्ना बा- गरिमा संजय दुबे

हिजड़ा- श्रीकृष्ण सैनी

संकल्प- विजेंद्र प्रताप सिंह

खुश रहो क्लीनिक- चाँद 'दीपिका'

किन्नर- पूनम पाठक

गलती जो माफ़ नहीं- पारस दासोत

कुकुज नैस्ट- कमल कुमार

कबीरन- डॉ. सूरज बड़त्या

गली आगे मुड़ती है- सोमा भारती

मैं फूलमती और हिजड़े

नवाब- डॉ. लवलेश दत्त

मन मरीचिका- डॉ. विमलेश शर्मा

मैमूना, मोमिना और मैनू- डॉ. मेराज अहमद

ज्योति सूना नयन- जवाहरलाल कौल 'व्यग्र'

एक किन्नर की लव स्टोरी- कैस जौनपुरी

समर से सुरमई- बबिता भंडारी

अँधेरे की परतें- लव कुमार 'लव'

नियति- डॉ. रश्मि दीक्षित

अपना दर्द- सफिया सिद्दीकी

भूमिजा- मीना पाठक

पद्मश्री थर्डजेंडर- विनोद कुमार दवे

ट्रांसजेंडर – डॉ. ललित सिंह राजपुरोहित

दरमियाना- सुभाष अखिल

माई- महेंद्र भीष्म

ओ मेरी प्रिय सजनी चम्पावती- डॉ. सुमा.टी. रोडनवर

मेरी बेटी- राकेश शंकर भारती

तराजू- डॉ. लवलेश दत्त

दापा- डॉ. दिलीप मेहरा

निलोफर- डॉ. ललित सिंह राजुपुरोहित

वो किन्नर लड़की (भाग- 1,2,3) – सत्य प्रकाश दुबे

मोहब्बत वाले गाने- अश्विनी कुमार आलोक

एक मोड़ ये भी- डॉ. मृणालिका ओझा

रोहिणी- पार्वती कुमारी

विकास का गर्भपात- दीपंकर पाठक

लूट- तपस्या चौहान

रेड सर्किल- माधव राठौड़

जीवनार्थ साहस की आँधी- वंदना पुणताम्बेकर

बुलबुल- डॉ. लता अग्रवाल

अधिकार- डॉ. नीलम रावत

इंसानी जमीन- नीतू सिंह भदौरिया

होने न होने के बीच- नमिता

जन्मदिन- पूजा भगत

दुनिया जीत ली- डॉ. संगीता गाँधी

बद्दुआ- डॉ. लवलेश दत्त

एलजीबीटी (समलैंगिक)

प्रतीक्षा- राजेन्द्र यादव

ये जो देश है मेरा... – सूरज प्रकाश

अँधेरे का गणित- पंकज सुबीर

दीवार के पार- अनिलप्रभा कुमार

आग में गर्मी कम क्यों है ? – सुधा ओम ढींगरा

सखि साजन- आकांक्षा पारे काशिव

ओवर कोट – तारिक असलम 'तस्नीम'

रेत का रिश्ता- निर्मल जसवाल

इक लड़की अनजानी सी- नरेंद्र सैनी

स्पर्श- लवलेश दत्त

वो जो भी है, मुझे पसंद है- स्वाति तिवारी

टकला नवाब- शाहिद अख्तर

विकलांग

पोलियो- कुलदीप बग्गा

परकटा परिंदा- गिरिराजशरण अग्रवाल

रोशनी से दूर- छत्रपाल

पड़ाव- नफीस आफरीदी

समापन- नरेन्द्र नागदेव

अमीबा- निरुपमा श्रीवास्तव

आधा हाथ: पूरा जीवन- निश्तर खानकाही

अन्ना- पानू खोलिया

कण्ठहार- भीष्म साहनी

लुंज- राजेन्द्र कौर

हारा हुआ- शैलेश मटियानी

जिजीविषा मरी हुई- सच्चिदानंद धूमकेतु

छोटू- सत्यराज

अनिमंत्रित- सिम्मी हर्षिता

अँधेरे का सैलाब- सुनील कौशिक

फरिश्ते- सूर्यबाला

खितीन बाबू- अज्ञेय

नेत्रहीन- विष्णु प्रभाकर

करू बहियां बल आपनो- त्रिभुवन पाठक

आगे जिंदगी तो होती ही है- डॉ.इंद्राबहादुर सिंह

छइबै उंचवा पै मड़इया- डॉ.इंद्रबहादुर सिंह

विमल- डॉ.इंद्रबहादुर सिंह

नयन न तिरपित भेल- डॉ.इंद्रबहादुर सिंह

दर्द की दस्तक- डॉ.इंद्रबहादुर सिंह

हेलन केलर 'आत्मकथा'- डॉ.इंद्रबहादुर सिंह

आँखें- प्रदोष मिश्र

बिखरे ख़्वाब-सुरभि बेहरा

मिलन- माधुरी मिश्र

मछुआरे की लड़की- डॉ. विनोद कुमार वर्मा

वह नियोगी- डॉ. इंद्रबहादुर सिंह

समय का छंद- डॉ.इंद्रबहादुर सिंह

कर्मनाशा की हार- शिव प्रसाद सिंह

मुझे मार दाल बेटा- तेजेंद्र शर्मा

मुक्ति- उपासना

एक थी शकुन' दी- सच्चिदानंद धूमकेतु

खुदा की देन- चन्द्रकिरण सौनरेक्सा

परफेक्शनिस्ट बाबू- अरुण यादव

सहचर- मैत्रेयी पुष्पा

जो बचा, वह शब्द नहीं था- जया जादवानी

कंगाली- जवाहर सिंह

सीमा- रामदरश मिश्र

गुलकी बन्नो- धर्मवीर भारती

आधा टिकट- जगदीश चन्द्र

जिजीविषा- मृदुला गर्ग

मुन्नी- ममता कालिया

सीढ़ियों का ठेका- मेहरुन्निसा परवेज

मैं तलाक ले रही हूँ- रमेश खत्री

आप अपने आप में अनुपम और अद्भुत हैं- सुषमा मुनीन्द्र

हंसा जाई अकेला- मार्कंडेय

जहरकाँटा- माधव नागदा

विदाई- स्वाति तिवारी

उसकी दुनिया- कैलाश बनवासी

कठपुतलियाँ- मनीषा कुलश्रेष्ठ

कंपनी राजेश्वर सिंह का दुःख- उमा शंकर चौधरी

रसप्रिया- फणीश्वरनाथ रेणु

नन्हों- शिवप्रसाद सिंह

भोमहा- जयनन्दन

पोस्टमैन – आलमशाह खान

आखिर कितने दिन- रमेश आनंद

हाँ और न के बीच – यश खन्ना

उस्मानिया- यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र

दूसरी दुनिया- अलका सरावगी

बिना सुर ताल- उर्मिला शिरीष

इब्बू मलंग- शैलेश मटियानी

सीमांत- क्षितिज शर्मा

वृद्ध

बूढ़ी काकी – प्रेमचंद

माँ- प्रेमचंद

बेड़ी- जयशंकर प्रसाद

नीरा- जयशंकर प्रसाद

दादी अम्मा- कृष्णा सोबती

अपना रास्ता लो बाबा- काशीनाथ सिंह

बुढ़वा मंगल- रवीन्द्र कालिया

काँसे का गिलास- सुधा अरोड़ा

दादी का खजाना- सूर्यबाला

भूलभुलैया- सारा राय

ये रहगुजर न होती- अलका सरावगी

मेज कुर्सी तख्ता टाट- शशि भूषण द्विवेदी

उलटबाँसी- कविता

बांसफल- मृदुला गर्ग

बोनसाई- योगिता यादव

फोटो का सच- तरुण भटनागर

मृत्यु उत्सव- राजीव कुमार

दादी और रिमोट- सूर्यबाला

क्योंकि वे बूढ़े हैं- डॉ.गिरिराजशरण अग्रवाल

आँखमिचौनी- अमृत राय

अम्मा- डॉ.श्रीमती कमाल कुमार

वापसी- उषा प्रियंवदा

मिट्टी भर धूल- मुरारी शर्मा

बुढऊ का आधुनिकीकरण- गिरीश अस्थाना

अलग्योझा- प्रेमचंद

छत पर दस्तक- मृदुला गर्ग

मंत्र- प्रेमचंद

बूढा ज्वालामुखी- गिरिराजशरण अग्रवाल

घेरे-गोविंद मिश्र

मजबूरी- मन्नू भंडारी

कैलाशी नानी- सुभद्राकुमारी चौहान

पिता-ज्ञानरंजन

बाबूजी- डॉ. शिवन कृष्ण रैणा

ममता- जयशंकर प्रसाद

देवा की माँ- कमलेश्वर

गेंद- चित्रा मुद्गल

परमात्मा का कुत्ता- मोहन राकेश

सीमेंट में उगी घास-दयानंद अनंत

शटल-नरेंद्र कोहली

अकेली- मन्नू भंडारी

आजादी- ममता कालिया

उर्फ सैम- मृदुला गर्ग

छप्पन तौले की करधन- उदय प्रकाश

यक्ष प्रश्न- दयानन्द पांडेय

कौन जाने- यशपाल

खून का रिश्ता- भीष्म साहनी

नानी- संजीव दत्त शर्मा

सयानी बुआ- मन्नू भंडारी

गुदड़ी का लाल- जयशंकर प्रसाद

मास्टर साहब- चंद्रगुप्त विद्यालंकर

तिनकों में घोंसला-प्रतिमा वर्मा

समय- सिद्धेश

बिल्लियाँ बतियाती है- एस.आर. हरनोट

सीढी- सूर्यबाला

ग्राम माता- बाबूसिंह चौहान

दादी का बटुआ- मंजुल भगत

ग्राम माता- बाबू सिंह चौहान

उसका आकाश- राजी सेठ

स्वामिनी- प्रेमचंद

दुःख का अधिकार- यशपाल

माचिस की डिबिया- चन्द्रमौलेश्वर प्रसाद

मौत के लिए एक अपील- साजिद रशीद

साँझ का परिंदा- आदर्श मदान

दादियाँ- जोगिन्दर पाल

उसका जाना- दिनेश चन्द्र झा

दादी- शिवानी

साधें- गोविन्द मिश्र

अनधिकृत स्वप्न- सत्यराज

पराजित- सुनील कौशिक

विध्वंश- प्रेमचंद

उतनी दूर- राज़ी सेठ

पागल है- यशपाल

खिड़की- राजेंद्र कृष्ण

पलंग- प्रियंवद

बेटों वाली विधवा- प्रेमचंद

पादुका पूजन- प्रतिभा राय

घुन- सुरेश उनियाल

माँ- ए.असफल

ताई- विश्वंभरनाथ कौशिक

चाचा मंगल सैन- भीष्म साहनी

बस कब चलेगी- संजय विद्रोही

सौगात- सूर्यबाला

सुभागी- प्रेमचंद

अन्यथा- अवधेश प्रीत

मोहताज- रामकुमार भ्रमर

शापमुक्ति- रमेश उपाध्याय

वसीयत- भगवतीचरण वर्मा

अपूर्णा- अलका सिन्हा

हरिहर काका- मिथिलेश्वर

फाग पिया संग- चिन्द्रका ठाकुर

अपना घर- रामधारी सिंह दिवाकर

भविष्य-रामदरश मिश्र

समय- यशपाल

अम्मा- ओमप्रकाश वाल्मीकि

तिनकों का घोंसला- प्रतिमा वर्मा

दादी का कम्बल- जगदीश नारायण चौबे

मुक्ति- भगवतीशरण मिश्र

जींस- मनोज कुमार पाण्डेय

हाँच- सुनील सिंह

वैतरणी के पार- स्वाति तिवारी

कलम हुए हाथ- बलराम

सरजू बुड्ढा- कुलबीर

टुडे कॉलम- राधेश्याम तिवारी

बाँधों न नाव इस ठाँव बंधु - उर्मिला शिरीष

बंद घड़ी- शरद सिंह

रंगमहल में नाची राधा- नीलाक्षी सिंह

बिरनी, कीड़ा और पहाड़ी हवा- रीता सिन्हा

चलो, एक बूढ़े की कथा सुनते हैं- निरुपमा राय

कितने दीनू कितने दीनानाथ- राजेश झरपूरे

बूढ़ा- मदन मोहन

फाइल दाखिल दफ्तर- गिरिराज किशोर

पार्क-कलानाथ मिश्र

कुत्ता- राजनारायण राय

धूप में झरता अकेला मन- सविता मिश्र

पीले पत्ते- रूपलाल बेदिया

जहाँ लक्ष्मी कैद है- राजेन्द्र यादव

प्रेतकामना- मनीषा कुलश्रेष्ठ

चीफ की दावत- भीष्म साहनी

गुलरा के बाबा- मार्कंडेय

दादी माँ- शिवप्रसाद सिंह

एक खुली हुई आँख- राजेन्द्र यादव

अपरिचित-मोहन राकेश

वासना की छाया- मोहन राकेश

यादें- भीष्म साहनी

पानी की तस्वीर- कमलेश्वर

घंटी- कैलाश वानखेड़े

कंबल- मोहन राकेश

तबले का धुंधलका- रामदरश मिश्र

शेष यात्रा- रामदरश मिश्र

उस बूढ़े आदमी के कमरे में- आनंद हर्षुल

चौथा प्राणी- मृदुला गर्ग

चश्में- विमल चन्द्र पाण्डेय

उधार की हवा- मृदुला गर्ग

पंडित जी- ज्ञानप्रकाश विवेक

यात्रा चक्र- चंद्रकांता

दहलीज के पार- मंजुल भगत

सूर्यास्त से पहले- सिम्मी हर्षिता

वितृष्णा- मृदुला गर्ग

भोलाराम का जीव- हरिशंकर परसाई

अस्त होता सूर्य- सुधा जैन

डेथकम रिटायरमेंट- राजेन्द्र शर्मा 'विकल'

लड़ोकन- स्वयं प्रकाश

रंगमहल में नाची राधा- नीलाक्षी

भिखारी

सीढ़ियों का ठेका- मेहरुन्निसा परवेज

घर- श्रीकांत वर्मा

कंगाली- जवाहर सिंह

जिन्दगी और जोंक- अमरकांत

दो दुखों का एक सुख- शैलेश मटियानी

दो चरित्र- अमरकांत

नया सवेरा- संजय जनागल

दुनिया जीत ली- डॉ. संगीता गाँधी

पुल के नीचे- जगदम्बा प्रसाद दीक्षित

पुल- सतीश जमाली

चेहरे- चित्रा मुद्गल

जहरकांटा- माधव नागदा

उसका खुदा- अरुण भारती

आदि पाप- महेश कटारे

माँस के चेहरे- हृदयेश

नकबेसर कागा ले भागा- चन्द्रकिशोर जायसवाल

जीत में हार- विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक'

महालीला का मध्यम अंक- महेश कटारे

भूख- चित्रा मुद्गल

जीत में हार- विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक'

खेल- हृदयेश

खुदा की देन- चन्द्रकिरण सोनरैक्सा

मिट्टी- रमेश उपाध्याय

परिशिष्ट - I

समलैंगिक अतुल कुमार सिंह से जैनेन्द्र कुमार की बातचीत

तारीख- 07/07/ 2018 **स्थान- जेएनयू**

जैनेन्द्र- 'गे' क्या होता है ? किसको समलैंगिक(गे) माना जाय ?

अतुल- गे में वो सभी लोग शामिल होते हैं जिनको सेम सेक्स के टुवर्ड्स अट्रैकसन होता है | चाहे वह लड़का हो या लड़की | और ये कहीं भी हो सकते हैं | किसी भी जाति-प्रजाति में हो सकते हैं | प्रजाति इसलिए बोला क्योंकि अंदर जो स्पिसिज होता है उसमें भी होता है होमो सैपियंस के अलावा |

जैनेन्द्र – कुछ लड़के ऐसे भी होते हैं जिनका सम्बन्ध लड़कों के साथ भी होता है और लड़कियों के साथ भी...

अतुल- वो बाईसेक्सुअल होते हैं | वो भी गे कैटेगरी में आते हैं | उनमें सब-डिवीजन है | लाइक.. जब आप गे बोलते हैं तो यह ब्रोड एक्स्प्रेटम वर्ड है | गे कोई भी हो सकता है | ऐसा भी होता है कि जो लोग बाई क्युरियस होते हैं वो भी गे की तरह जाने जाते हैं कुछ टाइम के लिए अगर वे ऐसा परफॉर्म करते हैं | गे बहुत सारी चीजों का कलेक्शन टाइप का है | इसमें बहुत तरह के लोग शामिल हैं |

जैनेन्द्र- आपको क्यों लगता है कि इस तरह का सम्बन्ध जायज है ? जबकि यह कहा जाता है कि यह अननेचुरल है, अप्राकृतिक है ?

अतुल- मेरे को ऐसा लगता है कि जो ह्यूमन बॉडी होती है...लाइक..हम लोगों का जो एग्झिस्टैंस होता है वो बिकॉज़ ऑफ़ इमोशंस है | प्यार, स्नेह, गुस्सा, अवसाद अगर किसी के मन को परिभाषित करो तो इसके बिना परिभाषा कम्पलीट नहीं हो सकती | तो इसके लिए लाइक...जहाँ प्यार की बात आती है तो इमोशंस होते हैं वो पावरफुल होते हैं ..लाइक...किसी भी इमोशंस को फील करने के लिए...परफॉर्म करने के लिए मेय बी दिक्कत होता है..बट फील करने के लिए कोई बाउंडेसन या बाउंड्री नहीं क्रियेट की जा सकती है | क्योंकि..लाइक...इमोशंस होना ही एक ह्यूमैनिटी है |

जैनेन्द्र- वो किसी के साथ भी हो सकता है..

अतुल- बिल्कुल...इमोशंस से परे कोई नहीं है ना ? हमारा जो इमोशंस होता है वही हमारा गाइडेंस सिस्टम होता है जिन्दगी का|

जैनेन्द्र - ..नहीं.. हम इसको इस तरह से जानना चाहते हैं कि आप जब बड़े हो रहे थे..जब आप बचपन में थे तब आपका आकर्षण किसके प्रति होता था ?

अतुल- जब हम बड़े हो रहे थे तब मुझे लोग बताते हैं कि मुझे गुड़ियों से खेलना अच्छा लगता था | मतलब इस तरह बताते हैं..

जैनेन्द्र- यह आपको अच्छा लगता था या परिवार में ऐसा था कि बेटी नहीं थी तो घर वाले आपको लड़कियों के कपड़े पहना देते थे ? या आपको नेचुरली पसंद था |

अतुल- मुझे नेचुरली पसंद था...और मेरा लाइक डांस और संगीत के प्रति रुझान था | उसके लिए किसी का दोष नहीं था..या किसी ने कुछ किया हो | हाँ, लेकिन हमारे यहाँ माहौल ऐसा था कि वहाँ गाना-बजाना, देवी गीत, भजन-कीर्तन का माहौल था | हम लोग क्षत्रिय से बिलोंग करते हैं तो वहाँ ये ज्यादा ही कुछ होता था..हमारे घर रामलीला करवाते थे..क्योंकि प्रधान थे | वो लोग कभी रामलीला, कभी कीर्तन कभी होली आई तो फाग होगा...जन्माष्टमी आयी तो व्रत होगा और फिर रात में उस तरह सारा सजावट करके...झाँकी-वांकी बना के..फिर सब लोग मिल के गायेंगे..और नवरात्र होता था सारे समय मंदिरों-वंदिरों में गाते-वाते थे | बुआ जी लोग..या सब लोग | मतलब उस तरह का माहौल था वैसा कि लाइक...हमको अगर पसंद है..लाइक हम अगर इमोशनली रिलेशन फील कर रहे हैं तो हमें अच्छा लगता था वो चीज |

जैनेन्द्र- नहीं..जब आप बड़े हुए...तो..आप..आपका आकर्षण...

अतुल- देखिये जब कोई बंदा गे भी होता है, उसको कोई दूसरा बंदा नहीं बताएगा, जैसे कि बच्चा पैदा हुआ, बड़ा हो रहा होता है, तो सभी बड़े लोग उसको बताते हैं कि यह कटोरी है, यह दाल है, तभी पता चलता जाता है। ऐसे ही मेरे भी साथ था, मुझे ये पता था कि मैं डिफरेंट हूँ लेकिन ये नहीं पता था कि इसका वर्ड क्या होता है, तो फिर मैंने स्टडी करी, कई किताबों में पढ़ा, सबसे पहले महाभारत की कथा पढ़ी जिसमें शिखंडी जैसा कोई पात्र था, फिर पता चला कि अमेरिका में ऐसा प्रोसेस होता है कि सेक्स री-असाइनमेंट सर्जरी होती है, सेक्स चेंजेज होते हैं और लड़के-लड़के साथ में रहते हैं। तो ये बहुत बड़ा प्रोसेस था कि हमको इक्जैक्ट वर्ड गे जो उसका नाम होता है बहुत दिनों बाद पता चला, जिस गांव से मैं आता हूँ वहाँ कोई नहीं जानता था उस समय ।

जैनेन्द्र - ये तो बाद की बात हो गई, आपकी फीलिंग्स उस वक्त क्या थीं, आपको क्या लगता था कि आप अलग है ?

अतुल- अलग तो कब लगा मैं बताता हूँ , मान लो कि हमने स्कूल में दाखिला लिया, फ़र्स्ट क्लास में, तो फ़र्स्ट क्लास में कितनी उम्र होती है? बहुत कम उम्र होती है? तो अब ऐसे में वहाँ जो मेरा प्रिंसिपल है

या टीचर है या कोई और बंदा है जो मुझे बहुत अट्रैक्टिव लग रहा है..या उसे हम इमोशनली तौर पर देखें तो बहुत स्नेह फील होता है |

जैनेन्द्र - तो यानि कि जैसे लड़कों को फीमेल टीचर बहुत अच्छी लगतीं हैं उसी तरह आपको मेल टीचर अच्छे लग रहे थे |

अतुल- हाँ, लेकिन मुझे उस समय यह डिस्क्राइब करना बहुत मुश्किल होता था, क्योंकि जैसे बचपन में शादियों में ले जाया जाता था तो देखते थे कि एक लड़के की लड़की से शादी हो रही है, सब लोग एंजॉय कर रहे हैं, तो लगता था कि मुझे प्यार तो मेल से हो रहा है, आस पास कोई ऐसा कर ही नहीं रहा तब मुझे वियर्डनेस लगती थी कि शायद डिफ्रेंस है शायद मेरे अंदर, फिर धीरे धीरे करके यह पुख़्ता होता गया, फिर गहराई इतनी ज़्यादा हो गई कि जिस दौरान रिलिजियस था तो मैं भगवान के सामने रोता था कि प्लीज़ मुझे लड़की बना दो, मुझे लड़के से शादी करनी है।

जैनेन्द्र - अच्छा तो आप ये बातें दोस्तों से शेयर कर पाते थे कि मेरे साथ ऐसा ऐसा हो रहा है?

अतुल- मैंने 10 वीं में पहली बार एक बंदे को बताया था और उसने सभी जगह बता दिया था।

जैनेन्द्र - उसके बाद क्या हुआ? और आपने उसको क्या बताया?

अतुल- मैंने उसे यह बताया कि मेरे डैडी की बुक थी, आत्मा न नर है न नारी, पता नहीं कैसे वह मेरे हाथ लग गई थी, क्योंकि उस वक्त एक रिसर्च वाला फेज़ आ गया था, क्योंकि क्युरियोसिटी थी, मुझे जानना था कि ये सब है क्या है। तो वह पढ़ कर मुझे पता चला कि इसका एक डेफिनेट वर्ड भी है जिसे ऐसे बोलते हैं, कुछ लड़कियां भी हैं, जिन्हें दाढ़ी भी आ जाती है, तो उसी दौरान मुझे ये सब पता चला कि ऐसा कुछ होता है। फिर मुझे ये पता चला कि गे वर्ड होता है। पहले मेरे दिमाग में ये था कि नहीं..मेरे साथ अगर ऐसा हो गया है तो मुझे सेक्स चेंज करा के लड़की बन जाना चाहिए। उस समय बहुत ज्यादा इंफ्लूएंशियल थे..लारा दत्ता...उस समय जीती थी और ये प्रियंका चोपड़ा उस समय मिस वर्ल्ड बनी थी..एश्वर्या राय....एश्वर्या राय के टाइम से मुझे याद है | ऐश्वर्या राय को बहुत एडमिरेशन करते थे...सुष्मिता सेन और एश्वर्या राय...| हमारे घर में इंडिया टुडे मैगेज़ीन आती थी..डैडी के पास, तो लगता था कि मैं भी काश हम भी लड़की होते तो मैं भी इस तरह मॉडलिंग करता, नाम करता।

जैनेन्द्र - तो ये ख़्याल आपको आने लगे, जबकि आपकी मेल बॉडी थी... तो आपने ये सब उस लड़के को बताया और उसने ये सबको बता दिया?

अतुल- उसको मैंने ये बताया था कि मैंने ऐसा-ऐसा बुक में पढ़ा है, तो हो सकता है कि मैं पैसा कलेक्ट करता हूँ और कुछ दिनों बाद जाके सर्जरी करवा लूंगा, और चला जाउंगा, क्योंकि मेरे घर वाले तो एक्सेप्ट करेंगे नहीं...

जैनेन्द्र - तो उससे आपका अट्रैक्शन था या वैसे ही दोस्त था?

अतुल- हाँ, शायद उस टाइम पर अट्रैक्शन था,,,,

जैनेन्द्र - कोई रिलेशन नहीं था?

अतुल- नहीं, कोई रिलेशन नहीं था, मेरी तरफ से था अट्रैक्शन बस

जैनेन्द्र - तो इस तरह का रिलेशन बनता कब है? जब आपका और सामने वाले का दोनो का अट्रैक्शन बने तब,,,,,

अतुल- ऐसा नहीं है, यह बहुत ग़लत बात है, मेरे साथ जिस समय चाइल्ड एब्यूज़ हुआ, उस समय मुझे नहीं लगता कि मेरा अट्रैक्शन था,,,,,

जैनेन्द्र - और वह बंदा भी गे नहीं था?

अतुल- वह भी गे नहीं था, उसके शादीशुदा बच्चे हैं,,,,, मतलब गे एक ऐसा वर्ड है कि किसी को भी प्वाइंट आउट या कैटेगराइज़ किया जा सकता है कि वह बंदा जो सेम सेक्स के साथ अट्रैक्ट फील कर रहा है, और एक्ट और परफार्म कर रहा है, लेकिन मेरे साथ जो उस इंसान ने किया वह तो पीडोफीलिया था।

जैनेन्द्र - यहाँ इसको अलग करना ज़रूरी है, मान लीजिए कोई मर्द है जो अपनी पत्नी के साथ शादीशुदा ज़िंदगी जी रहा है, और वह कभी किसी लड़के का अब्यूज़ करता है, तो क्या वह गे होगा? या फिर वही मर्द गे होगा, जिसका आकर्षण ही मेल के प्रति है, और वह जब भी सेक्स करेगा किसी मेल के साथ ही करेगा।

अतुल- नहीं वह गे नहीं होगा। अब्यूज़ करना और आकर्षण होना दो अलग-अलग प्वाइंट है । जैसा कि आपने कहा कि आकर्षण होता है, तो आकर्षण होता तो वह बंदा गे होता, लेकिन बिना आकर्षण के लोग कभी कभार अब्यूज़ करते हैं, तो वह क्रिमिनल कैटेगिरी में चला जाएगा। वह गे नहीं कहा जा सकता।

जैनेन्द्र - अच्छा आपको क्या लगता है, इस तरह के संबंधों को भारत में कानूनी मान्यता मिल पाएगी? क्योंकि दिल्ली हाई कोर्ट के निर्णय को तो सुप्रीम कोर्ट ने बदल दिया है, और समाजिक मान्यता मिलना तो दूर की ही बात है। तो कानूनी अधिकार जैसे शादी करने का और सामान्य रूप से सम्मानजनक ज़िंदगी जीने का कानूनी अधिकार मिल पाएगा?

अतुल- हाँ, मुझे लगता है कि मिल जाएगा, क्योंकि अभी दोबारा से इस पर सुनवाई हो रही है।

जैनेन्द्र - कौन सी एनजीओ इसके लिए काम कर रही है?

अतुल- हमसफर ट्रस्ट है, और भी कई सारी हैं, और एक लेडी भी हैं, मैं उनका नाम भूल रहा हूँ , क्योंकि वो बार-बार इस पर पीआईएल डाल रही हैं । तो कुल मिलाकर इस पर फिर से स्टार्ट होने वाला है 377 पर...मुझे ऐसा लगता है सम्मानजनक ज़िंदगी जीने के लिए ज़रूरी नहीं है कानून का होना, जहाँ तक मैंने अपनी लाइफ से फील किया है....

जैनेन्द्र - मैं ये इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि मान लीजिए कोई ऐसी ज़िंदगी कहीं पर जी रहा है और अचानक पुलिस आकर गिरफ्तार कर लेती है और तंग करती है आपको, तो आपके पास बचने के लिए कौन सा विकल्प है?

अतुल- अगर क्रिमिनलाइज़ कर दे सरकार तो फिर उसे असम्मानजनक बोला जा सकताहै लेकिन सम्मानजनक होने के लिए मुझे नहीं लगता कि डिस्क्रिमिनिलाइज़ेशन की ज़रूरत है।

जैनेन्द्र – नहीं..नहीं.. मान लीजिये जैसे हमारे समाज में स्त्री पुरुष का संबंध है, और यदि सहमति से हैं, तो उसे प्वाइंट आउट नहीं करता है, ठीक उसी तरह ये भी दो इंसानों के बीच संबंध है जैसा कि आप कह रहे हैं,,,,,,,,,

अतुल- ये जो बेसिक राइट्स हैं हमारे इंटीमेसी के एज़ ए ह्यूमन, तो उनके लिए कोई एंटी लॉ है तो उस कैटेगरी में है कि ये उनकी नज़र में ये इतना ज़्यादा रूड है, अप्राकृतिक है उनकी नजर में...

जैनेन्द्र- अगर है तो दिल्ली हाई कोर्ट ने तो पक्ष में फैसला दिया था।

अतुल- हाँ,लेकिन बाद में चेंज कर दिया था।

जैनेन्द्र – हाँ, चेंज कर दिया यानि कि कानून इस दिशा में बढ़ रहा है, सोच रहा है ?

अतुल- बिल्कुल, इवन कि एक्सेप्टेंस भी बढ़ा है, पहले सिर्फ एक सिटी या दो सिटी में ही प्राइड होती थी, लेकिन अब छोटे-छोटे शहरों में भी प्राइड होती है, पुणे, नागपुर, चेन्नई, देहरादून के छोटे-छोटे शहरों में प्राइड होती है, पहले सिर्फ दिल्ली, मुंबई इन्हीं जगहों पर ही प्राइड होती थी, तो एक्सेप्टेंस भी बढ़ा है। एकदम से जो हम एस्पेक्ट कर रहे हैं कि नार्मल हो जाए उसमें तो टाइम लगेगा।

जैनेन्द्र - मुझे लगता है कि कानूनी मान्यता यदि मिले तो चेंज जल्दी होगा।

अतुल- हाँ बिल्कुल, क्योंकि फिर कोई हैरास करने को आएगा तो वह खुद उल्टा जेल में जाएगा, अभी क्या है कि उल्टा है, कि यदि हम इंटीमेट कंडीशन में पकड़े गए तो हमें जेल जाना होगा, और इसमें उम्र कैद तक का प्रावधान है शायद |

जैनेन्द्र - अच्छा दूसरे देशों में इसको लेकर किस तरह की सोच थी, और कैसे बदलाव हुआ और अभी क्या स्थिति है?

अतुल- ये रिसर्च बेस्ड था, यहाँ पर भी हैं ऐसे लोग हैं जो इससे मानते हैं, पालिटिक्स में भी हैं जैसे शशि थरूर हैं उन्होंने कई बार एनालाइज़ कर दिया

जैनेन्द्र - ये तो इंडिया की बात है ना, इंडिया के बाहर ,,,,,

अतुल- इंडिया के बाहर भी रिसर्च बेस्ड था, जैसे कि ब्रिटेन में 1982 में एक वैज्ञानिक था उसे फांसी चढ़ा दिया गया था जब पता चला कि वह गे है |

जैनेन्द्र - 1982 या 1882

अतुल- ठीक से याद नहीं, देखना पड़ेगा | हाँ, उसने कंप्यूटर का कुछ किया था

जैनेन्द्र - अमेरिका में तो 1950 के आस पास आंदोलन हुए और फिर मान्यता मिली ।

अतुल- हाँ पर ब्रिटेन में नहीं हुआ था, और ब्रिटेन के लॉ तो अभी भी यहाँ भी तो चल रहे हैं उसी पर तो चर्चा हो रही है। वह तो इक्ज़ैक्ट मुझे देखना पड़ेगा मुझे याद नहीं है, लेकिन उसको फाँसी चढ़ा दिया गया था, लेकिन बाद में जब रिसर्च करके साबित हुआ कि यह साइकोलॉजिकल डिसआर्डर नहीं है, वहाँ की महारानी ने बाकायदा उसके लिए माफी मांगी थी मीडिया के सामने उसके लिए।

जैनेन्द्र - आप यह कह रहे हैं कि बाहर भी दिक्कत थी अब धीरे धीरे नार्मलाइज हो रहा है |

अतुल- मेरे ख़्याल से वहाँ जो साइंटीफिक एविडेंस हैं रिसर्च हैं उसको ज़्यादा तवज्जो दी जाती है, इसलिए चीज़ें वहाँ जल्दी बदली हैं, लेकिन यहाँ पर रिलीजियस खेड़ा ज़्यादा बड़ा है।

जैनेन्द्र - अच्छा इस तरह के संबंध में संतान उत्पत्ति का क्या विकल्प है?

अतुल- इसमें तो सेरोगेसी ही है, और अगर कोई लेस्बियन कपल है तो उसमें हो सकता है उनमें से कोई लड़की चाहे तो प्रेगनेंट हो सकती है, लेकिन जहाँ तक गे कपल की बात है तो उसमें तो सेरोगेसी से ही हो सकता है।

जैनेन्द्र - लेकिन आप ये देखिए, जब कोई लेस्बियन कपल है, और उसे गर्भधारण का क्षमता प्रकृति ने दी है, और वह इस तरह के संबंध में लड़की के साथ संबंध में है, तो वह अप्राकृतिक नहीं है?

अतुल- मुझे ऐसा लगता है कि इमोशन नैचुरल होता है, फिर तो जो बॉडी है वह तो है ही नैचुरल। अगर इमोशन नैचुरल है, तो ये सब तो पार्ट ऑफ़ इवोल्यूशन है, इवोल्यूशन का लॉ है कि कुछ 10 प्रतिशत लोग भिन्न होते हैं

जैनेन्द्र - अब जैसे बाबा रामदेव कहते हैं,,,,,,

अतुल- हाँ तो उनका तो अलग ही केस है,,,,,,,

जैनेन्द्र - मैं जो आपसे पूछ रहा हूँ , इसलिए पूछ रहा हूँ कि बाबा रामदेव भारत की 80 प्रतिशत जनता की मानसिकता का प्रतिनिधित्व करते हैं, वे कहते हैं कि ये बीमारी है ठीक हो जाएगी।

अतुल- हाँ तो कितनों को ठीक किया है उन्होंनें कोई है डेटा उनके पास? ऐसा तो है नहीं कि किसी ने अपने बेटे को डेलिब्रेटली उनके पास न भेजा हो कि कम से कम हज़ार लोग तो होंगे ही जो उनके पास गए होंगे कि हमारे बेटे को सही कर दो। तो उनके पास कोई डेटा होगा? आज तक तो कोई डेटा पब्लिश नहीं किया उन्होंने । और ऐसा नहीं है, बहुत सारे गे बंदे हैं जो रोज़ योगा करते हैं, रोज़ मेडिटेशन करते हैं फिर भी वे आज भी गे हैं ।

जैनेन्द्र - तो आपका कहना है कि यह पूरी तरह से इमोशनल है, नैचुरल है।

अतुल- हाँ।

जैनेन्द्र - अच्छा आप गे समुदाय की बेहतरी के लिए क्या सोचते हैं आगे? आगे क्या योजना है आपकी?

अतुल- मेरी, पर्सनल मैं बताउं तो मेरे को ऐसा लगता है कि ज़्यादा से ज़्यादा लोगों से बातचीत की जाए, एजुकेट किया जाए, भले ही वह किसी भी तरह से किया जाए, मतलब दिखावापन नहीं आना चाहिए। जैसे कि स्वतंत्रता होती है प्यार करने की हैट्रोसेक्सुअल समुदाय को, तो वैसे ही यह नार्मल बात होनी चाहिए, कि प्यार करना इज़ अ थिंग, और उसके बाद एजुकेट अगर करेंगे तो वह जल्दी एक्सेप्ट करेगा, और जल्दी से उसको एक बिलांगिंगनेस फील होगी।

जैनेन्द्र - आप जिस तरह से एजुकेशन की बात कर रहे हैं, आपको लगता है कि फ्युचर में इस तरह से सिलेबस में इस तरह की चीज़ें शामिल होंगी?

अतुल- हाँ, मुझे ये लगता है कि शामिल होंगी, क्योंकि इसके पहले भी हम लोगों ने बायोलॉजी में पढ़ा है कि कोई ग्रोसाफिला नाम की एक मक्खी होती है जिसका आधा पार्ट नर का और आधा पार्ट मादा का होता है। मतलब अदर स्पीशीज़ में ऐसा होता है कि जैसे उनमें पढ़ाया जाता है कि उसका आधा पार्ट नर का होता है आधा मादा का, तो उसे कोई स्पेशल नाम नहीं दिया जाता। तो ऐसे धीरे-धीरे करके होगा।

तो अगर सेक्स शामिल होगा तभी तो ये सब शामिल होगा तभी तो सेक्युएलिटी की बात होगी। अगर हमारे यहाँ सेक्स पढ़ाया जा रहा होता, कम से कम पांचवीं के बाद से, तो जब टीन में हिट करता है बच्चा, तो क्युरियोसिटी अपने आप ही उसके अंदर आ जाती है सेक्स को लेकर और भी हरेक चीज़ को लेकर। तो, सेक्स की बात होगी तो सेकयुएलिटी की बात होगी।

जैनेन्द्र - अच्छा आपके एक्सपीरियंस क्या हैं? जैसे कि आप फैशन वल्ड से जुड़े हैं, कपड़े डिज़ाइन करते हैं या फोटोग्राफी करते हैं, क्या कारण था कि आपको ये करना है? आपके मन में ये ख़्याल कभी नहीं आया कि आप बड़े ऑफिसर बनें, डॉक्टर बनें, इंजीनियर बनें? कहीं ऐसा तो नहीं है कि आप जब ये सब बनने की सोचते हैं या इस तरह की पढ़ाई करते हैं तो उस तरफ इसको लेकर पॉजिटिव माहौल नहीं मिलता, और जिस तरह का काम अभी आप कर रहे हैं, इसमें आपको किसी तरह की दख़लअंदाज़ी नहीं है, यहाँ जो लोग हैं वे बहुत ओपन लोग हैं, खुले विचार के लोग हैं, आपको आपके नैचुरल तरीके से एक्सेप्ट करते हैं, वहाँ उस तरह से एक्सेप्ट नहीं किया जाता इसलिए आप वहाँ से डिटेच हो गए। क्योंकि अधिकतर लोग जो फिल्म इंडस्ट्री में है, फैशन इंडस्ट्री में हैं, क्योंकि बाकी जगह या तो वे अपनी पहचान ज़ाहिर नहीं करते या फिर वे अपना क्षेत्र ही बदल लेते हैं, क्योंकि दूसरे क्षेत्रों में कंफर्टेबल होने के ऑप्शन्स कम हैं।

अतुल- सी.. एक होता है इंडायरेक्ट प्रॉडक्ट और एक होता है डायरेक्ट प्रॉडक्ट मेरे ख्याल से ये जो पहले से बचपन से मेरे साथ था वहाँ पर जहाँ पर हम रहते थे..

जैनेन्द्र – इस पर अपने एक्सपीरियंस भी शेयर कीजिए,,,,,,,

अतुल- एक्सपीरियंस मैं ये शेयर करूंगा कि हम जहाँ पर रहते थे वहाँ पर हम देखते थे कि यहाँ पर बींग गे यहाँ पर मुझे कोई नहीं समझ सकता है, या हम किसी को बता नहीं सकते हैं, क्योंकि कभी कभार ऐसा भी होता है कि हमने मम्मी से बोला कि वह लड़का मुझे बड़ा अच्छा लगता है, या प्यार आता है, तो वे लोग मेरा मज़ाक उड़ाते थे, तो मुझे लग गया कि यहाँ पर तो दाल नहीं ही गलने वाली, तो यहाँ से तो निकलना ही पड़ेगा कैसे भी करके, तो मैंने जी जान से पढ़ाई की। क्योंकि मेरे गांव में जहाँ से हम बिलांग करते हैं वहाँ से कानपुर नहीं जाते हैं पढ़ाई करने अगर अच्छे मार्क्स नहीं आए तो, वहाँ से अगर कानपुर पहुँच गए तो ग्रेटर नोएडा कोई नहीं आ पाता जल्दी । तो मुझे लगता था कि मुझे जो भी करना है वहाँ से निकलने के लिए करना है, फिर मैं अगर निकल गया तो फिर मैं देखूंगा कि मैं क्या कर सकता हूँ । तो जब मैंने बीटेक कंप्लीट किया तो उसके बाद मुझे लगा कि चलो जॉब ट्राई करते हैं, उसके बाद लोग आम तौर पर जॉब करते हैं। जॉब करने के बाद मज़ा नहीं आया क्योंकि पैसिमिज़म होता है, क्योंकि वहाँ पर डिस्क्रिमिनेट करते हैं लोग। जब आप जॉब पर जाओ तो आप किसी को ये नहीं बोल सकते कि एक मैकेनिकल इंडस्ट्री में गें हूँ, क्योंकि अगर आपने ऐसा बोल दिया तो मैकेनिकल इंडस्ट्री ऐसी है कि रूरल

एरिया से बंदा आता है और मैकेनिकल करके वहाँ पर जॉब करता है और वहाँ एक तरह से मिलना होता है, लाइक अभी जिस कैटेगिरी में अभी था, वहाँ पर बहुत सारी डाइवर्सिटी होती है कि कहाँ-कहाँ से लोग आए हुए हैं तो फिर उनके लिए ये सेंसेटिव मुद्दा बन जाता है कि अगर मैंने बता दिया किसी को तो वो बात करना स्टार्ट कर देंगे, दस तरह की बातें बनाना स्टार्ट कर देंगे । लेकिन फैशन इंडस्ट्री में बड़ा आर्टिस्टिक काम है। यहाँ आर्टिस्ट की आर्ट की ज़्यादा रिस्पेक्ट है,,,,,

जैनेन्द्र - आपकी इस चीज़ को लेकर उतना ध्यान नहीं देते

अतुल- ध्यान नहीं देते और अगर ध्यान देते भी हैं तो वे माने लेते हैं कि हाँ ये आर्टिस्ट है, मतलब बहुत कूल लेवल पर है, उनको लगता है कि गे होना अपने आप में एक आर्टिस्टिक चीज़ है।

जैनेन्द्र - अच्छा इसको भी एक आर्ट के तौर पर लेते हैं?

अतुल- लाइक इट्स अ पोज़ेशन ऑफ़ आर्ट, न कि आर्ट की तरह देखेंगे। पोज़ेशन होगा कि जैसे कोई शास्त्रीय डांस कर रहा है, तो वो ऐसा ही होगा, या उसका फैमिनिन बिहेव होगा या बॉडी लैंग्वेज उसका ऐसा होगा।

जैनेन्द्र - अच्छा तो आप घर से निकले तो फिर घर वापस कभी नहीं गए?

अतुल- नहीं ऐसा नहीं है, अभी भी मेरी बात होती है और मैं जा सकता हूँ ।

जैनेन्द्र - जा सकते हैं या जाते हैं?

अतुल- दो साल से नहीं जाते

जैनेन्द्र - जब जाते हैं तो घर वाले सब पूछते हैं,?

अतुल- नहीं उनको ये लगता है कि अभी भी मैं शादी कर लूंगा, इसलिए मेरा घर जाने का मन नहीं करता।

जैनेन्द्र - तो वो अभी भी इस उम्मीद में हैं कि शादी कर लेगा?

अतुल- हाँ

जैनेन्द्र - अच्छा क्या ये संभव है कि अगर कोई गे शादी करे तो उसकी संतान उत्पत्ति हो सकती है।

अतुल- बिल्कुल, बहुत सारे ऐसे लोग हैं जिनकों सोसाइटल प्रेशर के चलते शादी करनी पड़ती है, और उनके बच्चे भी होते हैं, क्योंकि बच्चे पैदा करने के लिए एक स्पर्म और ओवम का निसेचन होना चाहिए

बस। उसके लिए ज़रूरी नहीं कि तुम्हारा प्यार हो, तो वो मुझे लगता है कि जो एक बायोकैमिकल प्रोसेस होता है वह फीलिंग से अटैच नहीं है।

जैनेन्द्र - और फिर लोगों को लगता है कि वह ठीक हो गया है। और लोगों को लगता है कि उसके अंदर उस तरह की क्षमता नहीं है इसलिए ये उस तरह का बिहेव कर रहा है|

अतुल- हाँ, मैं आपको बताता हूँ कि एक बहुत अच्छे हॉस्पिटल में काम करता था, मतलब बीच का जो फेज़ था उसमें मैंने एक हॉस्पिटल ज्वाइन किया था, एज़ एन एकाउंटेंट। और वहाँ पर जब मैंने बताया अपने जो अगल-बगल के लोग थे, क्योंकि बात आ जाती है कभी न कभी सामने| पहले तो मैंने नहीं डिस्क्लोज़ किया, लेकिन बाद में जब कलिग को बताया तो बोले कि पैंट उतार के दिखा। वो लोग उस कॉर्पोरेट जगह पर बैठे हैं और उनको ये नहीं पता है कि क्या डिफरेंसेज़ हो सकते हैं?

जैनेन्द्र - ग़ुस्से में?

अतुल- ग़ुस्से में नहीं, क्युरियोसिटी की वजह से। उनको लगता है कि कुछ डिफ्रेंट होगा इन लोगों का, या फिर कोई कमी होगी। लेकिन ऐसा नहीं है, कोई कमी नहीं होती है, हमारा अट्रैक्शन उस तरफ नहीं है, लड़की की तरफ नहीं है।

जैनेन्द्र - मतलब आप शारीरिक रूप से भले ही पुरुष हो लेकिन मानसिक रूप से अट्रैक्शन इस तरफ नहीं?

अतुल- हाँ यही कि इमोशनल अटैचमेंच दूसरी तरफ है। उसमें डाइवर्जन है न कि शारीरिक क्षमता या विक्षमता जैसी कोई बात है,

जैनेन्द्र - अच्छा कोई लड़की आपके क्लोज़ है उसके लिए आपको क्या फील होता है?

अतुल- ..मतलब मुझे समझ ही नहीं आता कुछ....

जैनेन्द्र - मतलब उस तरह का नहीं जैसे आपको लड़कों को देख कर के होता है वैसा किसी लड़की को देखकर एकदम फील नहीं होता।

अतुल- हाँ...

जैनेन्द्र – आपने मुझसे समलैंगिक संबंधो के हरेक पहलू पर बात की, आपका बहुत-बहुत धन्यवाद !

अतुल- आपका भी धन्यवाद !

परिशिष्ट - II

ट्रांसजेंडर दीपिका का जैनेन्द्र कुमार द्वारा लिया गया साक्षात्कार

स्थान – नोएडा तारीख- 14/04/2019

जैनेन्द्र - आप से जब मेरी बात हुई तो आपने अपना नाम दीपक बताया और यह भी पता चला कि अब आपने अपना नाम दीपिका रख लिया है तो इसकी क्या कहानी है ? दीपक से दीपिका क्यों ? लड़की के रूप में प्रायरिटी क्यों ?

दीपिका - येस, ये सच है कि मेरा नाम दीपक है क्योंकि पैदाइशी जो नाम मेरे मां बाप ने रखा है वह दीपक ही था, मगर धीरे-धीरे वक्त बदलता गया मेरी उम्र बढ़ती गई उसके दौरान मुझे महसूस होने लगा कि मेरा जो जेंडर है वह मेरे सेक्स के साथ मैच नहीं कर रहा है मतलब सिमिलर नहीं है वो एक बात है। दूसरी बात मुझे लगने लगा कि बॉडी लैंग्वेज या फिर मेरा जिंदगी जीने का नजरिया लड़के जैसा नहीं है क्योंकि एक नाम लड़का जो दीपक नाम है, वो एक लड़के का नाम है। वो समझ में आता है बट जब मुझे लगा कि कुछ डिफरेंट है सो मेरे कुछ फ्रेंड्स ने भी इनिशियली बोलना शुरू किया दीपिका, दीपिका, दीपिका, स्कूल लाइफ में ही। बट जब वो ऐसा बोलते थे तो मुझे अच्छा लगता था। और मुझे ऐसा लगने लगा कि वो वह नाम मेरी असली पहचान से बुलाया जा रहा है और वो बोलता है ऐसे तो मुझे कोई प्रॉब्लम नहीं है और वो अच्छा लगने लगा। सो जब मुझे यह सब अच्छा लगने लगा तो उसी दौरान मैंने डिसाइड किया कि मुझे इस नाम के साथ धीरे-धीरे आगे जाना चाहिए। सो मैंने खुद को लड़का से लड़की बनाने के बारे में सोचना शुरू किया कि क्या ये सही रहेगा ? सो फिर यह दसवीं क्लास की बात है। फिर मैंने डांस वगैरह शुरू किया। अपने आप का सेल्फ एसेसमेंट शुरू किया। उसमें एक-डेढ़ साल लग गया। एन्ड देन सब कुछ तय कि सब कुछ तो लड़की जैसा ही है। कुछ तो डिफरेंट है नहीं तो अगर मैं खुद को लड़की मानूं तो प्रॉब्लम है। जरूरी नहीं है कि मैं लड़की जैसा बन जाऊं, बदल दूँ खुद को जरूरी नहीं बट खुद को मानूँ तो क्या प्रॉब्लम है ? बिकौज मेरा अट्रैक्शन भी एक लड़के की तरफ जा रहा है। मेरे घर के काम करने के तरीके और सब कुछ तो उस दौरान मैंने डिसाइड किया और उसके बाद मैंने खुद को एज ए डिसीप्लिन जिंदगी में लाकर खड़ा कर दिया कि मैं दीपक हूँ पर मैं दीपिका भी हूँ। सर्टिफिकेट नाम भी दीपक ही है। सर्टिफिकेट नाम की बात जैसे कि आप कर रहे हैं तो सर्टिफिकेट नाम बदलना आसान काम नहीं है। नाम बदलना है तो जेंडर बदलना है, जेंडर बदलना है तो सेक्स बदलना है, अब मैं सेक्स बदलूँ या जेंडर बदलूँ वह कंफ्यूजन है। बिकौज अगर मेरे सर्टिफिकेट में नाम बदलना चाहती हूँ तो उस में सेक्स का ऑप्शन होता है तो मेरा सेक्स तो मेल ही है। मेरा मानना है कि मेरा सेक्स तो मेल ही है ना, पैदा होने के टाइम मेरा जेंडर फीमेल है मुझे ऐसा लग रहा है तो ट्रांसजेंडर कैटेगरी आ जाएगी। सो जेंडर स्पेसिफिक बोल कर तो मेरे किसी आईडी कार्ड में ऑप्शन ही नहीं देखा। आज तक हिंदुस्तान के अंदर कि जेंडर

करके भी कुछ हो। जैसे अदर कंट्री में प्रीफर्ड जेंडर और सेक्स एक अलग ऑप्शन होता है। सो वो सेक्स और जेंडर दो होते हैं। सो इस पर जेंडर करके कुछ नहीं। मेरा जो कंफ्यूजन है मेरी जो लाइफ की हिस्ट्री है वह मेरे जेंडर के साथ तो कुछ नहीं है। सेक्स तो मेरा मेल था, पैदा होने के टाइम भी, आज भी मैं उसके साथ जी रहा हूँ/रही हूँ, मगर मेरे जेंडर के साथ मुझे प्रॉब्लम है। मेरा जेंडर मेल नहीं है। जेंडर एक अलग कहानी होती है जो समाज में खड़े होकर जीना शुरू करता है, तो वह एक डिफरेंस है, तो यहाँ आकर मुझे लगता है कि मैं सर्टिफिकेट में नाम चेंज कराऊं क्योंकि यह इजी नहीं है। कंफर्ट नहीं है। क्योंकि इसका ऐसा कोई पार्टीकूलर गाइडलाइन नहीं है। आप देखेंगे तो समझ में आएगा।

जैनेन्द्र- अगर कोई दिक्कत ना हो तो आप अपना छोटा सा परिचय दे दें तो ?

दीपिका - सो माइ सेल्फ दीपक कंसीडरिंग ट्रांस पर्सन जो अपने बायोलॉजिकल जेंडर के साथ कंफर्टेबल नहीं है और बेसिकली विलोंग टू दिल्ली स्टेट। मेरी फैमिली दिल्ली में ही रहती है। मेरा मां-बाप सब लोग मेरा फैमिली के साथ बहुत अच्छा कनेक्शन है। आई रिस्पेक्टबल पर्सन माइ फैमिली हाँ हर एक चीज, ज़िम्मेदारी उठाना, हर एक चीज का ख्याल रखना, भाई-बहनों के लिए क्या करना है वह सब सोचने का काम मेरा है अभी तक का ? सो वह मेरी जिंदगी की बात है। अगर एजुकेशन की बात करें तो आई एम ग्रैजुएट पर्सन। मैंने दिल्ली यूनिवर्सिटी से कॉरेस्पोंडेंस से ग्रेजुएशन कंप्लीट किया है। इसके अलावा आई वर्किंग फ्रॉम एनजीओ सेक्टर। सो मेरा पिछले 9 साल का एक्सपीरियंस है एनजीओ सेक्टर के साथ। उससे पहले मैंने डिफरेंट-डिफरेंट डिपार्टमेंट में काम किया और उसे छोड़ना पड़ा क्योंकि मुझे जेंडर यीशु को लेकर परेशान करते थे। टीस करते थे। जबरदस्ती सेक्सुअल हरासमेंट हुआ। इस वजह से मैंने डेढ़ साल में एनजीओ सेक्टर में आने से पहले पांच जॉब छोड़ी थी। सो पहले मेरा सीवी देख कर सब लोग बोलते थे कि हम नहीं रखेंगे। जॉब बहुत जल्दी-जल्दी छोड़ देते हो। मैंने बोला उसके पीछे कुछ रीजन है वह आपको नहीं बता सकता हूँ। सो वह भी एक वजह थी। ओवर ऑल देखेंगे तो यही मेरा परिचय है।

जैनेन्द्र - जैसा कि आप ने बताया कि आप के ऊपर आप के परिवार की रिस्पांसबिलिटी है तो परिवार और पड़ोस के लोगों का और रिश्तेदारों का क्या रिस्पॉन्स रहता है। आप को लेकर क्या नजरिया रहता है ?

दीपिका - स्टिल परिवार के लिए तो मैं एक बेटा हूँ और रिस्पांसिबल इंसान हूँ। ओवर ऑल ठीक हूँ। अगर मुझे डिसीजन लेना है घर के लिए तो वह मेरी ही मानते हैं, मेरी ही सुनते हैं। मेरे बारे में समझते हैं। चीजें मेरे हिसाब से चलता रहता है। मगर हाँ मैं मेरी पर्सनल लाइफ के लिए खुद करना चाहूँ तो वो लोग इतना जल्दी एक्सेप्ट नहीं करते। फॉर एग्जांपल- जब मेरे बड़े बाल थे एक फीट से लंबे सो उस दौरान उन्होंने कहा नहीं दिस इज नॉट टू, हेयर कट करना पड़ेगा क्योंकि बाल कटेगा तो ज्यादा अच्छे दिखोगे, लड़के जैसे दिखोगे, नहीं तो लड़की जैसे दिखोगे। आपको लोग हिजड़ा बोलेंगे तो फिर हमको अच्छा

नहीं लगेगा। इसलिए उन्होंने बाल काटने के लिए बोला। मैं फीमेल ड्रेसेस पहनने शुरू कर दिया था, अलग घर से निकल कर बाहर होकर तो फिर उनको बुरा लगने लगा। उन्होंने बोला ऐसे नहीं पहनना है। ये सब चीजें उन्होंने मुझे बोलना शुरू किया, तो मैंने बोला ठीक है अभी नहीं करते हैं। अभी इतना नहीं करेंगे नहीं तो उनको बुरा लगने लग जाएगा और मुझे स्वीकार कर रहे हैं वो लोग लेकिन उनकी भी कुछ टर्मस और कंडीशन लग गई है कि मुझे शादी नहीं करनी। मगर मुझे एक लड़के की तरफ शायद अट्रैक्शन है। मगर यह नहीं कह सकते हैं कि तू लड़की बन जा और शादी कर ले लड़के के साथ क्योंकि तेरा ऐसा मन है या करता है। इसलिए वहाँ मेरे लिए वैरियर्स खड़े हो जाते हैं।

जैनेन्द्र - ऐसा नहीं है कि जो चीज आप चाहते हैं उसमें परिवार का मोह आड़े आ जा रहा है ?

दीपिका - हाँ यह चीज है क्योंकि मैं परिवार को नहीं छोड़ना चाहता इसलिए मेरी जो फीलिंग्स है मैं उसे कंपलीटली जी नहीं सकता हूँ। जैसे- आई वांट टू द साइकेट्रिक, मेरी फैमिली के साथ जस्ट टू अंडरस्टैंड कि मुझे जो लगता है, आई वांट टू द साइकेट्रिक गवर्नमेंट हॉस्पिटल कि मैंने जो सोचा है वो करेक्ट है या नहीं क्योंकि मुझे कहा गया कि दिस इज द करेक्ट वे तो आई वांट देयर तो फिर जा कर यह सब चीजें शुरू हुई। तो जब मैंने डॉक्टर के साथ यह सब कुछ शुरू किया तो पूरा 8-9 महीने का यह प्रोसेस रहा। साइकैटरिस्ट डिसाइडेड डीक्लियर किया था। आन पेपर कि यू आर ट्रांस पर्सन। तुम लड़का नहीं हो, जो मर्द होता है। वो मर्द नहीं हो। बट बॉय बनकर पैदा हुए थे वो करेक्ट है। सो योर फैमिली हैज टू अंडरस्टैंड और बोला कि तुम अपने सेक्स जेंडर चेंज करने की प्रोसेस को लेकर आगे जा सकते हो और उसने ठप्पा मारकर आगे हॉस्पिटल में रेफर कर दिया। अगर मैं दूसरे हॉस्पिटल में जाऊं तो वहाँ पर क्या मुद्दा आता है कि मुझे पेरेंट्स को साथ लेकर आना है। उनका कंसर्न्ड लेंगे सो माई फादर वाज डिनाई टू गो देयर। उन्होंने बोला नहीं मैं नहीं जाना चाहता हूँ। मुझे ठीक नहीं लगता है। तो उन्होंने मना किया। मतलब मम्मी ने बात किया और शायद उन्होंने मना किया ऐसा मुझे पता चला। मुझे कहा गया था कि तुम डायरेक्ट बात करो। सो पता नहीं अचानक क्या हुआ उसके कुछ महीनों बाद मेरे पापा की मेमोरी लॉस हो गई। तो मम्मी बोलती है कि वो थोड़ा डिस्टर्ब हो गए थे। शायद इन सब चीजों को जानकर या कुछ भी समझ लीजिए बट ऐसा कुछ हुआ कि उनकी मेमोरी लॉस हो गई। तो मुझे लगा कि इस स्टेप को अभी थोड़ा यहाँ रोकना चाहिए। आगे बढ़ना नहीं चाहिए। तो मैंने वही स्टॉप कर दिया और ठीक है। माइ फादर नोसेस वी वेल एवरीथिंग। शायद उनको उस टाइम कुछ हुआ होगा। अभी मेरे पापा मेरी केयर बहुत करने लगे हैं। फॉर एग्जांपल- अच्छा आ गया तो पानी लाऊं तेरे लिए। मतलब कभी जो पूछते नहीं थे कि पानी लाऊं, पानी पीना है क्या ? वो आज पूछते हैं कि पानी लाकर दूं पीना है। अच्छा तेरी मम्मी ने खाना बना दिया है तू खाना खा लेना। तेरे रूम में मॉस्किटो क्वायल मैं जलाकर आ जाता हूँ। तो वो केयर अभी बढ़ने लगा है। उनकी मेरे लिए। मगर वो केयर इसलिए है कि हमारा बच्चा शायद उस तरह आगे नहीं बढ़ेगा मतलब यह चेंज करना चाहता है सेक्स को जेंडर को तो नहीं करेगा। वो शायद मुझे ये भी लगता है। क्योंकि डॉक्टर ने समझाया तब।

जैनेन्द्र- आपकी एज(उम्र) क्या है ?

दीपिका - मेरी एज 28 कंपलीट हो गया है। 29 वां चल रहा है।

जैनेन्द्र- वैसे तो आपने शुरूआती में बता दिया कि आपको कैसे पता चला कि आप ट्रांसजेंडर हैं? आप ने बताया था कि स्कूल के टाइम में पता चला था |

दीपिका - सो यस, एक होता है ट्रांसजेंडर टेक्निकल वर्ड मतलब आपको भी आज से शायद 5 साल पहले नहीं पता रहा होगा। जब हम अपनी जिंदगी में आगे बढ़ रहे होते हैं तो हमको भी नहीं मालूम होता है। ऐसे ही फॉर एग्जांपल- लड़कियों के जिंदगी में बहुत कुछ होता है कि उनको पहले नहीं मालूम होता है। एक एज के बाद पता चलता है। फॉर एग्जांपल- मंथली पीरियड, शादी के बाद और क्या होगा ? सो, उनको एक एज के बाद पता चलता है। हमको भी एक एज के बाद ही समझ आया। क्योंकि हमें तो समझ में नहीं आता। हम बचपन में कैरेक्टर को काउंट करते रहते हैं माइंड में, जिंदगी भर कि मैं लड़की जैसा सोचता हूँ, मैं लड़की जैसा सोचता हूँ या फिर कोई लड़की है तो वह सोचती है कि मैं लड़की जैसा सोचती हूँ और वो उस चीज को लेकर चलते जाते हैं। बट एक एज आती है जब सामने से कोई बुक देखकर, इंटरनेट देखकर, किसी से जानकर, मिलकर समझ पाते हैं कि 'हू आई एम' तो मुझे वो जो 'हू आई एम' करके समझने वाली बात है वो मुझे 17 ईयर आई वाज 12th में पता चला। मुझे अच्छे से याद है तो मुझे समझ आया था कि दुनिया मुझे किन्नर-किन्नर, हिजड़ा-हिजड़ा बोलती थी तो उनके बोलने से मुझे फर्क नहीं पड़ा था। लेकिन जब मैं किन्नर समाज से मिला और उनसे जब मेरी बात हुई और उन बातों में जब तीन-चार दिन उठना बैठना, वो अपनापन, वो अपना फीलिंग, अटैचमेंट जो मुझे शायद बहुत बार ऐसा नहीं लगा होगा कि मेरी माँ से हो वो उनसे भी ना होकर उस इंसान से हुआ। 'आई डोंट नो' क्यों हुआ था वो आज तक मुझे नहीं मालूम हुआ है। दिल करता था कि मैं दुखी हूँ। अपना दुख किसी को शेयर करूं कि मुझे क्या फील होता है ? कैसे छेड़ते हैं सब ? मेरे साथ क्या-क्या हुआ है ? मैं घर में शेयर करूं वो घर में नहीं किसी ने सुना। वो बाहर सुना तो मुझे अट्रैक्शन हुआ और मैं उसके गोद में सर रखकर बहुत सुकून मिला। ऐसा लगा कि माँ की गोद मैं लेट कर वह सुकून मिलना चाहिए लेकिन मैंने शायद यह नहीं किया उन्होंने कभी एक्सेप्ट नहीं किया कि आ जा गले लग जाएं। सो यह सब जब हुआ तो मुझे उस तरफ ज्यादा अट्रैक्शन हुआ। फिर जब बात करते-करते मुझे समझ में आया कि यस मैं भी ऐसा ही हूँ क्योंकि इनके भी बचपन की यात्रा ऐसे ही रही। वो लड़का थे फिर ऐसा हुआ, फिर ऐसा हुआ। लोगों ने सेक्स किया। जबरदस्ती छेड़ा। जॉब छूट गई। स्कूल से निकल गए। परिवार से निकल गए और आज वह भीख मांग रहे हैं, ताली बजा कर रोड पर। सो आई वाज थिंक कि अगर यहाँ तक की जर्नी इनकी मेरी जैसी है। मगर इसके बाद की जर्नी जो, मीन्स अपनी बात करूं मेरी जर्नी क्या ऐसी ही होगी ? रोड पर भीख मांगनी पड़ेगी ताली बजाकर। सो व्हेन आई वाज थिंक, दिस थिंक, तो मैंने सोचा कि कुछ तो गड़बड़ है क्योंकि मुझे तो यह नहीं करना है। भीख तो मुझसे नहीं मांगी जाएगी। तो उस दौरान और अलग-अलग टेक्निकली पढ़े-लिखे इंसान से बात हुई तो उन्होंने बोला कि इसको एक शब्द बोलते हैं

जिसको हम ट्रांसजेंडर बोलते हैं। वो टाइम की एज थी 19 ईयर। तब से मुझे लगा हाँ 'आई एम ट्रांसजेंडर' क्योंकि मेरे जेंडर में प्रॉब्लम है सेक्स में प्रॉब्लम नहीं है। देन आई डिक्लियर माय सेल्फ ट्रांसजेंडर | तब से आज तक मैंने खुद को ट्रांसजेंडर ही माना। ठीक है वो मुद्दा अलग है कि मेरे आधार कार्ड पर पुरुष लिखा है।

जैनेन्द्र :- अभी एक विवाद बहुत ज़्यादा चला है कि जैसे विकलांग को भी नरेंद्र मोदी ने दिव्यांग का नाम दिया था, तो मैंने किसी विकलांग दोस्त से पूछा तो उसने कहा हमें दिव्यांग नाम नहीं चाहिए, हमें विकलांग नाम ही सही लगता है। उसी तरह जैसे 'ट्रांसजेंडर' के लिए लोग आमतौर पर 'हिजड़ा' शब्द इस्तेमाल करते हैं, लेकिन यह बहुत सम्मान जनक शब्द रह नहीं गया है, इसमें एक व्यंग्य छुपा हुआ है तो लोग किन्नर कहने लगे | लेकिन हरनोट जी जो एक लेखक हैं पहाड़ के उन्होंने आपत्ति दर्ज की है की हिमाचल में एक इलाका है, 'किन्नोरियों' का उनको 'किन्नर' कहा जाता है और बहुत पुराने समय से किन्नर कहा जाता है,तो वो लोग इस पर आपत्ति कर रहे हैं, और वहाँ की विधान सभा और लोक सभा में भी इस मुद्दे पर बात हो चुकी है कि किन्नर उनको कहा जाता है तो उनको इस पहचान से न जोड़ा जाए। अब डिबेट यह है कि इसके लिए एक सम्मानजनक शब्द हो तो, हो क्या ? अब जैसे हम लोगों ने हिन्दी में 'तृतीय लिंग' चलाया जिसको इंग्लिश में आप 'थर्ड जेंडर' कह रहे हैं, लेकिन क्या इसके लिए 'हिजड़ा' शब्द यूज़ किया जाये, किन्नर तो वो लोग आपत्ति कर रहे हैं तो 'किन्नर' शब्द इस्तेमाल नहीं कर सकते ?

दीपिका :- इन सब शब्दों का हेर-फेर तो बहुत बड़ा गेम होता है तो हम डिसाइड नहीं कर सकते मगर जहाँ तक मेरी समझ है 'हिजड़ा' अपने आप में एक अलग समाज है तो हर ट्रांसपर्सन को 'हिजड़ा' नाम से जोड़ना सही नहीं है क्योंकि वो एक कल्चर है और उस कल्चर को सब फोलो नहीं करते हैं, कुछ ही लोग हैं जो फोलो करते हैं तो वो गलत है।

जैनेन्द्र :- वह कल्चर क्या है ?

दीपिका :- जैसे अखाड़े में एक गुरु हुआ फिर उसके चेले हुए, फिर उसके चेले हुए। ऐसे हिजड़ा घराना भी उसी तरह से काम करता है। एक गुरु है फिर उसकी प्रथा अपनाते हैं, पूजा-पाठ वगेरह सब करना होता है, सब लोग उसमे जुड़ते चले जाते हैं गुरु फिर चेला, फिर उसका चेला, फिर उसका चेला, गुरु मर गया फिर नीचे वाला गुरु और उसके चेले हो गए, फिर वो मर गया और फिर उसके नीचे वाले चेले हो गए, फिर वो पोती चेलों से परपोती चेले होते हैं, ऐसी सिचुएशन है 'हिजड़ा' कल्चर में लेकिन वो कल्चर हर एक के ऊपर नहीं डाला जा सकता फॉर एक्ज़ाम्पल आई कंसीडर माईसेल्फ़ इन ट्रांसजेंडर मगर मैं हिजड़ा समाज तो नहीं मान सकती खुद को क्योंकि मेरे पास तो कोई चेला नहीं है, वरवली (मौखिक रूप से) हमको कोई बोल देता है हमें वो अलग कहानी है, वरवली हम बोल देते हैं किसी को यू आर माए गुरु लेकिन वो एक प्रथा है, वो फ़ॉलो करना, अपनाना, उसके अन्दर जाना, घुसना अपने आप में एक अलग

कहानी है, वो करना है तो फिर जैसे फॉर एक्ज़ाम्पल अगर अब सन्यासी बन गए तो मतलब फिर तो मैं सन्यासी ही हूँ, फिर मैं जॉब क्यों करूँ ? सन्यासी इंसान तो फिर संन्यास में ही रहेगा वो जॉब थोड़ी करेगा, ऐसे ही हिजड़ा कल्चर में जो घुस गया वो तो फिर हिजड़ा कल्चर में काम करेगा न जैसे नाच-गा के कमाना खाना, वैसे ही जीना वही ज़िन्दगी, वो फिर बाहर नौकरी कैसे कर सकता है, क्योंकि अगर वो बाहर नौकरी करेगा तो फिर वह किस बात का हिजड़ा, क्योंकि हिजड़ा तो अपने आप में एक अलग कल्चर है, तो हिजड़ा शब्द से जोड़ नहीं सकते इसे। तृतीय लिंग ऐसा लगता है जैसे की ज़बरदस्ती कुछ आया है, एक लिंग ज़बरदस्ती से कुछ आ गया। स्त्री-पुरुष सुनते आ रहे थे उसके पीछे कोई यह भी नहीं बोलता था की यह स्त्री लिंग है, या पुरुष लिंग है या पुल्लिंग है,वो पढ़ते थे स्कूल में ठीक है, लेकिन बाद में कोई बोलता नहीं था की सामने से खड़े होकर की तू पुल्लिंग है, ऐसा तो कोई पूछेगा नहीं आदमी को, है ना ? तो वो अपने आप से कॉमनसेन्स वाली बात हो जाती है, कि ये आदमी है और ये औरत है। सो वॉट आई थिंक लोग मुझे देखने से लड़का समझ रहे हैं तो वो मुझे लड़का बोल सकते हैं, फ़ाईन कोई बात नहीं है, कोई ईशू नहीं है, मुझे लड़की समझ रहें हैं फ़ाईन वो मुझे औरत बोल सकते हैं कोई ईशु नहीं है, मगर ये मेरा ओपिनियन है और लोगो का शायद अलग हो। मेरे आधार कार्ड में या तो पुरुष हो सकता है या स्त्री भी हो सकता है, मगर मेरे जेंडर में ट्रांसजेंडर होना वो एक इम्पोर्टेन्ट मुद्दा है अगर मेरे जेंडर मव ट्रांसजेंडर आ जाए जैसे अगर आपका आधार कार्ड देखा जाये तो सेक्स मेल, जेंडर मेल दोनों चीजें सिमिलर हैं, एक औरत में देखेंगें तो सेक्स फीमेल, जेंडर फीमेल दोनों बराबर करेक्ट, मेरे आधार कार्ड में सेक्स फिमेल, जेंडर ट्रांसजेंडर, मीन्स की मैं खुद को औरत कहलाना पसंद करती हूँ, मगर मेरा जेंडर कुछ और है, मैं खुद को आदमी कहलवाना पसंद करता हूँ, मगर मेरा जेंडर कुछ और है। सो ऐसा कुछ सिस्टम बन जाये डॉक्यूमेंट में लेकिन वरवली बोलने के लिए तो वही है, कि तुम बहन हो तुम भाई हो अगर इतना ही रह जाये तो वो डिबेट वो लड़ाई वो झगड़ा खत्म हो जाएगा, मुझे जो लगता है ये बहुत सिंपल वे है सारे झगड़े को खत्म करने का।

जैनेन्द्र : बहुत सारे फॉर्म में तो ऑप्शन देने लगे हैं 'ट्रांसजेंडर' का, जैसे जामिया, जेएनयू में 'ट्रांसजेंडर' का ऑप्शन आ गया है ?

दीपिका : मगर आप अपना सेक्स या लिंग बताइये की आपका लिंग क्या है, तो 'ट्रांसजेंडर', सो ट्रांसजेंडर में अपने आप में अन्दर बहुत बड़ी कैटेगरी है, है ना ? कि मैं 'मेल टू फिमेल' ट्रांस हूँ, 'फिमेल टू मेल' ट्रांस हूँ, मैं ट्रांस मैन मानती हूँ, मैं ट्रांस वीमेन मानती हूँ। मैं एक क्रोस ड्रेसर वीमेन हूँ, तो ट्रांसजेंडर मानती हूँ ।

जैनेन्द्र : इसको ज़रा एक्सप्लेन कर दीजिये ?

दीपिका : 'ट्रांस मैन' इन दा सेंस मैं एक औरत हूँ और मैंने खुद को आदमी वाले जेंडर की तरफ़ ट्रांसफर किया तो मैं 'ट्रांसमैन' हो गई, और मैं एक मेल बनकर पैदा हुआ और मैने खुद को फिमेल वाले जेंडर की तरफ ट्रांसफ़र किया, तो में 'ट्रांस वीमेन' हो गई।

जैनेन्द्र : आपको 'ट्रांस वीमेन' कहा जा सकता है ?

दीपिका : हाँ, फिर अब क्योंकि यह सही नहीं लगता है बहुत लोगों को कि मैं मेल की ड्रेस में होकर खुद को 'ट्रांस वीमेन कैसे कहूँ, क्योंकि मैं तो सिर्फ़ 'ट्रांसजेंडर' हूँ, मतलब सिर्फ़ वो 'ट्रांसजेंडर' वर्ड तक ही खुश हैं। फिर कुछ लोग हैं जैसे 'क्रोस ड्रेसर ट्रांस पर्सन' जैसे मैं मेल हूँ, लेकिन खुद को मैं फिमेल की ड्रेस पहन कर खुश महसूस करती हूँ, और अच्छा लगता है मुझे, और बाकि चीजों के बारे में मुझे नहीं मालूम की मुझे लड़के से प्यार है या नहीं, मेरे को घर का खाना बनाना आता है कुछ समझ नहीं आता है मुझे ये, बस इतना समझ आता है कि जिस दिन में वो फिमेल ड्रेस पहनती हूँ तो मैं खुश हूँ, भले ही मैं आदमी हूँ, तो वो लोग सोचते हैं कि मैं भी शायद 'ट्रांसपर्सन' हूँ, 'ट्रांसजेंडर' हूँ, मेरे जेंडर में कुछ तो यहाँ से वहाँ ट्रांसफ़र हो रहा है, तो मैं भी 'ट्रांसपर्सन' हूँ, मुझे भी ट्रांस बनाओ। तो अब ऐसा तो हो नहीं सकता की इफ यू आर ट्रांसजेंडर तो उसके अन्दर भी इस्पेसिफ़ाय करो 'ट्रांसमेन' हो, 'ट्रांसवीमेन' हो, ये हो, वो हो इतना सब तो किसी भी आई. डी कार्ड में एड्जस्ट नहीं होगा (हँसते हुए) तो वो अपने आप में एक मुद्दा है। कल ही हम एक ऐसे मुद्दे पर डिस्कस कर रहे थे की क्या होना चाहिए सो आई डीसाईं डीड दिस इज द बेटर थिंग, इफ यू कनसीडर माय सेल्फ़ एस ट्रांसजेंडर ओनली और मेरे डॉक्यूमेंट में मेल –फिमेल का ही ऑप्शन रहना चाहिए और वो मेरी खुद की च्वाइस है कि मुझे मेल रखना है या फिमेल एण्ड देन उसके बाद आप मुझे एक सर्टिफिकेट दे दीजिये जैसे आप एक एस.सी को देते हैं, ओं.बी.सी को देते हैं, एस.टी को देते हैं, है ना, वो सर्टिफिकेट हर जगह लेकर जाते हैं कि हमें जॉब में छूट मिलेगी, क्योंकि उनके आई.डी कार्ड में तो कुछ नहीं लिखा है कि वो एस.सी, ओ.बी.सी क्या हैं ? मगर उनको सारे फेसिलिटीज़ मिल रहे हैं। तो एस ए ट्रांस्पर्सन आई विल गेट दा सर्टिफिकेट और फिर मेरे आई.डी कार्ड में फिर मेल-फिमेल जो भी हो वो चलेगा, तब जाकर मुझे ट्रांसजेंडर वाले बेनिफिट मिलेंगे।

जैनेन्द्र : वो सवाल है आरक्षण को लेकर लेकिन मैं ये कह रहा हूँ अगर हम लिखे तो क्या सम्मान जनक नाम लिखे ?

दीपिका : ट्रांसजेंडर।

जैनेन्द्र : हिंदी में भी ट्रांसजेंडर कहा जाये ?

दीपिका : हाँ, तृतीय लिंग ईज़ वेरी कॉमप्लिकेटिड, तृतीय लिंग अलग सा लगता है। अगर आप ट्रांस देखेंगे तो लगेगा बदलाव, जेंडर मतलब लिंग, तो बदला हुआ लिंग तो अच्छा नहीं लगता है, तृतीय लिंग अच्छा नहीं लगता है। कुछ टर्म्स है जो इंग्लिश में ही अच्छी लगती हैं।

जैनेन्द्र : शिक्षा-दीक्षा के बारे में बताया अपने की दिल्ली यूनिवर्सिटी से पढाई की, किस सब्जेक्ट में अपने पढाई की ?

दीपिका : मैंने आर्ट्स से पढाई की है, जिसमें इकोनोमी, पोलिटिकल साइंस, हिंदी वगैरह थे।

जैनेन्द्र : कौन-सा कॉलेज ?

दीपिका : दिल्ली यूनिवर्सिटी क्रॉसपोंडेंस।

जैनेन्द्र : एस.ओ.एल जिसे कहते हैं ?

दीपिका : जी हाँ।

जैनेन्द्र : एक सवाल मेरा यह है की जब आपको सोसायटी में दिक्कत होती है, आप दुखी होते हैं तो आप अपने आप को कैसे संभालते हैं ?

दीपिका : ये सवाल अगर पुराने समय से सोचेंगे तो बहुत मुश्किल था खुद को संभालना, जैसे स्कूल लाइफ़ थी या फिर ये सब था, जैसे रात को रोने का दिल कर रहा है, खाना खाने का दिल नहीं कर रहा ये सारे इशु अन्दर आते थे, लेकिन समझ नहीं आता था की कैसे क्या करूँ ? बट नाओ आई नों दा थिंग्स कि बहुत लोगों के साथ ऐसा हो रहा है तो अब मुझे वो डर नहीं हैं। बट स्टिल मुझे अभी भी दुख होता है, परेशानी होती है, तो मुझे (थोडा रुक कर) बहुत फनी है, मुझे कार्टून्स देखना अच्छा लगता है, टॉम एण्ड जेरी जैसे या फिर समाज के उस तबके को अपनी नज़रों से देखना जिनकी ज़िन्दगी में बहुत इशुज़ हैं। फॉर एक्ज़म्पाल जैसे लेबर क्लास लेडी तश्ला उठा कर सर पर चलती है बच्चा भी पालती है, परिवार भी संभालती है, घर भी देखती है, खाना बानाती है, सब कुछ करती है, फिर जब मैं खुद को कम्पेयर करता हूँ, स्टिल आई एम बेटर देन दिस लेडी उसके पास तो ये बुरी हालत है, शायद घर भी खुद का नहीं है, रेंटेड हॉउस में है, रोडो पर रोज़ काम करना पड़ता है। और कोई लड़की वैसे बाहर घुमती है तो वह देखती है की उसकी ड्रेस यहाँ से हट गई तो लोग देख रहे होगे, वहाँ से हट गई तो लोग देख रहे होंगे, लेकिन उस औरत ने कुछ ध्यान नहीं दिया कि उसका पल्ला हठ गया है, स्टिल वो सर पर तश्ला लेकर चली ही जा रही है वो ये ध्यान नहीं दे रही है की कोई लड़का देखेगा मुझे या मेरे ड्रेस को देखेगा क्या वो उसको फ़र्क नहीं होता है, उसको सिर्फ़ चार सौ रूपये से मतलब होता है जो उसको शाम को मिलेंगे, सों स्टिल माय लाइफ़ इज़ बेटर देन दिस लेडी।

जैनेन्द्र : आप कई बार अपने आप को स्त्री लिंग के तौर पर बोल रहे हैं तो कई बार पुल्लिंग के तौर पर, यह कनफ्यूज़न क्यों है ?

दीपिका : यह कनफ्यूज़न नहीं है, यह सिर्फ़ इस वज़ह से है, क्योंकि में पैदा हुआ एक लड़के की तरह और फिर आई डिसाइडीड माय सेल्फ़ इस ट्रांसजेंडर तो वो ऐज आ गई बीस साल वो बीस साल की जो छाप है, वो छुटती नहीं है, वो दिमाग से जाती नहीं। मुझे रोज़ दोहरी ज़िन्दगी जीनी पड़ती है, मतलब मेरे मम्मी-पापा के सामने जा कर ऐसे बात नहीं कर सकती, कि मम्मी मैं खाना खाऊँगी मुझे खाना परोसो।

जैनेन्द्र : कई बार ऐसा मुँह से निकल भी जाता होगा ?

दीपिका : हाँ, लेकिन तब सब ऐसा शोक्ड होकर देखते हैं, लेकिन वो बहुत रेअर हुआ है, मतलब चार-छ : महीनों में ऐसा हुआ तो हुआ वरना ऐसा नहीं होता क्योंकि वो कंट्रोल करने की क्षमता वो शक्ति अन्दर से आ जाती है, क्योंकि जब आपको हर दिन सी.सी टी.वी की तरह ओब्ज़र्व किया जाता है ना कि आप क्या कर रहे हो, कैसे कर रहे हो, क्या बोल रहे हो, तब आप खुद को कंट्रोल करना सीख जाते हो।

जैनेन्द्र : थर्ड जेंडर का डिस्कोर्स हमारे लिटरेचर में है शायद आपको ये पता है या नहीं ये अलग डिस्कोर्स हो गया है जैसे हमारे यहाँ पहले दलित साहित्य पर अलग से डिस्कोर्स था, आदिवासियों पर था जो बूढ़े –बुजुर्ग है उन पर था मतलब हर सेक्शन में वो सेक्शन जिसको आवाज़ नहीं मिली है, उसका अलग से डिस्कोर्स है, लिटरेचर तो पहले से था, लेकिन उसमें क्या होता था ये जो सो कोल्ड मुख्य धारा का समाज है केवल उसकी बातें होती थीं, और जो सेक्शन हाशिए पर है उसकी बातें नहीं होती थीं। तो उसमे एक डिबेट यह है की जो दलित साहित्य के लोग हैं वो यह कहते हैं कि जिन्होंने इस दुःख को भोगा है, वो ही इस पर लिख सकता है मतलब वहां पर सहानुभूति और स्वानुभूति का मामला है लेकिन आदिवासी लोग कहते है कि जो हमारी चीजों को समझ सकता है वो ऐसा कर सकता है। तो क्या आपके यहाँ भी ये डिबेट है की जो किन्नर हैं वही उनकी समस्याओं को समझ सकते हैं, दूसरे लोग उन्हें सही तरीके से नहीं समझ सकते ? क्या आप हम लोगों को अपने इस स्ट्रगल में शामिल मानते हैं ?

दीपिका : देखिये, अल्टीमेटली बदलाव आना है तो समाज से ही आना है, मतलब खुद किन्नर समाज खुद अपने आप में कुछ करेगा और समाज बदल जायेगा ऐसा तो होगा नहीं, उसके लिए सबसे पहली पहल है कि हम आम समाज जिसको औरत और आदमी बोलते हैं हम उनको सबसे पहले सेन्सटाईज़ करेंगे हमारे बारे में, सो स्टिल मुद्दा यहाँ पर है कि हम लोगों को सेन्सटाईज़ कर दे, इट मीन्स लोग अभी भी अवेयर नहीं हैं, अभी भी लोगों को हमारे बारे में मालूम नहीं हैं, तो जब तक लोग अवेयर नहीं हैं हमारे बारे में उन्हें मालूम ही नहीं है तो वो हमारे लिए कैसे कुछ कर सकते हैं, फॉर एग्जाम्प्ल एक छोटी-सी बात है, कि ट्रांसजेंडर बिल आ गया, जो आपको मालूम होगा। उसके पीछे ट्रांसजेंडर समुदाय उठकर खड़ा होगा की नहीं-नहीं ये गलत है, मतलब ऐसा लग रहा था की मेरे पीछे कोई कुत्ता पड़ गया था और हम दौड़ रहें हैं भाग रहें हैं कि काट न ले, ऐसा था वो ट्रांसजेंडर बिल, तो इसका मतलब वो किसने बनाया हमको तो आज तक नहीं मालूम। एक कम्यूनिटी के बहुत सिनियर लोगों से भी पूछते हैं, तुमसे कुछ पूछा गया था क्या ? सबने नहीं-नहीं बोला, इट्स मीन्स हममें से किसी का भी इन्वोल्मेंट नहीं था, बाहर वाले ने

बनाया इसलिए उसमें ऐसे इशूज़ थे जो ट्रांसजेंडर एक्सेप्ट ही नहीं कर पा रहे हैं, मतलब उसमें कुछ ऐसा आ गया जो हम खुद ही एक्सेप्ट नहीं कर पा रहे हैं।

जैनेन्द्र : वो इशूज़ क्या थे जिसे आप एक्सेप्ट नहीं कर पाए ?

दीपिका : जैसे आप खुद को ट्रांसजेंडर डिक्लेयर करते हो तो, आप हमारे पास पहले आइये, यहाँ पर एक कमेंटी बनेगी, पाँच लोग बैठेंगे एण्ड दे विल डिसाइड की तुम ट्रांसजेंडर हो या नहीं। सों मेरा जेंडर मेरी आईडेंडीटी डिसाइड करने वाले तुम कौन होते हो ? फिर आप पाँच का यह काम भी होना चाहिए कि जिस घर में बच्चा पैदा हुआ है वहाँ जाकर बताओ की वो ट्रांसजेंडर है या नहीं, जाके बताओ की वो लड़का है की नहीं, लड़की है की नहीं, अगर तुम इतने ही समझदार बन गए तो, सबको बताओ की तुम्हारे घर बच्चा पैदा हुआ है, अच्छा अस्पताल में मेरी ड्यूटी लगेगी अब बच्चा पैदा हुआ मेरे पास दो मेरी गोद में मैं बताऊंगा हाँ ये तो लड़का ही है, और कल उस लड़के ने जाकर ट्रांसजेंडर जैसा बिहेवियर किया तो फिर तो तुम्हारा डीसीजन गलत हो जायेगा, सों ऐसे कई सारे फाल्ट इसमें थे।

जैनेन्द्र : और अभी भी हैं।

दीपिका : हाँ, वो ट्रांसजेंडर बिल अभी भी घूम रहा है, लोकसभा और राज्यसभा में पास होने वाला था, राज्य सभा ने उसको मना कर दिया, सो स्टिल वो लोग सोंच रहे हैं कि कोई नयी पॉलिटिकल पार्टी फिर से उठकर आएगी उसे लेकर खड़ी हो जाएगी।

जैनेन्द्र : मतलब यह कह रहे हैं की अगर कोई सो कॉल्ड समाज का नार्मल आदमी वो आपके साथ मिल कर काम करे तो बेहतर स्थिति हो सकती है ?

दीपिका : मगर हम उसके हाथ में सब नहीं छोड सकते कि तुम कर दो, ऐसा करने से फिर वही प्रोब्लम आते रहेंगे।

जैनेन्द्र : मतलब दोनों मिल कर साथ में काम करें ?

दीपिका : हम सोंच रहे थे की अगर ट्रांसजेंडर बिल बन रहा था तो, क्यों न उन लोगों को अलग-अलग स्टेट के बीस –तीस –चालीस सीनियर ट्रांसपर्सन को बैठाकर उनसे बात करनी चाहिए थी कि हम ये मुद्दा डालना चाह रहें हैं, तो शायद अच्छा आउटकम आता।

जैनेन्द्र : अच्छा, जो नकली ट्रांसजेंडर हैं और असली ट्रांसजेंडर हैं उसकी क्या पहचान है ?

दीपिका : कुछ असली नकली का ऐसा कुछ केटागराईज़ेशन नहीं है, जैसे फॉर एग्जाम्पल सम पीपल विल से कि दीपिका नकली ट्रांसजेंडर है।

जैनेन्द्र : बहुत सारे विडिओ में देखा की किसी को मार रहें हैं और जब कपड़े खोला तो पता चला की वो मेल है।

दीपिका : देट्स अनदर थिंग, फिर उसी कल्चर में जायेंगे प्यूपल विल कॉल दीपिका, जो अपने आप को दीपिका बोल रही है, ये नकली ट्रांसजेंडर है, क्योंकि ये मेल ड्रेस में बैठती है, ऐसा हो सकता है।

जैनेन्द्र : ट्रांसजेंडर तो मेल ड्रेस में बैठ सकता है ?

दीपिका : कपड़ा डिसाइड नहीं करता है जेंडर, बाल डिसाइड नहीं करते हैं, मेकअप डिसाइड नहीं करता जेंडर, जेंडर मेरा दिमाग,मेरी सोंच और मेरा काम करने का तरीका बताता है, सो स्टिल अभी तक वो हमारे ही समाज में कनफ्यूज़न है, मतलब वप ट्रांसजेंडर वाला मुद्दा नहीं होता है, मुद्दा होता है ये नकली किन्नर है, नकली हिजड़ा है, कभी भी कोई यह नहीं चिल्ला रहा होता है की ये नकली ट्रांसजेंडर है, हे ना, क्योंकि स्टिल वो कनफ्यूज़न है, एक ट्रांसजेंडर को जैसा कि आपने बोला था थोड़ी देर पहले क्या हम एक ट्रांसजेंडर को किन्नर बोल सकते हैं, हिजड़ा बोल सकते हैं। मैंने क्या बोला नहीं बोल सकते, क्योंकि आप वही बोल रहे हो और इसलिए मुझे मारा जा रहा है, और आज आप आकर मुझसे पूछ रहे हो की नकली ट्रांसजेंडर होता है क्या ? तो नकली ट्रांसजेंडर बोल कर नहीं मारा गया था उसको, जितने भी आज विडिओ हमने देखें हैं, पचास से सौ देखें हैं, ट्रांसजेंडर बोलके नहीं बोलता है कोई कि ये नकली ट्रांसजेंडर है, नकली किन्नर बोलके मार रहे होते हैं।

जैनेन्द्र : मतलब वो जो हिजड़ा का ट्रेडिशन है गुरु वाला उसको ट्रांसजेंडर फॉलो नहीं करता है ?

दीपिका : येस, आई एम नॉट फौलोविन्ग दिस, अगर में किन्नर समाज के जैसे कमाना शुरू करूँ, पार्क में जाकर भीख मांगू, तो वो लोग मुझे बोलेंगे की तू किसका चेला है ? इफ़ आई विल से की मेरा तो कोई गुरु नहीं है, मैं तो किसी का चेला नहीं हूँ, तो फिर तू नकली है बेटा तू किन्नर नहीं है, अभी तूने वो प्रथा नहीं अपनाई पहले वो प्रथा अपना फिर खुद को किन्नर बोलना।

जैनेन्द्र : यह एक नया मेरे लिए सामने आया एक नया रूप लेकिन मैने कहीं पढ़ा है कि कुछ लोग ऐसे हैं, जिनके बच्चे हैं, शादी-शुदा ज़िन्दगी है, क्योंकि इसमें पैसा बहुत है तो वो कपडे पहन के उसी तरह बिहेव करने की कोशिश करते हैं ?

दीपिका : सो यह बहुत पुराना है, जो आप बोल रहे हो (सॉरी मैने एक दम कट कर दिया बोलते-बोलते) यह बहुत पुरानी बात है।

जैनेन्द्र : अभी नहीं है यह ?

दीपिका : आज भी वो चल रहा है, मतलब पुराने समय से चला आ रहा है जिसको हम बहरूपिया बोलते हैं। बहरूपिया होता था वो आता था मेल होता था बट फिमेल ड्रेस्सेस पहन कर गली-गली नाचते थे, ढोलक बजाते थे और कामके जाते थे। अब आज की डेट में किन्नर समाज सामने आ गया बहुत आ गया, सो उसको किन्नर से कोरिलेट कर देते थे, कि यह भी किन्नर समाज का हिस्सा है क्योंकि इसने फिमेल ड्रेस पहनी है और आदमी जैसा दिख रहा है। फिर उसको लोग बोलते हैं की ये नकली हिजड़ा है, और वो तो सच में यही बोलेगा न जब उसको पूछेंगे तू आदमी है ? हाँ मैं आदमी हूँ। बीबी-बच्चे हैं ? हाँ मेरे बीबी-बच्चे हैं। वो तो बहरूपिया है, उसका काम किन्नर वाला नहीं है, वो किन्नर बनकर थोड़ा कमा रहा है, हाँ मांग रहा है भीख, लोगो से पैसे मांग रहा है घर-घर जा कर, लेकिन वो किन्नर नहीं है, वो बहरूपिया है। मगर जब कोई किन्नर समाज को जाकर ऐसा बोलता है तो किन्नर समाज गुस्से में आ जाता है, और जाकर फिर उसके ऊपर अटैक कर देता है, और वो बेचारा मुँह खोल भी नहीं पाता है, वो तब तक पिट चुका होता है।

जैनेन्द्र : अच्छा, आपको यदि किसी के प्रति प्रेम आता है प्यार आता है तो उसका अंत कैसे होता है, और क्या कभी वो पॉज़िटिव रहा ?

दीपिका (एक लम्बी साँस भर कर) : हार्ट से क्लोज़ वाले सवाल हैं ये, सो जब वेन आई वाज़ इन टेंथ क्लास मुझे एक लड़के की तरफ़ अट्रेकशन होना शुरू हुआ और वो सब जब चलता रहा मेरे माइंड में तो मुझे लगा की देयर इज़ समथिंग रोंग मुझे तो लड़कियों को देखना है ये लडको के साथ क्या हो रहा है। वो लड़का जिसकी तरफ मेरा अट्रेकशन हुआ वो मेरा दोस्त है, सो मेरे को क्यों हो रहा है ऐसे छ: महीने हो गए मुझे सोचते-सोचते की ऐसा हो क्यों रहा है, मैं तो लड़का हूँ, बेशक कुछ गड़बड़ है, मगर मुझे तो लड़का पसंद क्यों आ रहा है ? मेरी माँ ने तो अब तक मुझे बोला की तू शादी करेगा लडकी से, बहु लेकर आएगा, यह होगा वो होगा, तो ये एक दम अपोजिट कैसे चलने लगा ?

जैनेन्द्र : जब माँ यह कहती थी तो आपके सामने क्या इमेज बनती थी, बहू लाने की इमेज बनती थी ?

दीपिका : कभी नहीं, कोई दुल्हन-वुल्हन की इमेज नहीं बनती थी, मेरे को सिर्फ एक ही इमेज बनती थी, मेरे हल्दी लग गई, मेरे मेहंदी लग गई, वो माइंड में आता था, मैं घोड़ी पर बैठ गया करके नहीं सोंचा कभी भी, तो जब मेरे माइंड में यह सब कुछ आने लग गया तो उस दौरान मुझे लगने लग गया कि, आज तक मुझे ऐसा बोला गया है और अब मुझे लड़का पसंद आने लग गया है, ये कैसे गड़बड़, राउंड ट्रेक पर जा रही है मेरी गाड़ी, कुछ तो करना पड़ेगा। तब उससे बात करना कम किया, कि शायद न ध्यान जाये, बट फिर भी नहीं कम हो रहा है ये तो, क्या करूँ ? क्या करूँ ? ऐसे करते-करते ही कि नार्मल दोस्त तो है ही बात-वात करेंगे साथ में थोड़ा टाइम बिताएंगे तो थोडा दिल को तसल्ली मिलेगी वो भी करते-करते ट्वेल्थ किलियर हो गया, फिर ट्वेल्थ ख़त्म होते ही यह की हम कैसे मिलेंगे ? आई वेंट हिज़ होम।

जैनेद्र : उसके अन्दर भी आपसे मिलने की इच्छा होती थी ?

दीपिका : उसके अन्दर मेरे से मिलने की इच्छा ऐसे नहीं थी, वो एक दोस्त की तरह मिलता था। उसके घर गए मिले बात-वात हुई, अब मेरा रेगुलर वहाँ जाना-आना, जाना-आना, जाना-आना, उसका मेरे घर आना नहीं होता था, मेरा उसके घर जाना होता था, काफी टाइम तक यानी तीन-चार साल तक मेरे अन्दर ही वो सब चलता रहा और चार साल के बाद जाकर मैने कहा कि मैं तुझे प्यार करता हूँ।

जैनेन्द्र : करता हूँ बोला था ?

दीपिका : हाँ, तो उसने बोला अच्छा हाँ मैं भी तुझे प्यार करता हूँ, तू मेरा बहुत अच्छा दोस्त है, तो वो शब्द पर मैने ध्यान नहीं दिया, मुझे लगा हाँ मैं भी प्यार करता हूँ उसने ऐसा बोला है तो कुछ तो उसके मन में है और वो गलत फ़हमी लेकर ज़िन्दगी जीना शुरू कर दिया, देन फिर वो उसकी गर्लफ्रेंड उसका किसी और के साथ कनेक्शन वो सब जब देखा मैंने आँख से मुझे चिढ़ हुई, परेशानी हुई, गुस्सा आया मैंने रिएक्ट किया उस सब चीज़ों पे, तो उसने बोला क्यों ऐसा, ऐसा क्यों कर रहा है तू ? आई सेड मैंने तुमको बोला था आई लव यू और तुमने भी बोला था आई लव यू, उसने कहा हाँ मैने दोस्त की तरह बोला था तुझे क्या लग रहा है, तेरे दिमाग में ये चल क्या रहा है सच-सच बता वेन वी सेड टूगेदर, हमने बहुत सारा बात किया, तो बोल रहा है आई नो वेरी वेल, कि तेरे अन्दर यह फीलिंग है कि तू लड़की जैसा है ये है वो है सब समझ में आता मुझे बट मैंने एक दोस्त के नाते बोला था।

जैनेन्द्र : उसने कभी टच-वच ऐसा किया ?

दीपिका : कभी ऐसा कुछ नहीं था, बस ऐसा था की मुझे कुछ चीज़ों की वजह से ऐसा फील होने लगा था, कि ऐसा कुछ है, जैसा मेरा जूठा खा लेता था तो मुझे फील होता था कि शायद उसके और मेरे बीच में अब कुछ बचा ही नहीं हम बहुत क्लोज़ हो गए हैं, तो वो सारी दूरियां खत्म हो गई, तो वो प्रॉब्लम मेरे दिमाग में पनपती चली गई, फिर बहुत टाइम बाद जाकर कि क्या हुआ की ठीक है, ओके फाइन तुम दोस्त हो मैं दोस्त हूँ, तो दोस्त बोल कर हम अलग हुए और फिर हम अलग ही हो गए। बात नहीं हो रही है कॉल नहीं उठा रहे हैं, आँखों के सामने से देख रहे हैं मगर, वो सामने से ऐसे जा रहा है और मैं ऐसे जा रहा हूँ।

जैनेन्द्र : वो बात करने की कोशिश करता होगा ?

दीपिका : नहीं, वो नज़र चुरा कर निकल जाता था फिर जब मैंने उसे देखा कि वह नज़र चुरा कर चार बार गया है, तो फिर मैंने भी नज़र चुराना शुरू किया और बात करना बंद कर दिया, देन वो फिर दुबारा किसी की तरफ़ अट्रेक्शन उसने कुछ बोला और फिर कहानी खत्म, फिर किसी की तरफ अट्रेक्शन कुछ बोला कहानी खत्म वो चलता है।

जैनेन्द्र : अच्छा एक सबसे बड़ी भ्रान्ति जो है बाकि लोगो में वो यह है कि किन्नरों का जो अंतिम संस्कार होता है, वो जुते-चप्पल से मार कर ले जाते हैं, रात को ही करते हैं, बोलते हुए ले जाते हैं कि अगले जन्म ऐसा पैदा न हो, यह सब फैला कहाँ से ?

दीपिका : इट्स नॉट ट्रू, सो कभी आपने या किसी ने भी देखा है ये की किन्नर लोग किसी को अपने कंधे पर लेकर जा रहे हैं ?

जैनेन्द्र : नहीं हमने तो नहीं देखा आज तक।

दीपिका : हमने भी नहीं देखा, क्यों ये होगा कैसे एक औरत को जाना अलाउड नहीं है, किन्नर फिमेल ड्रेस में रहती है, वो तो लेकर नहीं जाएगी, तो लेकर कौन जायेगा आदमी, सो वो अपने बॉयफ्रेंड्स, नाते रिश्तेदार ये-वो पचास लोग चालीस लोग इकट्ठे हो सकते है, और उनमें से कुछ लोग उसे कन्धा देकर ले जाते हैं जहाँ पे ले जाना होता है वहां जाकर वह उसकी अंतिम क्रिया करके लौट आते हैं। आदमी गए और अंतिम क्रिया करके लौट आए, हूँ नोज़, किन्नर गया था क्या ? किन्नर की लाश गई थी क्या ? किसी को नहीं पता चलेगा, सो फिर ये भ्रान्तियाँ आ कहाँ से जाती है ये नहीं मालूम। कुछ लोग कहते हैं की ऐसा होता है वैसा होता है, किन्नर दुबारा पैदा न हो उसके लिए हम जो शोक मानाते हैं, वो ऐसे हाय, हाय, हाय करके अपने आप को थपकियाँ देकर अपनी छाती को ऐसे-ऐसे करते हैं, उसकी छाती पर सर रखते हैं रोते हैं वो सुब तो होता है, बट ये जूते मारना ये सब करना।

जैनेन्द्र : यह भी कहा जाता है की रात में ले जाते हैं ?

दीपिका : रात इसलिए बोलते हैं, क्योंकि लोग देख ही नहीं पाते सों लोगों के मन में यह है की हिजड़ा मरा है तो हिजड़ा ही लेकर जा रहा होगा, बट हमने कभी हिजड़ों को ले जाते हुए देखा ही नहीं है, हिजड़ों के साथ, लोगों ने कभी देखा ही नहीं इसलिय वो सोंचते हैं कि रात में ही हिजड़े को दफना देते हैं।

जैनेन्द्र : आप तो उस ट्रेडिशन को फॉलो नहीं करते, तो आपको हिजड़ों के बारे में कन्फर्म कैसे पता है ?

दीपिका : हाँ, हम उसमें जाते तो हैं न, जैसे मैंने बोला की मेरी सबसे पहली मुलाकात जिससे हुई थी, वो खुद एक किन्नर समाज से थी, वो बस में माँगती थी ट्रेन में माँगती थी, रेड लाईट पर भी माँगती थी तो मुझे लगा मुझे भी मांगना चाहिए वो मुझे किन्नर से ही मिलकर पता चला किन्नर ने ही समझाया कि ट्रांसजेंडर भी कोई चीज़ होती है, ऐसा नहीं है की मुझे ट्रांसजेंडर ने समझाया किन्नर कोई चीज़ होती है, किन्नर ने समझाया की ट्रांसजेंडर कोई चीज़ होती है।

जैनेन्द्र : अच्छा जैसे आप हम लोगों को देखते हैं, तो आपके मन में क्या ख्याल आता है, जैसे आपने एक स्त्री को या एक पुरुष को देखा तो आपके मन में क्या ख्याल आता है ?

दीपिका : सो, एक पुरुष को देखने के बाद यह ख्याल आता है कि इसमें और मुझमें कुछ सिमिलेरिटी है लेकिन कुछ डिफरेंस भी है, कि उसके पास वाईफ होगी, उसके पास परिवार होगा, मेरे पास नहीं है और सेम अगर गर्ल को देखते हैं तो यह ख्याल आता है यह एक लड़की है एक लड़का इसे प्यार कर सकता है बट मुझे तो नहीं कर सकता, उसके साथ बच्चा हो सकता है, उसका परिवार, ससुराल हो सकता है बट मेरा तो ऐसा कुछ नहीं हो सकता, मुझे तो अकेले ही जीना है, क्योंकि हमें तो समाज अपनाता ही नहीं है समझता ही नहीं है, तो अल्टीमेटली हम जब दूसरे आदमी और औरत को देखते हैं तो एक लोनलिनेस हमारे अन्दर रहती है। फिर खुद को हम सेपरेट फील करते हैं, ठीक है फाइन इनके बीच में घुसने से हमको कुछ नहीं मिलने वाला, वो अपनी शादी और परिवार में बीजी रहेंगे, मुझे तो किसी ऐसी चीज़ में जाना ही नहीं है तो फिर मुझे क्या करना उनके बीच में घुस कर।

जैनेन्द्र : लेकिन अब तो ट्रांसजेंडर की शादी होने लगी है न ?

दीपिका : हाँ, वो भी बहुत कम्पलीकेटिड कहानी है | रीसेंट अगर देखेंगे रायपुर में पन्द्रह ट्रांसजेंडर की शादी हुई, कैसे ? यही तो सवाल है ? कानून ने क्या अधिकार दिया क्योंकि जब धारा 377 हटाई गई तो यह बात कही गई की शादी थोड़ी कर सकते हो आप, बस एक साथ रह सकते हो। क़ानूनी आप शादी नहीं कर सकते बच्चा नहीं ले सकते, सो वो शादी हुई कैसे ? यह एक सवाल है मेरे मन में, मुझे जहाँ तक समझ में आता है, जब हम हमारे पुराने डाक्यूमेंट्स नाल्सा जजमेंट उठा कर बात करते हैं तो हम कहते हैं नाल्सा जजमेंट ऐसा कहता है या आप बोलते हैं कि एक वीमेन मेन के साथ शादी कर सकती है करेक्ट यह तो है जो सबसे बड़ा सच है न बट उसमें कहीं यह थोड़ी लिखा है कि ट्रांसवीमेन मेन के साथ शादी नहीं कर सकती, ऐसा नहीं लिखा, तो मैं क्या हूँ वीमेन हूँ लेकिन ट्रांसवीमेन हूँ बस इतना ही फर्क है, तो भईया मुझे मेरा अधिकार दो, मैं भी वीमेन हूँ मुझे भी शादी करनी है, सो इफ आई वांट टू डू इट,मैं फाइट करुँगी, मैं लडूंगी और इधर-उधर की दलीलें पेश करुँगी और सामने से साबित कर दूँगी भैया कि तुम्हारे कानून में अभी तक लिखा ही नहीं गया है कि मैं शादी नहीं कर सकती बात खत्म।

जैनेन्द्र : मैंने एक कहानी पढ़ी जिसमें अमेरिका के बारे में लिखा था की वहाँ भी बहुत मुश्किल से ये अधिकार मिला कि गे और लेस्बियन भी शादी कर सकते हैं, लेकिन वहां भी टेक्नीकल दिक्कत थी कि टेक्स दोनों को मिलकर भरना पड़ेगा एक परिवार है लेकिन दोनों अलग-अलग हैं बच्चे लेने का अधिकार नहीं था, तो वहाँ भी बड़ा लम्बा संघर्ष रहा लेकिन वहाँ भी तंग करते थे लोग लेकिन वहाँ उन लोगो ने एक्सेप्ट कर लिया है।

दीपिका : वक़्त लगता है लेकिन चीजें बदलती हैं, जैसे अभी यहाँ पर भी यह हिसाब-किताब है कि समाज यहाँ पर अगर ट्रांसजेंडर के साथ बात करता है शादी करने की, तो फिर वो मेरा जॉइंट बैंक अकाउंट होगा क्या ? ये होगा क्या ? वो होगा क्या ? इंश्योरेंस में मेरा नाम साथ में आयेगा क्या ? वो सब एक सवाल है जो अभी तक पालिसी में नहीं है। दूसरी बात अगर ये सब होगा तो क्या हम दोनों साथ रह

पायेंगे, मतलब हम हस्बैंड वाईफ ऐसा तो नहीं है न कि उसकी शादी किसी औरत से भी हो जाएगी सो इस कनफ्यूज़न में आज भी हम जी रहे हैं

जैनेन्द्र : अच्छा, एक सवाल और है कि आम आदमी को जिसे आप सो कोल्ड आम आदमी कह सकते हैं, उनको ट्रांसजेंडर से डर क्यों लगता है, एक दूरी रहती है और जो ट्रांसजेंडर है उनका रुख बहुत आक्रामक रहता है उनके प्रति, दोनों तरफ से रफ़ बिहेव रहता है ?

दीपिका : सो जैसे मैंने बोला मुझे आपके जैसे अधिकार नहीं, मतलब औरत और आदमी जैसे अधिकार नहीं इसीलिए मैं अकेले हूँ और जब मुझे खुद के अन्दर अकेलापन महसूस होगा, तो क्या होगा ?

जैनेन्द्र : चिढ़ होगी।

दीपिका : चिढ़ होगी तो क्या होगा, मुझे गुस्सा आयेगा, गुस्सा आयेगा तो क्या होगा तुम मुझे कुछ बात बोलोगे तो मैं फट से जवाब दूंगा ऐ चल मुझे नहीं बात करनी तेरे से, सो वो हो जाता है, ऑबियसली ये बहुत होता है, लेकिन जब मुझे दूसरी तरफ से दुनिया देखने का नज़रिया मिला तो मैंने बात करना शुरू किया। और उससे पहले स्टूडेंट या कॉलेज या फिर इंटरव्यूज में ऐ चल हट मेरे किस काम का है तू, क्या फ़ायदा तेरे से मुझे बात करने का सों ये जर्नली इस कम्यूनिटी का यही रिस्पोंस होता है हर जगह, सो वो एक मुद्दा है कि हम अन्दर से अग्रेसिव होने लगते हैं, फिर दूसरी बात है, आई डोंट वांट टू काल माई सेल्फ़ एज़ हिजड़ा लेकिन रास्ते में चलते दो सौ लोग मुझे हिजड़ा बोलते हैं, वाय, क्यों तुम डिसाइड करते हो हू आई एम, तो अगर तुम ऐसा डिसाइड करोगे तो मैं कल से तुम से सीधा बात क्यों करूँ ? यह सब समाज की वजह से हो रहा है कुछ ऐसा नहीं है, मैं भीख मांग कर नहीं खाना चाहती, अगर मैं फीमेल ड्रेस में शेविंग होकर तुम्हारे पास काम मांगने आउंगी तो तुम काम नहीं दोगे मुझे, यह है क्या भई, आदमी है दाढ़ी आ रही है और साड़ी भी पहना हुआ है, मैं नहीं नौकरी दे सकता। मतलब वो शेव करे लेकिन तभी भी समझ आयेगा और आप उसको जॉब पर रखने से कतराओगे कि मेरे ऑफिस का माहौल कुछ अजीब-सा हो जायेगा, मैं नहीं रख सकता। तो मैं कल क्यों न गुस्सा हूँ आप लोगों के ऊपर, इट्स नोट यू, समाज, मैं क्यों गुस्सा न करूँ तुमने मुझे आज तक दिया क्या है कि मैं तुमको अपना लूँ, जब तुम मुझे अपना नहीं सकते तो मैं क्यों अपनाऊँ, तुम मुझसे इज्ज़त से बात नहीं कर सकते, तो में क्यों करूँ, हिजड़ा बोलते हो तो गन्दा है, सेक्स वर्कर तुम मुझे मानते हो, जिस दिन मैं रोड पर खड़ी हो जाऊं फिमेल ड्रेस पहन के तो लड़के आगे-पीछे निकलते हुए सिटी मारेंगे, मेरे पास फिमेल अकाउंट है, फेसबुक पर तो मुझसे बात करेंगे सिर्फ एक ही परपस, ई वांट टू सेक्स विद यू और कुछ तो नहीं तो फिर मुझमे गुस्सा भरेगा क्यों नहीं, ये मेरा खुद से भी सवाल होता है, कि मेरे अन्दर गुस्सा आयेगा क्यों नहीं, मुझे तो कोई प्यार नहीं देना चाहता सिर्फ सेक्स करना चाहता है, मेरी बॉडी चाहिए सबको पन्द्रह मिनट के लिए, पंद्रह दिन कोई मेरे साथ बिता नहीं सकता यह सब अग्रेसीवनेस उसी की वजह से है और कुछ नहीं।

जैनेन्द्र : एक बार ट्रेन में मैने एक ट्रांसजेंडर से पूछा कि आप इतना आक्रामक होकर क्यों बात करते हो तो उसने जवाब दिया कि अगर में ऐसा न करूं तो लोग मुझे छेड़ेंगे, इसलिय पहले ही ऐसा बर्ताव मुझे अपनाना पड़ता है, वो मुझ पर अटैक करे इसलिय मैं उसे मौका ही न दूँ, तो पता चले की इस बोगी में मुझे दस लोग छेड़ेंगे।

दीपिका : सों उसके अन्दर ये बात कहाँ से आई कि अगर वो शांत रहेगी तो उसके ऊपर लोग भारी हो जाएँगे क्योंकि उसने देखा है, सो इसलिए वो ऐसी हो गई और अगर वो भीख मांग कर कमा रही है तो मतलब जब तक वो बोल्ड नहीं होगी तो कोई उसे पैसा नहीं देगा, चल भाग यहाँ से बोल कर उसे सब भगा देंगे।

जैनेन्द्र : अच्छा जैसे आप सार्वजनिक जगहों पर जाते हैं, तो वहाँ पर आपके साथ कैसा बिहेव होता है ?

दीपिका : सो जर्नली क्या होता है, कि मार्किट में मुझे फिमेल चीज़ें को देखकर अट्रेक्शन बढ़ना शुरू होता है जैसे नेकलेस, मेकअप का कोई सामान, फिमेल गाउन, साड़ी, आल थिंग्स मतलब ये माइंड में नहीं चलता है की आदमियों वाला क्या अच्छा दिख रहा है, बस ये चलता है कि औरतों वाला क्या अच्छा दिख रहा है, तो मैं लूँ तो फिर मेरे घर में मुझे पहनना नहीं है क्योंकि मुझे अलाउड नहीं है, तो मेरे घर में किसके ऊपर अच्छा लगेगा बहन, बड़ी बहन, छोटी बहन, मम्मी या कोई और तो वो सोंच कर दिमाग में आने लगता है फिर अच्छा लगता है, चलो खरीद लो घर ले जाएँगे, उसको ख़रीदा घर ले गए मन में ख़ुशी रहती है की हाँ हम कुछ लेकर गए फिमेल वाला बेशक खुद यूज़ न करें मन है फिर भी नहीं करें, बहन को देंगे, भाभी को देंगे।

जैनेन्द्र : अच्छा ट्रांसजेंडर के बीच भी आप सम्बन्ध बनाते हैं, तो वो भी तो गे सम्बन्ध हुआ ना ?

दीपिका : वो समलैगिक होता है, इसलिए मैने बोला की समलैगिक लोगो को शादी करने का अधिकार नहीं है तो वो एक मुद्दा है।

जैनेन्द्र : आपको लगता है किन्नरों के अन्दर धर्म, जाति का कोई मामला है, अधिकतर लोग मुस्लिम धर्म क्यों अपनाते हैं ?

दीपिका : सो इज़ नॉट लाईक दिस, किन्नरों में कुछ कैटेगरी है, जिसमे कुछ लोग मुस्लिम कल्चर के हिसाब से सलाम वालेकुम बोलते हैं, कुछ लोग हैं जो राम-राम जी बोलते हैं।

जैनेन्द्र : लेकिन अधिकतर लोग मुस्लिम धर्म को ही अपनाते है।

दीपिका : क्योंकि किन्नर समाज को इज्ज़त दिलाने वाला काम अगर किसी ने किया था तो वो किसने किया था ? मुग़ल ने, तो वो मुस्लिम कल्चर से कनेक्टेड हुआ, इसलिय हिजड़े मुस्लिम धर्म में ही घुसे रह गए, यह एक वजह है जो मुझे समझ आती है।

जैनेन्द्र : अच्छा, अगर कोई हिन्दू कम्यूनिटी से आता है एक अप्पर कास्ट है और एक लोअर तो उसके बीच कास्ट की वजह से किन्नर कम्यूनिटी में कोई दूरी रहती है ?

दीपिका : नहीं, कभी नहीं यहाँ पर कास्ट मेटर नहीं करती, विद इन दा ट्रांसजेंडर कम्यूनिटी, विद इन दा किन्नर कम्यूनिटी ये एक मुद्दा नहीं है कि तुम भंगी के बच्चे हो और मैं ठाकुर का बच्चा हूँ, ऐसा नहीं देखा है मैंने आज तक।

जैनेन्द्र : लेकिन कुछ लोग यह कहते हैं कि वो जो लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी चूँकि वो ब्राह्मण थे, इसलिए इतना कुछ सारा स्ट्रक्चर उनके पक्ष में चला गया, अगर कोई भंगी होता तो इतना कुछ उसको नहीं मिलता, तो आपका क्या कहना है ?

दीपिका : पता नहीं, ऐसा मुझे नहीं लगता है की ऐसा कुछ हुआ होगा, ओके इफ आई विल टॉक अबाउट मायावती तो उसे इतना क्यों सपोर्ट मिला वो तो कोई ब्राह्मण नहीं थी, कभी लक्ष्मी को अपने बात करते देखा किसी मुद्द पर किसी किताब में कोई, कि मैं ब्राह्मण थी, ब्राह्मण हूँ, उन्होंने बोला कि मैने सेक्स वर्क किया है, ब्राह्मण थी सेक्स वर्क किया तो सब एक दूसरे से कनेक्ट करेंगे।

जैनेन्द्र : अच्छा अभी तक तो भारत में किन्नरों को गोद लेने का अधिकार नहीं है ?

दीपिका : सो, अभी तक तो ऐसा कुछ राइट्स नहीं मिले हैं, कि किन्नर बच्चे को गोद ले सकता है, अगर बच्चा अडॉप्ट करने कि बात है तो काफी ट्रांसजेंडर हैं उन्होंने अडॉप्ट किये हैं, बट क्या करें उनके आधार कार्ड फिमेल के हैं, अब मैं आऊँ आपके पास आप एक गवेर्मेंट ऑफिसर हो, और मैं बोलूँ मुझे बच्चा अडॉप्ट करना है, आप बोलेंगे अपना आधार कार्ड दिखाओ, उसमें लिखा है, आप बोलेंगे की तू बता कहीं तू किन्नर तो नहीं है न, नहीं बोलेंगे ज़ाहिर सी बात है, वो फिमेल ड्रेस में गई साड़ी-वाड़ी में सबके सामने, तो इस तरीके से बहुत लोगों के पास सिर्फ बच्चा ही नहीं बहुत सारे अधिकार हैं। मैं यू.एस नहीं जा सकती, मतलब इंडिया के बाहर बहुत ऐसी कंट्री है जहाँ ट्रांसजेंडर को जाना अलाऊड नहीं है, मुझे एक्जेक्ट नाम पता नहीं, सो बट मेरे पास फिमेल का पासपोर्ट है, मेल का पासपोर्ट है तो मैं जा सकती हूँ, कोई रोकेगा नहीं।

जैनेन्द्र : अच्छा एक वो चीज़ आपको क्या लगती है की बहुत बड़ा बदलाव आ सकता है, जो एक दूरी बनी हुई है ?

दीपिका : ये समाज जो है यह एक ज़माने में समाज का हर एक व्यक्ति जुड़ा तो समाज बना, सों एक टाइम पर यह सब लोग बच्चे थे, सब बच्चे थे खली दिमाग होता है बच्चे का इसलिय उसी दौरान उसके दिमाग में एजुकेशन भरी जाती है, सो उस एजुकेशन के ज़रिये उसके दिमाग में भर दिया जाये कि ट्रांसजेंडर से जाके मिले उन्हें समझे जैसे अभी आप आए तो यह आज नहीं होगा, लेकिन आज के पंद्रह साल के बाद बच्चा खड़ा होकर बोलेगा नहीं मम्मी आप ऐसा नहीं बोल सकते उनके बारे में, मैंने नौ साल पढाई की है, उसमें ऐसा लिखा है उनके बारे में, आज जो हमरे एज़ के बच्चे हैं, कल वो माँ-बाप होंगे बट उनका जो बच्चा होगा न वो बोलेगा आप ऐसा नहीं बोल सकते, तो वहाँ बदलाव आयेगा।

जैनेन्द्र : अच्छा, आरक्षण को लेकर आपके क्या विचार हैं ?

दीपिका : सो अलग से आरक्षण की बात करेंगे तो आई डोंट बिलीव इन डेट बिकॉज़ अभी भी है बट मिलता क्या है ? ये प्रैक्टिकली पॉसिबल नहीं है, इसके लिए पहले प्लान बनाना पड़ेगा | फिर बैठ कर बात करें कि ऐसा-ऐसा कर सकते हैं | हमारे पास ये दस प्लान है और आप लोग के पास कोई प्लान है तो बताओ | आप बोल रहे हो ट्रांसजेंडर को नौकरी दोगे | ट्रांसजेंडर के तबके में जाके बात करें लेकिन गवर्मेंट का ये जजमेंट हैं नाल्सा जजमेंट वो बोलता है, आप ट्रांसजेंडर हो हम मान लेंगे लेकिन जब मैं जॉब लेने जाउंगा तो बोलेंगे तू सर्टिफिकेट ला तू एफिडेविट ला तू ट्रांसजेंडर है तू शो कर प्रूफ कर।

जैनेद्र : अच्छा तो किस आधार पर देखा जायेगा अगर बोलने से होगा तो फिर तो कोई भी नौकरी ले लेगा न ?

दीपिका : जब एक-दूसरे से ये चीज़ मैच नहीं हो रही तो मेरी लाइफ पर तो असर आ रहा है न।

जैनेद्र : दिल्ली में जो आई.ए. एस की टॉपर थी, उसने क्या किया उसने दो लोगों को अपने आफिस में जॉब दिया, उससे पूछा इससे क्या होगा तो उसने बोला की जब लोग आधार कार्ड बनवाने आयेंगे तो बिना इनके साइन के बनेगे ही नहीं, ये लोगो को पानी पीने के लिए बिठाएंगे, तो लोगों के अन्दर ये धारणा बदलेगी कि ये लोग कुछ अलग नहीं हैं, ये साइन नहीं करेगी तो उसका काम ही नहीं होगा और उस डर से आके लोग बैठेंगे उनसे बात करेंगे।

दीपिका : ये थिंकिंग लेवल हर जगह होना चाहिए धीरे-धीरे, फॉर एजाम्पल मैं कुकिंग अच्छी नहीं कर सकती, बट हो सकता है मैं सर्व अच्छे से कर सकूं | फाइव स्टार होटल मुझे ऐसे अपॉइंट करे मेरे हाथ का खाना वहाँ रखा जायेगा फिर वो खायेंगे, तो वो तारीफ़ करेंगे तो वो कुक को बोलने नहीं जायेंगे की आपका खाना बहुत अच्छा है | सो ओपिनियन चेंज होगा | बहुत जगह ऐसा हो सकता है, बट मुद्दा ये है कि वो बोल रहा है सेल्फ़ डिकलेरेशन एक्सेप्टेबल है | वो बोल रहे हैं डॉक्यूमेंट लाओ आधार कार्ड | इट्स नॉट इजी थिंग कि मुझे अगर आधार कार्ड में मेरा नाम और जेंडर बदलना हो तो कोर्ट से एफिडेविट लाना है ये लाना है वो लाना है तो क्या करूँ | तो बहुत उलझी हुई सी स्टोरी है अभी तक, इसलिय मैने

बोला की मुझे मेल या फिमेल ही रख सकते हैं बट उसके साथ में एक सपोर्टिंग डॉक्यूमेंट हो सकता है, ये क्या है? अगर हम आधार कार्ड से ही डिसाइड करेंगे की तू ट्रांसजेंडर है, ये ट्रांसजेंडर है या नहीं, वो ट्रांसजेंडर है या नहीं, तो फिर प्रोब्लम आ जाएगी, क्योंकि वो हो ही नहीं रहा है।

जैनेन्द्र- धन्यवाद ! आपने हमसे बात की | आपका बहुत-बहुत आभार

दीपिका- आपका भी धन्यवाद !